MAA OMWATI DEGREE COLLEGE

HASSANPUR

NOTES

SUBJECT: - Indian National Movement

CLASS:- M.A. (History) 3rd Semester

अथवा

☐ भारत में राष्ट्रीय जागरण के उदय के कारणों पर प्रकाश डालिए।
(Throw light on the causes of the rise of National awakening in India.)

अथवा

☐ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतीय राष्ट्रवाद के आरम्भ होने के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारणों का परीक्षण कीजिए।
(Examine the main Causes responsible for emergence of Indian Nationalism during the later half of the 19th century.)

अथवा

☐ राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय और विकास में बुद्धिजीवी वर्ग के योगदान की चर्चा कीजिए।
(Discuss the role of Indian Intelligence in the rise and growth of Indian National Movement.)

अथवा

☐ भारतीय राष्ट्रवाद के उदय का मूल्यांकन कीजिए।
(Evaluate the emergence of Indian Nationalism.)

19वीं सदी भारतीय इतिहास का पुनर्जागरण काल कहलाती है। इस पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप अनेक धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलनों का प्रारम्भ हुआ। इन आन्दोलनों ने एक ओर धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया तथा दूसरी तरफ भारत में राष्ट्रीयता की आधारशिला तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीयता जाग्रत मानव का एक आवश्यक गुण माना जाता है। सामान्य अर्थ में यह एक मानसिक मनोवृत्ति है जो मानव में स्वदेश के प्रति मर मिटने की भावना जाग्रत करती है। इस चेतना के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में ऐसे राजनीतिक विचारों तथा संगठनों का जन्म होने लगा जिनके बारे में अब तक भारतीय अनभिज्ञ थे। इस चेतना का परिणाम था कि देश के विभिन्न भागों में 'बंगाल ब्रिटिश

इंडिया एसोसिएशन', 'पूना सार्वजनिक सभा', 'लेण्डहोल्डर्स सोसाइटी', 'बम्बई प्रेजीडेन्सी एसोसिएशन', 'मद्रास महाजन सभा' जैसी संस्थाओं का उदय हुआ। इन संगठनों ने सोए हुए भारतीयों को जगाया तथा धीरे-धीरे उनमें राष्ट्रीयता की भावना विकसित की। निरन्तर विकसित होती राष्ट्रीयता की भावना के परिणामस्वरूप 1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् भारतीय मन में राजनीतिक जागरण अधिक-से-अधिक उभरता चला गया। कांग्रेस ने भारतीय लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया तथा अन्त में उन्हें राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कराई व भारत एक 'राष्ट्र' बन सका।

राष्ट्रीय चेतना के उदय एवं विकास के कारण
(Factors Responsible for Rise & Growth of Nationalist Consciousness)

राष्ट्रीय चेतना का उदय तथा विकास आधुनिक भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण तथा मनोरंजक घटना मानी जाती है। अनेक कारणों से मिलकर राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न की। इन कारणों का विवरण इस प्रकार है–

1. **विदेशी शासन के प्रभाव (Impacts of Foreign Rule)**–अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भी भारत में अनेक विदेशी जातियों ने अपने साम्राज्य स्थापित किए थे परन्तु वे सभी भारतीयता में घुल मिल गई व उन्होंने भारत को अपना आवास मानकर इसकी सेवा की। दूसरी तरफ अंग्रेज सौदागरों का मुख्य लक्ष्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। उन्होंने कभी भी भारत को अपना स्थायी घर नहीं समझा बल्कि भारत के धन का उपयोग अंग्रेजी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए किया। 1757 ई. को 'प्लासी युद्ध' तथा 1764 ई. के 'बक्सर युद्ध' में विजय प्राप्त करने के पश्चात् अंग्रेजों का बंगाल पर अधिकार हो गया। बंगाल पर सत्ता स्थापित के पश्चात् अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक अधिकारों को भी सुरक्षित रखा तथा राजनीतिक प्रभुता की ओट में आर्थिक शोषण जी भर कर करना प्रारम्भ किया। 1858 ई. के पश्चात् जब भारत का प्रशासन ब्रिटिश सरकार के अधीन चला गया तो ब्रिटिश सरकार ने भी भारतीयों का आर्थिक शोषण उसी प्रकार जारी रखा। इस प्रकार अंग्रेजी शासन के अन्त (1947 ई.) तक विदेशी शासन बना रहा तथा भारत से धन की निकासी जारी रही। इस शासन ने भारतीयों के सभी क्षेत्रों—राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक में अनेक बाधाएँ उत्पन्न कीं जिसके परिणामस्वरूप भारत के सभी वर्गों के हितों को आघात पहुँचा। धीरे-धीरे भारतीयों को विदेशी शासन की वास्तविकता समझ आई तथा उन्होंने इसे उखाड़ने का निश्चय किया। **प्रो० विपिन चन्द्र** ने लिखा है कि, **"आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का उदय बुनियादी तौर पर विदेशी आधिपत्य की चुनौती का सामना करने के लिए हुआ। ब्रिटिश शासन से उत्पन्न परिस्थितियों ने भारतीय जनता के बीच राष्ट्रीय भावना के विकास में सहायता दी।"** इस प्रकार राष्ट्रवादियों ने अंग्रेजी शासन के स्वरूप को समझा तथा उसकी सही तस्वीर जनता के सामने प्रस्तुत की जिससे राष्ट्रीय चेतना जाग्रत हुई।

ब्रिटिश सरकार की आर्थिक शोषण की नीति ने भारतीय गृह उद्योगों को बिल्कुल नष्ट कर दिया क्योंकि शासकों द्वारा 'मुक्त व्यापार' नीति लागू किए जाने के कारण इंग्लैण्ड के उद्योगों के बने सामान का भारतीय सामान मुकाबला नहीं कर पाया। दूसरे, भारतीय वस्तुएँ जो बाहर जाती थीं उन पर भारी कर लगाया जाता था तथा भारत आने वाले माल पर सरकार ने आयात कर पर पूरी छूट दे रखी थी। परिणामस्वरूप भारतीय बाजार यूरोपियन माल से भर गए तथा भारतीय कुटीर उद्योगों का पतन हो गया। **कुटीर उद्योगों के पतन से** करोड़ों की संख्या में लोग बेरोजगार हो गए। 1875-76 ई. में भारत सचिव ने आगलि के ड्यूक को लिखा था कि, **"भारत की जनता में जितनी दरिद्रता है तथा उसके रहन-सहन का स्तर जिस तेजी के साथ गिरता जा रहा है, इसका उदाहरण पश्चिमी जगत में नहीं मिलता।"**

उद्योग एवं दस्तकारी के पतन के कारण इनमें काम करने वाले हजारों लोग कृषि की तरफ झुके, जिससे भूमि पर दबाव अत्यधिक बढ़ गया। परन्तु सरकार ने कृषि के वैज्ञानिक ढंग की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। दूसरी तरफ सरकार द्वारा लागू की गई भूमिकर व्यवस्थाओं (रैयतवाड़ी, महलवाड़ी तथा स्थाई बंदोबस्त) के द्वारा भी **किसानों का शोषण** किया गया तथा उनसे अधिकाधिक अनाज कर के रूप में वसूल किया गया। जिससे भारतीय किसान करों के बोझ के नीचे दबते चले गए व उनकी जमीनें नीलाम होने लगीं परिणामस्वरूप देश के विभिन्न क्षेत्रों में **अकाल, प्लेग, भुखमरी एवं निर्धनता** से करोड़ों लोगों की जानें गयीं। भारतीयों की दशा

के बारे में डी० ई. वाचा ने लिखा कि, **"भारतीयों की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश काल में अधिक बिगड़ी थी। चार करोड़ भारतीयों को केवल दिन में एक बार खाना खाकर सन्तुष्ट रहना पड़ता था। इसका एकमात्र कारण यह था कि इंग्लैण्ड भूखे किसानों से भी कर प्राप्त करता था वहाँ पर अपना माल भेजकर लाभ कमाता था।"**

अंग्रेजी सरकार की प्रशासनिक नीतियों के कारण **शिक्षित भारतीय भी असन्तुष्ट** थे। शिक्षित भारतीयों को यह आशा थी कि उन्हें योग्यता के आधार पर प्रशासन में ऊँचे पद मिलेंगे परन्तु उनके साथ भेदभाव किया गया। इस वर्ग ने अंग्रेजी शासन को पहचाना तथा उसका सही रूप जनता के सामने प्रदर्शित किया। अंग्रेजी सरकार की व्यापार, परिवहन एवं संचार, कर, चुंगी आदि नीतियों के परिणामस्वरूप **पूँजीपति भारतीय** वर्ग भी अंग्रेजों से नाराज था। राजा-महाराजा तथा बड़े-बड़े जमींदार भी धीरे-धीरे सरकार के कार्यों से नाराज होते चले गए व उनमें भी राष्ट्रीयता की भावना का संचार होने लगा।

इस प्रकार अंग्रेजी नीतियों के कारण भारत के सभी वर्ग नाराज थे क्योंकि सभी वर्गों के हित अंग्रेजी हितों से टकरा रहे थे। अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले शोषण के विरुद्ध धीरे-धीरे भारतीयों में चेतना जाग्रत हुई तथा वे इस शासन को समाप्त करने के बारे में सोचने लगे। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन निश्चित रूप से ब्रिटिश शासन की उत्पत्ति तथा उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम था। इसका प्रारम्भ अंग्रेजों के विरोध स्वरूप हुआ था। अंततः इसकी परिणिति एक महान् आन्दोलन में हो गई।

2. राजनीतिक एवं आर्थिक एकता की स्थापना (Political and Economical Unification)–अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत में राजनीतिक एकता का अभाव था यद्यपि अशोक, समुद्रगुप्त, कनिष्क, अलाउद्दीन खिलजी एवं अकबर जैसे शासकों ने भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने का प्रयास किया था, परन्तु यातायात एवं संचार के साधनों के अभाव के कारण उन्हें पूरी सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। परन्तु अंग्रेजों ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण भारत पर कब्जा कर लिया था। अंग्रेजों ने देश में एक दृढ़ केन्द्रीयकृत शासन की स्थापना की। उन्होंने उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तथा पूर्व में बंगाल एवं पूर्वांचल से पश्चिम में खैबर दर्रे तक अपने आधिपत्य की स्थापना करके भारत में राजनीतिक एकता की स्थापना की। अंग्रेजी शासन के परिणामस्वरूप भारत में एक-सी कानून एवं व्यवस्था, न्यायिक-प्रणाली, मुद्रा-प्रणाली, दण्ड-संहिता, कानून-व्यवस्था स्थापित हुई। इसी प्रकार अंग्रेजों द्वारा टेलीफोन एवं आधुनिक डाक व्यवस्था स्थापित की गई। इन माध्यमों के परिणामस्वरूप भारत में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई। इस प्रकार सारे देश में गाँव से लेकर केन्द्र तक एक समान प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित हो गई। भारतीय सिविल सेवा के अत्यन्त प्रशिक्षित एवं व्यावसायिक प्रशासक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासनिक व्यवस्था को चलाने के लिए नियुक्त किए जाते थे। इस नयी व्यवस्था ने भारत को एक कोने से दूसरे कोने को जोड़ दिया। **पुनिया** ने लिखा है कि, **"हिमालय से कुमारी अन्तरीय तक सम्पूर्ण भारत एक सरकार के अधीन आ गया और इसने जनता में राजनीतिक एकता की भावना को जन्म दिया।"**

देश की राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकता ने आर्थिक व्यवस्था को भी प्रभावित किया तथा ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीतियों के कारण भारतीय 'ग्रामीण अर्थव्यवस्था' का पतन हो गया। भारत की अर्थव्यवस्था ब्रिटिश पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का अंग बन गई। इस प्रकार देश की प्रशासनिक, राजनीतिक एवं आर्थिक एकता के कारण स्थानीय भक्ति का स्थान देश-भक्ति ने ले लिया तथा भारत की सदियों पुरानी चली आ रही भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता को एक नये प्रकार की राजनैतिक एकता प्रदान कर पुष्ट किया गया। **पं० जवाहर लाल नेहरू** ने लिखा है कि, **"ब्रिटिश शासन द्वारा स्थापित भारत की राजनीतिक एकता सामान्य अधीनता की एकता थी लेकिन उसने सामान्य राष्ट्रीयता की एकता को जन्म दिया।"**

3. 1857 ई. का स्वतंत्रता संग्राम (Freedom Struggle of 1857 A.D.)–ब्रिटिश राज के पिछले एक सौ वर्षों के शोषण के परिणामस्वरूप 1857 ई. में भारतीय जनता ने इस राज को उखाड़ फेंकने का एक प्रयास किया। यद्यपि अंग्रेजों ने इस प्रयास को कुचल दिया तथा क्रांतिकारी अपने उद्देश्यों को पूरा करने में असफल रहे परन्तु उनकी अंग्रेजों को देश से निकालने की कोशिश ने देशभक्ति एवं देश-प्रेम की भावना प्रज्ज्वलित की। राष्ट्रीयता की यह भावना नये परिवेश में निरन्तर विकसित होती रही। क्रांतिकारियों के कष्ट

एवं बलिदानों ने भारतीय जनता को कष्ट उठाने एवं बलिदान देने के लिए प्रेरित किया। क्रांतिकारियों के बारे में अनेक किस्से एवं कहानियाँ जन-जन में प्रचलित हो गई तथा अनेक लोक-गीतों का निर्माण हुआ जिन्होंने भावी पीढ़ी को प्रेरणा दी। अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों के विरुद्ध जिस पाश्विकता का परिचय दिया उसने भारतीयों के असंतोष में और वृद्धि की तथा जैसे-जैसे सरकार के अत्याचार बढ़ते गए, वैसे-वैसे भारतीयों में अंग्रेजी शासन को जड़मूल से नष्ट करने की भावना तेज होती गई। **एडवर्ड थाम्पसन** ने लिखा है कि, **"विद्रोह के बाद भारतीयों में अंग्रेजों के प्रति भयंकर घृणा की भावना आ गई थी, और भारतीयों में विद्रोह का विचार आते ही अंग्रेजों से बदला लेने की भावना बढ़ती ही जाती थी।"** विद्रोह के प्रभावों का विवेचन करते हुए **के.एम. पणिकर** ने लिखा है कि, **"यदि किसी ऐतिहासिक घटना का महत्त्व उसकी तात्कालिक उपलब्धियों तक सीमित नहीं होता, तो 1857 ई. का विद्रोह भी महज एक ऐतिहासिक ट्रेजडी नहीं था। अपनी विफलता में भी इसने एक महान् उद्देश्य की पूर्ति की। यह उस राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन का प्रेरणा स्रोत बन गया, जिसने वह हासिल कर दिखाया जो विद्रोह हासिल नहीं कर सका।"**

इस प्रकार 1857 ई. की क्रांति ने राष्ट्रीय आन्दोलन को एक महान् प्रेरणा दी।

4. धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन (Socio-Religious Reforms Movements)–19वीं सदी में प्रारम्भ होने वाले धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने जहाँ एक तरफ भारतीय धर्म तथा समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया तो दूसरी तरफ भारतीय राष्ट्रीय चेतना के उदय तथा विकास में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। **डॉ० जकारिया** ने लिखा है कि, **"भारत की पुनर्जागृति मुख्यता आध्यात्मिक थी तथा एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण करने से पूर्व इसने अनेक सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया।"** 19वीं सदी का यह सांस्कृतिक वैचारिक संघर्ष दो मोर्चों पर चल रहा था। एक तरफ इसने पारम्परिक संस्कृति के विरोधी तत्त्वों का मुकाबला किया वहीं दूसरी तरफ इसने ब्रिटिश शासन द्वारा संरक्षित औपनिवेशिक संस्कृति तथा विचारधारा का मुकाबला किया। धार्मिक क्षेत्र में इन आन्दोलनों ने मूर्ति-पूजा, बहुदेववाद और पुजारियों के एकाधिकार को खत्म करने और धार्मिक कर्मकाण्ड के लिए संघर्ष किया। इस संघर्ष से लोगों का पुजारियों के धार्मिक एकाधिकारों से विश्वास हट गया तथा उन्हें व्यक्तिगत स्वतंत्रता मिली। दूसरी तरफ इन आन्दोलनों ने पढ़े-लिखे भारतीयों के मन में ईसाई धर्म के प्रति बढ़ते आकर्षण की भावना को कम किया। धर्म एवं समाज-सुधारकों ने देशवासियों के दिलों में आत्मविश्वास जाग्रत किया तथा उन्हें भारतीय संस्कृति की गौरव गरिमा का ज्ञान कराया, जिससे उन्हें अपनी संस्कृति की श्रेष्ठता के बारे में पता लगा। 19वीं सदी में चलने वाले इन आन्दोलनों में ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, रामकृष्ण मिशन, थिसोसोफिकल सोसाइटी एवं अलीगढ़ आन्दोलन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जिनके प्रवर्तक क्रमशः राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती ऐनी बेसेन्ट एवं सर सैय्यद अहमद खाँ आदि थे।

राजा राममोहन राय को **'भारतीय पुनर्जागरण का जनक'** अथवा **'भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदूत'** कहा जाता है। इन्होंने धर्म एवं समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए 1828 ई. में कलकत्ता में **'ब्रह्मसमाज'** की स्थापना की। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा, छूआछूत, जाति-भेद एवं मूर्ति-पूजा आदि बुराइयों को दूर करने का प्रयास किया। उनके प्रयासों के कारण आधुनिक भारत का निर्माण संभव हो सका। **डॉ. आर.सी. मजूमदार** ने अपनी पुस्तक **'हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमैन्ट इन इण्डिया'** भाग–I में राजा राममोहन राय की तुलना बेकन तथा मार्टिन लूथर जैसे सुधारकों के साथ की है। **डॉ० जकारिया** की मान्यता है कि, **"राजा राममोहन राय ने आधुनिक भारत में राजनीतिक जागृति एवं धर्म-सुधारों का एक युग आरम्भ किया इसलिए वे उन्हें 'भारतीय अध्यात्म का पिता' कहते हैं।** राजा राममोहन राय ने भारतीयों के लिए राजनीतिक अधिकारों की भी माँग की। उन्होंने 1823 ई. के **प्रेस आर्डिनेन्स** का विरोध किया तथा इसे रद्द करवाने के प्रयास किए। उन्होंने **'ज्यूरी एक्ट'** के विरुद्ध एक आन्दोलन भी चलाया। इसके साथ-साथ उन्होंने पश्चिमी शिक्षा के प्रसार, न्यायिक सुधारों एवं भारतीयों को ऊँचे पद दिए जाने की भी वकालत की। डॉ० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है कि, **"राजा राममोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होंने अपने देशवासियों की कठिनाई तथा शिकायतों को ब्रिटिश सरकार के सम्मुख प्रस्तुत किया और भारतीयों को संगठित होकर राजनीतिक आन्दोलन चलाने का मार्ग**

दिखलाया। उन्हें आधुनिक आन्दोलन का अग्रदूत होने का भी श्रेय दिया जा सकता है।"

राजा राममोहन राय के बाद ब्रह्मसमाज के अन्य नेताओं, देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, सत्येन्द्रनाथ टैगोर आदि ने भी भारतीय जनमानस को अंग्रेजी शासन की बुराइयों के बारे में बताया तथा हिन्दू धर्म एवं संस्कृति को पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति से बचाने का प्रयास किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती भी एक महान् समाज-सुधारक थे जिन्होंने 1875 ई. में बम्बई में **'आर्यसमाज'** की स्थापना की। आर्यसमाज धार्मिक एवं राष्ट्रीय नवजागरण का आन्दोलन था। उन्होंने भारत एवं हिन्दू जाति को नवजीवन प्रदान किया। उन्होंने न केवल भारतीय धर्म एवं समाज में व्याप्त बुराइयों का विरोध किया, अपितु अपने देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना का संचार भी किया। उन्होंने ईसाई धर्म की कमियाँ बताईं तथा हिन्दुत्व के महत्त्व का बखान कर भारतीयों का ध्यान अपनी सभ्यता एवं संस्कृति की तरफ आकर्षित किया। उन्होंने **'वेदों की तरफ लौट चलो'** का नारा देकर विश्व में हिन्दू धर्म की प्रतिष्ठा की पुनः स्थापना का प्रयास किया। उन्होंने 'स्वधर्म', 'स्वभाषा', 'स्वदेशी' तथा 'स्वराज' पर बल दिया। उन्होंने अपने ग्रन्थ **'सत्यार्थ प्रकाश'** में निर्भीकतापूर्वक लिखा है कि, **"विदेशी राज चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज की तुलना में कभी अच्छा नहीं हो सकता।"** एच० बी० शारदा ने लिखा है कि, **"वे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज्य का प्रयोग किया तथा अपने देशवासियों को विदेशी माल के प्रयोग के स्थान पर स्वदेशी माल के प्रयोग की प्रेरणा दी। उन्होंने सबसे पहले हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा स्वीकार किया।"** श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने लिखा है कि, **"स्वामी दयानन्द ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने सबसे पहले यह नारा लगाया कि भारत भारतीयों के लिए है।"** स्वामी दयानन्द ने वैदिक शिक्षा के प्रसार के लिए 'गुरुकुलों' की स्थापना की तथा बाद में उनके अनुयायियों ने **'दयानन्द एंग्लो वैदिक'** (डी.ए.वी.) संस्थाओं का निर्माण करके वैदिक एवं पाश्चातय शिक्षा के प्रसार का महान् कार्य किया जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन को बल मिला।

रामकृष्ण परमहंस तथा उनके शिष्य 'स्वामी विवेकानन्द' ने भी अपने लेखों व भाषणों द्वारा जनता में 'आत्म-सम्मान' एवं 'आत्म-विश्वास' पैदा किया। स्वामी विवेकानन्द ने यूरोप एवं अमेरिका में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया तथा अंग्रेजों को यह बता दिया कि भारतीय संस्कृति पश्चिमी संस्कृति से महान् है। इस प्रकार उन्होंने अपनी सभ्यता पर गर्व करना सिखाया एवं राष्ट्रीयता व देशभक्ति की भावना का संचार किया। **भगिनी निवेदिता** के अनुसार, **"स्वामी विवेकानन्द भारत का नाम लेकर जीते थे। वे मातृभूमि के अनन्य भक्त थे और उन्होंने भारतीय युवकों को उसकी पूजा करना सिखाया।"**[1]

श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने भी अपनी **'थियोसोफिकल सोसाइटी'** के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उसने भारतीय प्राचीन धरोहर के प्रति जनता में गर्व उत्पन्न किया तथा ईसाई मिशनरियों द्वारा निरन्तर प्रचार से भारतीयों में आयी हीनता की भावना को भी दूर करने का प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने भारतीय गौरवपूर्ण अतीत का चित्र प्रस्तुत करके भारतीयों को जगाया। उन्होंने स्वयं 'होमरूल आन्दोलन' चलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया।

सर सैय्यद अहमद खाँ ने अपने 'अलीगढ़ आन्दोलन' के जरिए मुसलमानों को राजनैतिक तौर पर जागरूक बनाया तथा उनके बीच आधुनिक शिक्षा का प्रचार किया।

इन सुधारकों के अतिरिक्त हेनरी विवियन डेरीजियो, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल हरिदेशमुख, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, ज्योतिभा फुले जैसे व्यक्तियों ने भी शिक्षा एवं समाज-सुधार के कार्य किए व राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न की। मुसलमानों, सिक्खों तथा पारसियों द्वारा स्थापित सुधार संस्थाओं ने भी राष्ट्रीय जागरण का कार्य किया। इन सुधार आन्दोलनों ने ऐसा वातावरण तैयार किया, जिसके कारण भारत स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त कर सका। **ए.आर. देसाई** ने इस संबंध में लिखा है कि, **"ये आन्दोलन कम अधिक मात्रा में व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा सामाजिक समानता के लिए संघर्ष थे और इनका चरम लक्ष्य राष्ट्रवाद था।"**

5. **पश्चिमी विचारों एवं शिक्षा का प्रभाव (Impact of Western Thought and Education)**–आधुनिक पश्चिमी शिक्षा और विचारधारा के प्रचार तथा प्रसार ने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में अंग्रेजी भाषा के महत्त्व को 1835 ई. में लार्ड मैकाले की सिफारिश पर लार्ड विलियम बैंटिंक ने लागू किया। यद्यपि इसके पीछे मैकाले का उद्देश्य भारतीयों को मानसिक रूप से सदा के लिए गुलाम बनाना था। इस संबंध में **रजनी पाम दत्त** ने लिखा है कि, **"भारत में ब्रिटिश शासन द्वारा पाश्चात्य शिक्षा प्रारम्भ किए जाने का उद्देश्य यह था कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का पूर्णरूप से लोप हो जाए और एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो, जो रक्त एवं वर्ण से भारतीय हो, किन्तु रुचि, विचार शब्द एवं बुद्धि से अंग्रेज हो जाए।"** भारत में अंग्रेजी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए अनेक स्कूल एवं कॉलेज खोले गए। 1857 ई. में बम्बई, कलकत्ता एवं मद्रास में विश्वविद्यालय तथा रुड़की में इंजिनियरिंग कॉलेज खोला गया। इस प्रकार अनेक भारतीय नवयुवक अंग्रेजी भाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा प्राप्त करने में रुचि लेने लगे। धीरे-धीरे अंग्रेजी भाषा नवयुवकों की सम्पर्क भाषा बन गई तथा उनमें विचारों का आदान-प्रदान होने लगा तथा उनमें राष्ट्रीय चेतना जाग्रत होने लगी। पाश्चात्य शिक्षा के अध्ययन से भारतीयों को निम्न लाभ हुए–**प्रथम**, अंग्रेजी भाषा के माध्यम से भारतीयों ने समकालीन यूरोप के अनेक दार्शनिकों एवं राजनीतिज्ञों के संपर्क में आए तथा उनके विचारों से प्रभावित हुए। रूसो, पेन, बर्क, बैन्थम, मिल, मिल्टन, स्पेन्सर, मैकाले आदि के विचारों ने भारतीयों को प्रभावित किया तथा उनमें धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रवाद एवं प्रजातन्त्रवाद के भाव प्रबल होने लगे। **दूसरे**, शिक्षित भारतीयों ने अमेरिका, इटली, जर्मनी, आयरलैण्ड के स्वतंत्रता संग्रामों के संबंध में पढ़ा तथा उनके नायकों जैसे मैजिनी, गैरीबाल्डी व आयरलैंड के राष्ट्रवादी नेता भारतीय राष्ट्रवादियों के राजनीतिक नायक बन गए। समकालीन फ्रांसीसी विचारधारा से भी भारतीय प्रभावित थे। टीपू सुलतान फ्रांसीसी क्रांति से प्रेरित होकर वहाँ के जैकाविन क्लब का सदस्य बन गया था। राजा राममोहन राय ने भी फ्रांसीसी क्रांति के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के उद्देश्य से फ्रांसीसी जलयान से यात्रा करने पर बल दिया था। **तीसरा**, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक भारतीय इंग्लैण्ड गए तथा वे वहाँ के स्वतंत्र वातावरण से बहुत प्रभावित हुए। उनको अपनी दासता अखरने लगी।

गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है कि, **"इंग्लैण्ड में रहने से उन्हें स्वतंत्र राजनीतिक संस्थाओं की कार्यविधि का घनिष्ठ ज्ञान प्राप्त हो जाता था, वे स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता का मूल्य समझ जाते थे तथा उनके मन में जमी हुई दासता की मनोवृत्ति घट जाती थी।"**

यद्यपि ब्रिटिश राजनेताओं तथा भारतीयों में इस बात को लेकर गम्भीर मतभेद है कि अंग्रेजी भाषा ने भारतीय राष्ट्रवाद के उत्थान में कहाँ तक योगदान दिया। इस बारे में इतना बता देना आवश्यक है कि अंग्रेजी भाषा लागू होने से पहले भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती थीं। अतः देश के विभिन्न भागों के लोग एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ सकते थे। अंग्रेजी भाषा ने इस मामले में सम्पर्क भाषा का काम किया जिससे विभिन्न प्रान्तों के लोगों के बीच विचारों का आदान-प्रदान होने लगा। वे राष्ट्रीय समस्याओं पर भी विचार करने लगे तथा वे मिलकर कार्य करने के लिए प्रेरित हुए। **के.एम. पन्निकर** ने लिखा है कि, **"सारे देश की शिक्षा-पद्धति तथा शिक्षा का माध्यम एक होने से भारतीयों की मनोदशा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उनके विचारों, भावनाओं तथा अनुभूतियों से एकरसता होनी कठिन न रही। परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीयता की भावना दिन-प्रतिदिन प्रबल होने लगी।"** तिलक ने भी 1883 ई. में कहा था कि, **"देशभक्ति की भावना अंग्रेजी शिक्षा का परिणाम था।"** उन्होंने अपनी बुद्धिवादी गतिविधियों के समर्थन में फ्रांस की क्रांति का उल्लेख किया है।

इस प्रकार पश्चिमी शिक्षा ने भारतीय राष्ट्रीय चेतना में नवजीवन का संचार किया। परन्तु यह कहना उचित प्रतीत नहीं होता कि भारतीय राष्ट्रीयता पश्चिमी शिक्षा का शिशु थी क्योंकि अंग्रेजी भाषा कभी भी भारत की जन भाषा नहीं बनी तथा शिक्षित वर्ग व जनसाधारण के बीच भाषा की दीवार बनी रही परिणामस्वरूप राष्ट्रीय संग्राम के बढ़ते शैलाब में राष्ट्रवादी नेताओं ने जनता की भाषा में ही बोलकर उसका दिल जीता। विदेशी भाषा यह कार्य नहीं कर सकती थी।

6. **भारतीय समाचार-पत्र एवं साहित्य (Indian Press and Literature)**–आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के परिणामस्वरूप भारत में कुछ नये सामाजिक वर्गों का उत्थान हुआ जिनमें शिक्षित मध्यम वर्ग प्रमुख हैं। इसी वर्ग ने भारत में प्रेस एवं साहित्य के उदय का मार्ग प्रशस्त किया। भारतीय समाचार-पत्रों तथा साहित्य ने राष्ट्रीय

आन्दोलन की प्रगति तथा विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** ने अपनी पुस्तक **'हिस्ट्री ऑफ माडर्न इण्डिया'** में **मुनरो** को उद्धृत करते लिखा है कि, **"एक स्वतंत्र प्रेस और विदेशी राज एक-दूसरे के विरुद्ध हैं तथा ये दोनों एक साथ नहीं चल सकते।"**

कार्ल मार्क्स ने भी प्रेस की भूमिका की महत्ता को स्वीकार करते हुए लिखा है कि, **"एशियाई समाज में स्वतंत्र प्रेस पहली बार प्रस्तावित हुआ, और हिन्दुओं व यूरोपीय लोगों द्वारा समान रूप से पुनर्निर्माण के लिए नवीन व शक्तिशाली एजेन्ट के रूप में व्यवस्थित किया गया।"** प्रेस ने निम्न रूप में राष्ट्रीय चेतना की आधार भूमि तैयार की–

(i) समाचार-पत्रों के द्वारा राष्ट्रवादी राजनीतिक अधिकारों की माँग करते थे तथा उन्होंने लोगों तक प्रतिनिधि सरकार, स्वतंत्र लोकतान्त्रिक समस्याओं, डोमिनियन स्टेट्स व स्वाधीनता आदि विचारों को पहुँचाया।

(ii) समाचार-पत्रों एवं पत्रिकाओं में अंग्रेजी सरकार की अन्यायपूर्ण दमनकारी नीतियों की कड़ी आलोचना की जाती थी जिससे जनसाधारण में अंग्रेजी सरकार के प्रति घृणा एवं असन्तोष की भावना उत्पन्न हुई।

(iii) देश की समस्याओं के बारे में लोगों को जगाया।

(iv) समाचार-पत्रों के माध्यम से राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों का संचालन किया।

(v) प्रादेशिक साहित्य एवं संस्कृति का विकास किया।

(vi) प्रेस के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए जब सरकार ने 1878 ई. में 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट' पास किया जिसके द्वारा भारतीय समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता को नष्ट कर दिया गया था। इस एक्ट ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की गति को तेज कर दिया।

छापेखाने के आविष्कार के पश्चात् भारत में भी हिन्दी व अंग्रेजी दोनों भाषाओं में समाचार-पत्रों का प्रकाशन हुआ। ब्रिटिश मिशनरियों ने **कलकत्ता के निकट श्रीरामपुर** में पहली बार भारत में छापाखाना (Press) स्थापित किया। **प्रथम समाचार-पत्र 'इण्डिया गजट'** का प्रकाशन 1774 ई. में अंग्रेजी सरकार द्वारा ही किया गया। 1780 ई. में **बंगाल गजट** का सम्पादन आरम्भ हुआ। राजा राममोहन राय ने राष्ट्रीय प्रेस की नींव डाली। उनके द्वारा प्रकाशित बंगाली भाषा का साप्ताहिक पत्र **'संवाद कौमुदी'**[1] भारतीय भाषाओं में छपने वाला प्रथम समाचार-पत्र था। **'मिरातुल अखबार'** उनके द्वारा सम्पादित फारसी भाषा का पत्र था। अपने दोनों समाचार-पत्रों के माध्यम से उन्होंने अपने विचार जनसाधारण तक पहुँचाए तथा राजनीतिक जागरण की दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया। 1826 ई. में प्रकाशित होने वाला **उदन्त मार्तण्ड** हिन्दी भाषा का प्रथम समाचार-पत्र था। 1858 ई. के पश्चात् देश में दैनिक एवं साप्ताहिक समाचार-पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई। 1859 ई. में **सोम प्रकाश** का प्रकाशन ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा किया गया। **हिन्दू पैट्रिअट बंगाली, रास्त गुफ्तार, अमृत बाजार पत्रिका, ट्रिब्यून, इण्डियन मिरर, कामरेड, आर्यदर्शन, केसरी, मराठा** आदि अनेक पत्रों का प्रकाशन राष्ट्रवादियों द्वारा विभिन्न भाषाओं में किया गया। 1877 ई. तक इन समाचार-पत्रों की संख्या 644 तक पहुँच गई थी। इन पत्रों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए 1878 ई. में लार्ड लिटन ने प्रेस एक्ट द्वारा इन पर पाबन्दी लगानी पड़ी।

भारतीय कवियों तथा विद्वानों ने भी विभिन्न भाषाओं में राष्ट्रप्रेम से परिपूर्ण रचनाएँ करना आरम्भ किया जिससे राष्ट्रीय साहित्य का जन्म हुआ। **बंकिम चन्द्र चटर्जी** का **आनन्दमठ** देशभक्ति का बाइबिल बन गया। **हेमचन्द्र बनर्जी** ने अपने राष्ट्रीय गीतों द्वारा स्वाधीनता की भावना को प्रोत्साहित किया। आधुनिक हिन्दी के पिता **भारतेन्दु हरिश्चन्द्र** ने अपने नाटक **'भारत दुर्दशा'** के माध्यम से ब्रिटिश राज का असली चित्र प्रस्तुत किया। इसी प्रकार **केशवचन्द्र सेन, रवीन्द्रनाथ टैगोर, आर० सी० दत्त, रानाडे, दादाभाई नौरोजी** आदि ने अपने विद्वतापूर्ण साहित्य के माध्यम से भारत में राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत किया। **इन्द्र विद्यावाचस्पति** ने लिखा है कि, **"माइकल मधुसूदन ने बंगाली में, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में, नर्मदा ने गुजराती में, चिपलुणकर ने मराठी में, भारती ने तमिल में तथा अन्य साहित्यकारों ने विभिन्न भाषाओं में राष्ट्रीयता की भावना से परिपूर्ण उत्कृष्ट साहित्य का सृजन किया। इन साहित्यिक कृतियों ने भारतवासियों के हृदय में सुधार व जागृति की अपूर्ण उमंग पैदा कर दी।"** बद्रीनारायण चौधरी, प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि की रचनाओं में भी देशप्रेम की झाँकी मिलती है। अल्ताफ हुसैन हाली ने उर्दू साहित्य के जरिए राष्ट्र-प्रेम का प्रसार किया।

7. **जाति विभेद की नीति (Recialism)**–19वीं सदी में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय एवं विकास का एक प्रमुख कारण अंग्रेजों की रंगभेद की नीति एवं भारतीयों के प्रति उनकी निरादर की भावना था। सामाजिक न्याय एवं समानता के सिद्धान्तों की दुहाई देने वाले अंग्रेजों की इस प्रकार की नीति एवं व्यवहार ने भारतीयों के आत्म-सम्मान को बहुत ठेस पहुँचाई। अंग्रेज समूची यूरोपियन जाति को एशियाई जाति से ऊँचा मानते थे तथा वे यह चाहते थे कि भारतीय भी इस बात को स्वीकार करें कि अंग्रेजी सभ्यता तथा संस्कृति भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति से श्रेष्ठ है। भारत में आने वाली अन्य जातियों के विपरीत अंग्रेज हमेशा विदेशी बने रहे तथा उन्होंने कभी भी भारतीयों के जीवन तथा उनकी भावनाओं को समझने की कोशिश नहीं की। वे भारतीयों को झूठा तथा बेईमान समझते थे। वे बहुत अभिमानी तथा घमण्डी थे तथा भारतीयों का अपमान करते रहते थे। फिर भी 1857 ई. तक अंग्रेजों व भारतीयों के संबंध बहुत कटु नहीं थे परन्तु 1857 ई. की क्रांति के पश्चात् जातीय कटुता की यह भावना बलवती होती चली गई। **गुरुमुख निहाल सिंह** ने अंग्रेजों की इस भावना को इस प्रकार व्यक्त किया है, **"विद्रोह के बाद भारत में आने वाले अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारतीयों के बारे में विचित्र धारणाएँ होती थीं। वे पंच (Punch) के तत्कालीन कार्टूनों के अनुसार भारतीयों को ऐसा जन्तु समझते थे, जो आधा वनमानुष तथा आधा नीग्रो था, जिसे केवल भय द्वारा ही समझाया जा सकता था और जिसके लिए जनरल नील तथा उनके साथियों का घृणा और आतंक का व्यवहार ही उपयुक्त था।"** अंग्रेजी लेखक **गैरट** ने अपनी पुस्तक 'An Indian Commentary' में यूरोपियनों की जाति विभेद नीति को तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित बताया है।

प्रथम, एक यूरोपियन का जीवन अनेक भारतीयों के बराबर है। **दूसरे,** भारतीय केवल भय एवं दण्ड की भाषा ही समझ सकते हैं। **तीसरे,** यूरोपियन भारत में जनकल्याण के लिए नहीं अपितु निजी स्वार्थों की पूर्ति करने आए थे।

अंग्रेज निम्नलिखित तरीकों द्वारा भारतीयों का अपमान करते थे–

(i) वे भारतीयों को काले लोग समझकर उनसे घृणा करते थे। होटल, क्लब, पार्क, रेल के डिब्बों आदि स्थानों पर वे भारतीयों के साथ नहीं बैठते थे।

(ii) न्याय के मामले में भी भारतीयों के साथ भेदभाव किया जाता था। एक ही अपराध के लिए अंग्रेजों व भारतीयों को अलग-अलग दण्ड दिया जाता था। अंग्रेजों द्वारा कई बार भारतीयों की हत्या भी कर दी जाती थी परन्तु उन्हें कोई दण्ड नहीं दिया जाता था। **अमृत बाजार पत्रिका** में इस प्रकार के कई घटनाओं की चर्चा की गई है जिनमें हत्यारों को पूरी कानूनी सजा नहीं मिली थी।

(iii) भारतीय नौकरों के साथ घृणापूर्ण व्यवहार, गाली-गलौच तथा उनको जरा-जरा सी बात पर पीटना आम बात थी। आसाम के चाय बगानों के मालिक तथा बंगाल के नील के खेतों के मालिक कुलियों तथा मजदूरों को कभी-कभी इतना मारते थे कि वे मर जाते थे। इसी प्रकार सेना के अंग्रेजी अफसर व सिपाही भारतीय खानसामाओं, धोबियों आदि को मारते-पीटते थे तथा उनकी स्त्रियों को अपमानित करते थे।

(iv) भारतीयों को उच्च पदों के अयोग्य समझकर उन्हें इन पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था।

इस प्रकार भारतीय अंग्रेजों के इस व्यवहार से बहुत त्रस्त थे। विशेष रूप से शिक्षित वर्ग जिसको ब्रिटिश उदारवाद से अनेक आशाएँ थीं अत्यधिक निराश था। भारतीयों के हृदय में ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की भावना भड़क उठी तथा वे ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकने के लिए संगठित होने लगे।

8. **यातायात एवं संचार के साधनों का विकास (Development of Means of Transport and Communication)**–आधुनिक भारत में यातायात एवं संचार के साधनों के विकास ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अंग्रेजों ने भारत में सड़कों, रेलों, डाक व तार का विकास

भारत को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित करने के लिए नहीं किया अपितु अंग्रेजी साम्राज्यवाद की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा भारत में अंग्रेजी साम्राज्य को सुदृढ़ करने के लिए किया था। रेलों एवं सड़कों द्वारा भारत के विभिन्न भागों में होने वाले विद्रोह को दबाने के लिए शीघ्रता से सेनाएँ एवं गोला बारूद भेजा जा सकता था। जैसा कि 1857 ई. के विद्रोह को दबाने के लिए किया गया। यातायात के साधनों को विकसित हो जाने से ब्रिटिश तैयार माल भारत के विभिन्न भू-भागों में जाने लगा तथा इन क्षेत्रों से कच्चा माल बंदरगाहों तक पहुँचने लगा जिससे ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को फायदा हुआ। रेलने, डाक एवं तार में बड़ी मात्रा में ब्रिटिश पूँजी भी लगी हुई थी जिससे ब्रिटिश पूँजीपतियों को भारी मुनाफा हो रहा था। परन्तु इन साधनों के विकास ने परोक्ष रूप से भारतीय एकता को मजबूत किया। भारतीयों के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना अब सुगम हो गया। देश के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले लोगों के बीच की दूरी अब कम होने लगी तथा वे एक-दूसरे के निकट आने लगे। उनका आपसी सम्पर्क बढ़ा तथा दृष्टिकोण व्यापक हुआ। समाचार-पत्र एवं पत्रिकाएँ देश के दूर-दूर भागों में पहुँचने लगी जिनसे राष्ट्रवादी विचारों का आदान-प्रदान हुआ। आवागमन एवं संचार के साधनों ने सामाजिक भेदभाव कम करके जनता को एकता के सूत्र में बाँधा। राष्ट्रवादी नेताओं का मिलना आसान हो गया तथा वे अब एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमकर आन्दोलन को और अधिक उग्र बनाने लगे। सारा देश अब सूत्र में बँध गया तथा देशव्यापी आन्दोलन करना अब सम्भव हो गया। गुरुमुख निहाल सिंह के शब्दों में, **"संचार के इन साधनों ने सारे देश को गूँथकर एक कर दिया और भौगोलिक एकता को एक मूर्त वास्तविकता बना दिया।"**

राष्ट्रीय चेतना विकसित करने के बारे में यातायात के साधनों की उपयोगिता के बारे में ए.आर. देसाई ने भी लिखा है कि, **"यातायात के आधुनिक साधनों ने एक विशाल शक्ति के रूप में भारतीय लोगों को सामाजिक रूप से संगठित किया। रेलों के कारण जोकि लम्बी दूरी तय कर सकती थी, ऐसी रेल व्यवस्था ने उस सामाजिक दूरी को समाप्त करने में सहायता दी, जो विभिन्न भागों में रहने वाले लोगों को अलग-अलग करती थी।"**

9. **ऐतिहासिक खोजें (Historical Researches)**–ब्रिटिश साम्राज्य को नैतिक आधार प्रदान करने के लिए अनेक साम्राज्यवादी लेखकों ने भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति एवं इतिहास के बारे में विशेष धारणाएँ व्यक्त की थीं। इन लेखकों ने प्रचार किया था कि प्राचीनकाल में भारत का धर्म तथा समाज पतित था। भारतीयों में कभी भी आत्मविश्वास नहीं रहा यही कारण था कि मध्यकाल में उन्हें मुसलमानों से पराजित होना पड़ा था। इस प्रकार के प्रचार ने भारतीयों के मन में आत्मग्लानि उत्पन्न कर दी थी तथा उन्होंने यूरोपीय सभ्यता की श्रेष्ठता के आधार पर ब्रिटिश शासन को अपना लिया था।

18वीं सदी में अनेक विदेशी विद्वानों ने भारतीय इतिहास संबंधी अनेक खोजें कीं तथा यह पाया कि भारत का सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास किसी भी रूप में समकालीन यूरोपीय सभ्यताओं से हीन नहीं था। सर विलियम जोन्स, मैक्समूलर, रथब्रुक विलियम्स, ए० बी० कीथ, राथ, बुर्नफ, डॉ० भण्डारकर तथा हरप्रसाद शास्त्री जैसे विद्वानों ने संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया तथा यह बताया कि ये ग्रन्थ संसार की सभ्यता की अमूल्य निधियाँ हैं। कनिंघम जैसे पुरातत्वविदों की खुदाइयों ने भारत की महानता तथा गौरव का वह चित्र प्रस्तुत किया जो रोम तथा यूनान की सभ्यताओं से किसी भी पक्ष में कम गौरवशाली नहीं था। जब भारतीयों को भारत की इस गौरवशाली संस्कृति का पता चला तो उनके मन में आत्महीनता के स्थान पर आत्मविश्वास की भावनाएँ जाग्रत हुई तथा उन्होंने उसकी श्रेष्ठता स्थापित करने का प्रयास किया तथा वे अपनी पराधीनता के विषय में सोचने लगे। डॉ. आर.सी. मजूमदार ने लिखा है कि, **"यह खोज भारतीयों के मन में चेतना उत्पन्न करने में असफल नहीं हो सकती थी, जिसके परिणामस्वरूप उनके हृदय राष्ट्रीयता की भावना व देशभक्ति से भर गए।"** इस बारे में के.एम. पन्निकर ने भी लिखा है कि, **"ऐतिहासिक खोजों ने भारतीयों में आत्मविश्वास जाग्रत किया तथा उन्हें अपनी सभ्यता तथा संस्कृति पर गर्व करना सिखाया। इन खोजों से अपने भविष्य के संबंध में भारतीय आशावादी बन गए।"**

10. **सरकारी नौकरियों में भारतीयों के साथ पक्षपात (Baised attitude towards Indians in Govt. Services)**–मध्य एवं उच्च वर्ग के अंग्रेज नागरिक भारत में उच्च पदों को अपने पुत्रों के लिए सुरक्षित समझते थे। यद्यपि 1833 ई. के चार्टर एक्ट एवं 1858 ई. की महारानी विक्टोरिया की घोषणा में यह कहा गया था कि सरकारी नौकरियों में नियुक्ति केवल योग्यता के आधार पर की जाएगी। परन्तु वास्तविकता यह थी कि भारतीय बुद्धिजीवियों को उच्च सरकारी पदों से वंचित रहना पड़ता था।

अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीय शिक्षित वर्ग को 1857 ई. के पश्चात् तो एक सोची समझी रणनीति के अन्तर्गत उच्च पदों विशेष रूप से 'भारतीय नागरिक सेवा' (I.C.S.) से वंचित रखा गया। इस सेवा की परीक्षा में बैठने की आयु 21 वर्ष थी तथा यह परीक्षा भारत से बाहर अंग्रेजी माध्यम से इंग्लैण्ड में होती थी। किसी भी भारतीय द्वारा ऐसी परीक्षा पास करना अत्यन्त कठिन था। इसके बावजूद भी कुछ भारतीयों ने यह परीक्षा पास कर ली। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भाई **सत्येन्द्रनाथ ठाकुर**[1] सिविल सेवा परीक्षा पास करने वाले प्रथम भारतीय थे। भारतीयों की इस सफलता से अंग्रेजी सरकार घबरा उठी तथा भारतीयों को कोई-न-कोई बहाना बनाकर नौकरी से निकालने का प्रयास करने लगी। 1869 ई. में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को आई. सी.एस. की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद मामूली-सी गलती पर उन्हें नौकरी से हटा दिया।

इसी प्रकार अरविन्द घोष को 1877 ई. में घुड़सवारी न आने के आधार पर नियुक्त नहीं किया गया। दूसरी तरफ 1877 ई. में सरकार ने सिविल सेवा परीक्षा की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी, जिससे भारतीयों का इस प्रतियोगिता में शामिल होना असम्भव सा हो गया। इस घटना ने भारत के शिक्षित लोगों पर जो अंग्रेजी सरकार की नीति से पहले ही असन्तुष्ट थे की आशाओं पर पानी फेर दिया। इस अन्याय का विरोध करने के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 1876 ई. में **इण्डियन एसोसिएशन** की स्थापना करके इसके विरुद्ध आन्दोलन संगठित किया। उन्होंने लालमोहन घोष को ब्रिटिश नेता ग्लैडस्टोन से मिलने इंग्लैण्ड भी भेजा। उन्होंने राष्ट्रीय जनमत को जाग्रत करने के लिए सम्पूर्ण देश का दौरा किया जिससे ब्रिटिश विरोधी जनमत तैयार करने व एक देशव्यापी संगठन बनाने में मदद मिली। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा कि, **"मेरे मामले में भारतीयों के हृदय में भारी क्षोभ उत्पन्न कर दिया। उनमें यह विचार फैल गया कि यदि मैं भारतीय न होता, तो मुझे इतनी कठिनाइयाँ नहीं उठानी पड़तीं।"**

11. **विदेशी घटनाओं का प्रभाव (Effect of International Incidents)**–अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के जन्म में काफी सहायता दी। डॉ० मजूमदार ने लिखा है कि, **"19वीं सदी में यूरोप में जो स्वाधीनता संग्राम लड़े गए उन्होंने भी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को काफी प्रभावित किया।"** 19वीं सदी के राष्ट्रीय आन्दोलनों को **अमेरिका की स्वाधीनता** (1776 ई.) तथा **फ्रांसीसी क्रांति** (1789 ई.) ने काफी हद तक प्रभावित किया। स्पेनी तथा पुर्तगाली साम्राज्यों के विरुद्ध दक्षिणी अमेरिकी देशों के संघर्ष (1810-26 ई.) ने भी साम्राज्यवादी भावनाओं को ठेस पहुँचाई। 1820-21 ई. में इटली व 1820-23 ई. में स्पेन में क्रांति हुई। इस क्रांति की सफलता की खुशी में राजा राममोहन राय ने कलकत्ता के टाउन हाल में एक पार्टी दी तथा 1830 ई. की दूसरी क्रांति की सफलता का समाचार सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। 1830 ई. एवं 1848 ई. की फ्रांसीसी क्रांतियों ने भारतीयों में बलिदान की भावना उत्पन्न की। इटली के एकीकरण के कर्णधारों, मैजिनी तथा गैरीबाल्डी की संस्थाओं 'कारबोनारी' व 'युवा इटली' का अनुसरण करके भारतीय नौजवानों ने देश में अनेक गुप्त क्रांतिकारी संगठनों की स्थापना की। **हेनरी विवियन डेरोजियो** ने बंगाल में गैरीबाल्डी की संस्था 'युवा इटली' का अनुसरण करते हुए 'युवा बंगाल' (Young Bangal) नामक संस्था का गठन किया। इसके अतिरिक्त बंगाल में अनेक क्रांतिकारी संस्थाओं की स्थापना हुई। महाराष्ट्र के बलवन्त वासुदेव फड़के का विद्रोह (1879 ई.) तथा पंजाब का **कूका आन्दोलन** (1869-72 ई.) मैजिनी तथा गैरीबाल्डी के आदर्शों से प्रभावित था। यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि अंग्रेज शासकों ने भारत को चारों तरफ से घेरकर उसे अन्य देशों के प्रजातान्त्रिक एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रभाव से दूर रखने का प्रयास किया परन्तु इन घटनाओं ने भारतीयों को उत्साहित किया व उनमें साहस पैदा किया जिसके परिणामस्वरूप वे स्वाधीनता प्राप्त करने के संघर्ष में जुट गए।

12. **लार्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीति (Repressive Policy of Lord Lytton)**–लार्ड लिटन के शासनकाल (1876-1880 ई.) में भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को अत्यधिक बल मिला। "राजनीतिक चेतना

में कभी-कभी दुष्ट एवं अदूरदर्शी प्रशासकों का शासन भी परोक्ष रूप से राजनीतिक प्रगति में वरदान सिद्ध होता है।"

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का यह कथन लार्ड लिटन के संदर्भ में उचित प्रतीत होता है। लार्ड लिटन के शासनकाल में कुछ ऐसी घटनाएँ घटी जिनसे राष्ट्रीय आन्दोलन की ज्वाला धधक उठी। ये घटनाएँ उसकी साम्राज्यवादी एवं प्रतिक्रियावादी आदतों एवं कार्यों का परिणाम था। लार्ड लिटन ने भारतीय जनता पर निम्नलिखित अत्याचार किए–

1. 1876 ई. में लार्ड लिटन ने भारतीय सिविल सेवा (I.C.S) परीक्षा में सम्मिलित होने की आयु 21 वर्ष से घटाकर 19 वर्ष कर दी ताकि भारतीय इस परीक्षा में सम्मिलित नहीं हो सके।
2. 1877 ई. में लार्ड लिटन ने महारानी विक्टोरिया के भारत की साम्राज्ञी (Empress of India) की उपाधि धारण करने के उपलक्ष में दिल्ली में एक शानदार दरबार का आयोजन किया जिसमें लाखों रुपया आतिशबाजी एवं शान-शौकत पर खर्च किया गया जबकि उसी समय दक्षिण भारत में भयंकर सूखा पड़ा था जिसमें लोग कीड़े-मकोड़ों की तरह मर रहे थे। कलकत्ता के एक समाचार-पत्र ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा था कि, **"जब रोम जल रहा था तब नीरो अपनी बाँसुरी बजा रहा था।"** यही नहीं सरकार ने इसी समय लगभग 80 लाख पौंड गेहूँ इंग्लैण्ड को निर्यात भी किया। भारतीयों को पीड़ा पहुँचाने के लिए इससे और अधिक वह क्या कर सकता था।
3. लार्ड लिटन ने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करते हुए अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया तथा युद्ध में खर्च 2 करोड़ स्टर्लिंग भारत की गरीब जनता से वसूल किया गया।
4. लार्ड लिटन ने 1878 ई. में **भारतीय शस्त्र अधिनियम** (Indian Arms Act) पास किया जिसके अनुसार भारतीयों को हथियार रखने पर पाबन्दी लगा दी गई। ऐसा करने पर उन्हें लाइसेंस लेना पड़ता था जबकि अंग्रेजों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था।
5. भारतीय प्रेस लार्ड लिटन के अत्याचारपूर्ण कार्यों का कड़ा विरोध कर रही थी। अतः लार्ड लिटन ने देशी समाचार-पत्रों पर अंकुश लगाने के लिए 1878 ई. में **वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट** पास किया जिससे भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों को प्रकाशन करने से पूर्व ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति लेनी पड़ती थी।
6. लार्ड लिटन ने इंग्लैण्ड के उद्योगपतियों को खुश करने के लिए विदेशी सूती कपड़े पर से आयात कर हटा दिया जिससे भारतीय सूती वस्त्र उद्योग को बहुत हानि पहुँची।

लार्ड लिटन के उपरोक्त कार्यों के परिणामस्वरूप भारतीय जनता में अंग्रेजी शासन के प्रति असन्तोष अत्यधिक बढ़ गया तथा भारतीयों के हृदय में संगठन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। **सर विलियम वेडरबर्न** ने इस बारे में कहा था कि, **"लार्ड लिटन के शासनकाल के अन्त में स्थिति विद्रोह की सीमा तक पहुँच गई थी।"**

13. इल्बर्ट बिल विवाद (Illbert Bill Controversy)–लार्ड लिटन के बाद लार्ड रिपन (1880-84 ई.) भारत का वायसराय बनकर आया। वह उदार विचारों का था। वह भारत का शासन भारतीयों की इच्छा के अनुसार चलाना चाहता था। उसने लार्ड लिटन के अत्याचारपूर्ण शासन में अनेक सुधार किए। वह भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा देने का भी पक्षपाती था तथा भारत में स्थानीय स्वशासन की नींव मजबूत करना चाहता था। उसने न्यायिक व्यवस्था में व्याप्त जातीय भेदभाव को दूर करने का निश्चय किया। भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपियन अपराधियों के मुकदमे सुनने का अधिकार नहीं था। इसलिए लार्ड रिपन ने अपनी कौंसिल के विधि सदस्य सी० पी० इल्बर्ट को इस बारे में एक विधेयक प्रस्तुत करने को कहा। 1883 ई. में इल्बर्ट ने एक बिल पेश किया जो उसके नाम **इल्बर्ट बिल** के नाम से जाना गया। इस विधेयक में भारतीय जजों को यूरोपियन अपराधियों के मुकदमे सुनने तथा उन्हें सजा देने का प्रावधान किया गया था। परन्तु यह बिल एक गम्भीर विवाद का कारण बन गया। अंग्रेजों ने इस बिल को अपना जातीय अपमान समझा तथा भारत व इंग्लैण्ड में

संगठित होकर इसके विरुद्ध जोरदार प्रचार किया। उन्होंने विधेयक का विरोध करने के लिए **'यूरोपियन रक्षा संघ'** की स्थापना कर ली तथा विधेयक के विरोध में चन्दा इकट्ठा करके विभिन्न स्थानों पर सभाएँ आयोजित कीं। हेनरी काटन ने लिखा है कि, **"अंग्रेजों ने रिपन को धोखे से पकड़कर इंग्लैण्ड भेजने की भी योजना बनाई। अन्ततः अंग्रेजों के संगठित विरोध के सामने रिपन को झुकना पड़ा तथा विधेयक में संशोधन किया गया जिसमें भारतीय न्यायाधीश को यूरोपियनों के विरुद्ध मुकदमों का निर्णय करने का तो अधिकार दिया गया परन्तु यूरोपियनों को इसके विरुद्ध ज्यूरी बैठाने का अधिकार दिया गया जिसके कम-से-कम आधे सदस्य यूरोपियन हो। इस प्रकार के संशोधन से विधेयक की मूल भावना समाप्त हो गई।"**

इल्बर्ट बिल से अंग्रेजों की रंगभेद नीति स्पष्ट हो गई व भारतीय जनता की आँखें खुल गई। अंग्रेजों के संगठित विरोध से भारतीय जनता को प्रेरणा मिली तथा वे भारत को अंग्रेजों की दासता से मुक्त करवाने के लिए किसी राष्ट्रव्यापी संगठन की संरचना के प्रयास करने लगे। डाडवेल ने लिखा है कि, **"इस बिल के विरोध ने भारतीयों को एक ऐसे संगठन की आवश्यकता अनुभव करा दी जो अखिल भारतीय हो तथा राजनीतिक उद्देश्य रखता हो।"** सर हेनरी काटन ने भी डाडवेल का समर्थन करते हुए लिखा है कि, **"इस विधेयक के विरोध में किए गए यूरोपियन आन्दोलन ने भारत की राष्ट्रीय विचारधारा को जितनी एकता प्रदान की, उतनी तो विधेयक पारित होकर भी नहीं कर सकता था।"** सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भी एक स्वाभिमानी भारतीय के लिए विधेयक **को देशभक्ति की महान् पुकार बताया है।**

इस प्रकार इल्बर्ट बिल भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुआ जिसने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

14. प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना (Formation of Provincial and National Political Organisation)–अंग्रेजी शासन के परिणामस्वरूप देश में धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का उद्भव होने लगा तथा इसी जागरण के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में प्रान्तीय स्तर की संस्थाओं का निर्माण होने लगा। इन संस्थाओं ने ही अन्ततः भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान दिया। बंगाल, बिहार तथा बम्बई व मद्रास प्रान्तों में कुछ सर्वप्रथम संस्थाओं का गठन हुआ। 1838 ई. में कलकत्ता के जमींदारों ने अपने हितों की रक्षा के लिए **भू-स्वामियों का समाज** (Land Holdlers Society) का गठन किया। 1843 ई. में **बंगाल ब्रिटिश भारतीय समाज** तथा 1851 ई. में **ब्रिटिश इंडिया एसोसिएशन** का गठन किया गया। मद्रास व बम्बई प्रान्तों में भी इसी प्रकार के संगठनों–1852 ई. में **मद्रास नेटिव एसोसिएशन** तथा **बम्बई नेटिव एसोसिएशन** का गठन हुआ। इन संस्थाओं ने सरकार से प्रशासनिक सुधारों की माँग की। 1860 ई. के पश्चात् पढ़े-लिखे भारतीयों ने इंग्लैण्ड तथा भारत में ब्रिटिश विरोधी जनमत तैयार करने के लिए तथा भारतीयों को अधिकार देने हेतु अनेक संगठनों का गठन किया। विख्यात अर्थशास्त्री **दादाभाई नौरोजी** ने 1866 ई. में लन्दन में **ईस्ट इंडिया एसोसिएशन** का गठन किया तथा भारत के प्रमुख नगरों में इसकी शाखाएँ स्थापित कीं। उन्होंने जनता के समक्ष अंग्रेजी सरकार द्वारा किए जाने वाले आर्थिक शोषण का खुलासा किया। 1870 ई. में दूसरे राष्ट्रवादी नेता **महादेव गोविंद रानाडे** ने **पूना सार्वजनिक सभा** का गठन करके महाराष्ट्र में राजनीतिक जागृति उत्पन्न की। फिरोजशाह मेहता एवं बदरुद्दीन तैयब जी के प्रयासों से 1855 ई. में **बम्बई प्रेजीडेन्सी संघ** तथा 1881 ई. में **मद्रास महाजन सभा** का शुभारम्भ हुआ। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एवं आनन्द मोहन बोस ने **विद्यार्थी संघ** का गठन किया जिसने बंगाल के नवयुवकों में राजनैतिक चेतना के विकास में योगदान दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक नये युग की शुरुआत 1876 ई. में हुई जब **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** तथा **आनन्द मोहन बोस** के नेतृत्व में कलकत्ता के इल्बर्ट हाल में **भारतीय संघ (इण्डियन एसोसिएशन)** का गठन हुआ। इस संस्था का उद्देश्य देश में शक्तिशाली जनमत का निर्माण करना, जनता के हितों तथा उनकी आकांक्षाओं को आधार बनाकर भारतीयों में एकता स्थापित करना था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने पूरे देश का दौरा किया, ब्रिटिश शासन के विरुद्ध जनमत तैयार किया। उन्हीं के प्रयासों में 1883 ई. में इंडियन नेशनल कांफ्रेन्स का पहला अधिवेशन तथा 1885 ई. में दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। प्रो० हीरालाल सिंह ने लिखा है कि, **"सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का राजनीतिक जीवन इण्डियन सिविल सर्विस आन्दोलन से** आरम्भ हुआ जो कि इण्डियन

राष्ट्रीय आन्दोलन का अग्रसर बना।" इस प्रकार इन प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय राजनीतिक संस्थाओं ने देश के राष्ट्रीय जागरण में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इतिहासकार अनिल सील ने भी इनके महत्त्व को स्वीकार किया है।

नेशनल कांग्रेस जैसे अधिक व्यापक राजनीतिक आन्दोलन का अग्रसर बना।"

15. **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (Foundation of Indian National Congress)**–सन् 1870 के दशक के अन्त से और सन् 1880 के दशक के प्रारम्भ तक पर्याप्त राजनैतिक चेतना का संचार हो चुका था। भारतीय राजनीति में कुशल राजनीतिज्ञों एवं बुद्धिजीवियों ने राष्ट्रीय हितों के लिए अखिल भारतीय स्तर पर संघर्ष करने का उत्साह दिखाई देने लगा था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 1876 ई. **इण्डियन एसोसिएशन** का गठन करके प्रथम राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की। यद्यपि इस संस्था ने प्रमुख विषयों पर भारतीयों की आवाज को सरकार तक पहुँचाने का कार्य किया तथा एसोसिएशन को अखिल भारतीय स्वरूप देने की भरसक कोशिश की परन्तु यह मूलतः बंगाल का ही संगठन बना रहा। 1883 ई. में एसोसिएशन के प्रयत्नों से **इण्डियन नेशनल कान्फ्रेंस** का पहला अधिवेशन हुआ। बंगाल के बाहर के अनेक नेताओं ने भी इस सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में भावी इण्डियन नेशनल कान्फ्रेंस के कार्यक्रम को स्वीकार किया गया। इस प्रकार एक अखिल भारतीय संगठन की पृष्ठभूमि तैयार हो गई। इसी पृष्ठभूमि पर अन्ततः दिसम्बर, 1885 ई. में एक सेवानिवृत्त अंग्रेज अधिकारी ए० ओ० ह्यूम ने **इण्डियन नेशनल कांग्रेस** (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) की स्थापना की। इस बारे में डॉ० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है कि, **"इण्डियन नेशनल कांग्रेस का उद्‌भव कोई आकस्मिक घटना नहीं थी और न ही इसके तौर तरीकों में कोई नयापन था। सन् 1883 ई. और 1885 ई. में होने वाली नेशनल कान्फ्रेंस अपनी मौलिक रूपरेखा में काफी सीमा तक इसके अनुरूप थी।"** इस प्रकार कांग्रेस ने उभरते हुए राष्ट्रवाद को एक मंच प्रदान किया। राष्ट्रवादी आन्दोलन का नेतृत्व कांग्रेस ने किया, इसलिए डॉ० पट्टाभिसीतारमैया ने **कांग्रेस के इतिहास को ही भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के इतिहास की संज्ञा दी है।** कांग्रेस ने भारत को एक 'राष्ट्र' बनाने के लिए अपना प्रमुख उद्देश्य देशवासियों के बीच वंश, धर्म एवं प्रान्त संबंधी दूषित संस्कारों को समाप्त करके राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करना बताया। कांग्रेस ने उभरते हुए राष्ट्रवाद को एक वैचारिक आधार प्रदान करके बड़ी चतुराई से राष्ट्रवाद की जड़ों को मजबूत किया तथा अन्ततः उसके नेतृत्व में भारत स्वतंत्रता के द्वार तक पहुँचा।

क्या भारतीय राष्ट्रवाद अंग्रेजों की देन थी?
(Was Indian Nationalism Contribution of Britishars)

भारतीय राष्ट्रीय चेतना का उदय एवं विकास अंग्रेजी शासनकाल के दौरान हुआ। अंग्रेजी **शोषण** के परिणामस्वरूप राष्ट्रवाद का जन्म हुआ अतः कुछ अंग्रेज इतिहासकारों ने यह माना है कि अंग्रेजी शासन ने भारतीयों को सभ्यता का पाठ पढ़ाया तथा भारत में राष्ट्रवाद की भावना पैदा की अर्थात् भारतीय राष्ट्रवाद अंग्रेजों की देन है। **स्ट्रेची** तथा **सीले** के कथनों से इस बात की पुष्टि होती है। **जान स्ट्रेची** ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि, **"भारत के विषय में यह समझ लेना आवश्यक है कि न यह कोई देश है और न कभी था।"** इन विद्वानों के मतानुसार भारत का विशाल जनसमुदाय लगभग सभी विषयों जैसे भाषा, धर्म, जाति, राजनीति इत्यादि पर विभाजित था। **सर जान शीले** ने उद्घोषणा की थी–**"भारत कोई एक राजनैतिक नाम नहीं है, केवल एक भौगोलिक अभिव्यक्ति है जैसे अफ्रीका।" यह किसी देश की भाषा या क्षेत्रफल को संबोधित नहीं करता, वरन् कई राष्ट्रों एवं भाषाओं की ओर संकेत करता है। रैम्जे मैकडोनाल्ड** की धारणा भी इसी प्रकार की थी। उन्होंने यह कहना आरम्भ किया था कि, **"भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन मूलतः उन्हीं की देन है। भारतीय जनता का राजनीतिक मनोवृत्ति वाला हिस्सा बौद्धिक दृष्टि से हमारी सन्तान है। उन्होंने उन विचारों को ग्रहण किया है, जिन्हें हमने खुद उनके सामने रखा।....."** इस प्रकार कुछ लोगों ने इस बात पर जोर दिया कि भारतीयों को सभ्यता का पाठ अंग्रेजों ने पढ़ाया तथा उनमें जागृति उत्पन्न की।

परन्तु उपरोक्त मत में सत्यता नहीं है। भारतीयों को राष्ट्रीय जागृति की प्रेरणा सर्वप्रथम धार्मिक तथा सामाजिक सुधार आन्दोलनों ने दी। इन्हीं आन्दोलनों ने देशभक्ति तथा स्वाभिमान का बीज बोया। आर्थिक, राजनीतिक तथा अन्य कारणों ने उस बीज को अंकुरित तथा प्रस्फुटित होने में मदद की। अंग्रेजी शासन के

परोपकारी साम्राज्यवाद का विचार भी गलत है। अंग्रेजों ने भारत पर अधिकार उसे लूटने के लिए किया था न कि उसे राष्ट्र बनाने के लिए। उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों जैसे आधुनिक शिक्षा-पद्धति, समाचार-पत्र, कानून, न्यायालयों की स्थापना, रेलवे एवं संचार के साधनों का विकास, राजनीतिक एवं प्रशासनिक एकीकरण आदि के पीछे मूल उद्देश्य भारतीय जनता का भला करना नहीं अपितु भारत की लूट की गति को तेज करना था क्योंकि उनका विचार था कि आधुनिक शिक्षा प्राप्त वर्ग अंग्रेजी माल का प्रयोगकर्ता बनेगा व अंग्रेजी शासन का प्रशंसक जिससे अंग्रेजी शान की जड़ें भारत में मजबूत होंगी। परन्तु इन सभी कार्यों ने परोक्ष रूप से भारत में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न कर दी। यदि भारत पर अंग्रेज या किसी विदेशी शक्ति का शासन नहीं भी होता तब भी भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म निश्चय ही हुआ होता। प्रजातान्त्रिक विकास की जड़ें इंग्लैण्ड के अलावा आधुनिक युग के कई राष्ट्रों में प्रबलता से प्रसारित हो चुकी थीं। भारत की राष्ट्रीयता पर फ्रांस की राज्य क्रांति एवं अमेरिका के स्वतंत्रता संघर्ष एवं रूसी क्रांति का भी अच्छा प्रभाव पड़ा। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद अंग्रेजी शासन की देन नहीं था। इस बारे में **हीरेन्द्रनाथ मुखर्जी** का उचित मानना है कि, **"भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश साम्राज्यवाद का शिशु नहीं था अपितु ब्रिटिश शासकों ने भारत में लूट और बरबादी के कार्यों के साथ-साथ एक प्रगतिशील कार्य भी किया। इस शासन ने पुरानी अर्थव्यवस्था को नष्ट कर डाला। रेलें बनाई, एकरूप प्रशासन और शासन की पद्धति ने उस प्रक्रिया में अनजाने में ही एक नई मंजिल की नींव डाली।"**

❑ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के स्वरूप की चर्चा कीजिए।
(Discuss the Nature of Indian National Congress.)

अथवा

❑ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के संबंध में विभिन्न सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए।
(Throw light on the various theories regarding the birth of Indian National Congress.)

अथवा

❑ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रारम्भिक नीतियों एवं कार्यक्रमों का उल्लेख कीजिए।
(Discuss the policies and programmes of Indian National Congress.)

उत्तर : 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतीय राष्ट्रवाद के उदय तथा विकास के लिए उत्तरदायी कारणों का अध्ययन हमने इससे पूर्व के अध्याय में किया। सन् 1870 ई. के दशक के अन्त से और सन् 1880 ई. के दशक के शुरू में भारतीय जनता राजनीतिक रूप से काफी जागरूक हो चुकी थी। 1885 ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना इसी बढ़ी हुई जागरूकता का परिणाम थी। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में कांग्रेस का बहुत बड़ा योगदान रहा। कांग्रेस का इतिहास ही भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास बन गया। कांग्रेस के नेतृत्व में ही अन्ततः भारतीय जनता ने स्वतंत्रता रूपी महल का निर्माण किया। कांग्रेस को स्थापित करने तथा उसे आगे बढ़ाने में राष्ट्रवादियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। कांग्रेस की बागडोर प्रारम्भ में कुछ ऐसे राष्ट्रवादियों के हाथ में थी जो अपने स्वभाव तथा तौर-तरीकों में नरम थे। उन्हें 'उदारवादी' कहा जाता है।

I. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (FORMATION OF INDIAN NATIONAL CONGRESS)

1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन को संगठित करने तथा अलग-अलग आन्दोलनों में शक्ति नष्ट करने की जगह सर्वमान्य राजनीतिक कार्यक्रम अपनाकर एक साथ शक्तिशाली आन्दोलन चलाने की प्रबल भावना का परिणाम था।

लार्ड डफरिन के शासनकाल में इस शक्तिशाली भारतीय संगठन की स्थापना का श्रेय एक सेवानिवृत्त अंग्रेज आई. सी.एस. अधिकारी ए.ओ. ह्यूम को जाता है। एक अंग्रेज अधिकारी द्वारा कांग्रेस की स्थापना होने के कारण विद्वानों में कांग्रेस के जन्म के संबंध में मतभेद हैं। अतः सर्वप्रथम हम कांग्रेस की स्थापना संबंधी उठने वाले विवादों की चर्चा करेंगे।

कांग्रेस की स्थापना संबंधी विचार (Ideologies Regarding the Origin of Congress)

कांग्रेस की स्थापना एक सेवानिवृत्त अंग्रेज अधिकारी द्वारा की गई इसलिए कांग्रेस की स्थापना संबंधी विवाद पैदा हो गए। कांग्रेस की स्थापना के पीछे ह्यूम का उद्देश्य ब्रिटिश शासन के विरुद्ध निरन्तर बढ़ते हुए असंतोष की अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करना अर्थात् अभय दीप (सुरक्षा वाल्व) प्रदान करना माना गया। सर्वप्रथम लाला लाजपत राय ने इस प्रकार के विचार व्यक्त किए थे। इसके पश्चात् विद्वानों के बीच कांग्रेस

की स्थापना को लेकर विवाद खड़ा हो गया। कांग्रेस की स्थापना संबंधी कुछ गौण विचारों का विवरण इस प्रकार है–

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अध्यक्ष **डब्ल्यू.सी. बनर्जी** के मतानुसार एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन के रूप में कांग्रेस की स्थापना का श्रेय लार्ड डफरिन को है। विद्वानों के इस विचार के पीछे 13 जनवरी, 1889 ई. को ह्यूम द्वारा रिपन को लिखा वह पत्र रहा होगा जिसमें ह्यूम ने डफरिन से अपनी मुलाकात के बारे में बताया था। इस पत्र से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना से पहले डफरिन से सलाह ली थी तथा डफरिन ने इसका समर्थन किया था। परन्तु कांग्रेस की स्थापना के बाद डफरिन के कांग्रेस के प्रति दृष्टिकोण को देखते हुए बनर्जी का यह विचार उचित नहीं लगता।

2. कांग्रेस की उत्पत्ति संबंधी एक अन्य विचार **थियोसोफिस्टों द्वारा कांग्रेस की स्थापना करना भी है। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट** ने अपनी पुस्तक **हाउ इण्डिया फौट फोर फ्रीडम**[1] के पृष्ठ 1 व 2 पर लिखा है कि, **"कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन को बुलाने का निर्णय थियोसोफिकल सोसाइटी के मद्रास में दिसम्बर, 1884 ई. को सम्पन्न हुए अधिवेशन के पश्चात् 17 प्रमुख भारतीयों ने लिया।"** इसी प्रकार **थियोसोफिस्टो के सबसे बड़े गुरु ऑलकाट** ने 1886 में कहा था, **"थियोसोफिकल सोसाइटी इण्डियन नेशनल कांग्रेस की जननी है क्योंकि इसने ही पहले पहल दिखाया कि भारत के विभिन्न भागों के लोगों को एक साथ इकट्ठा करना और उनके बीच मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करना संभव है। यह बात पहले कभी नहीं देखी गई थी।"** रघुनाथ राव तथा नरेन्द्रनाथ सेन ने भी इसी प्रकार के दावे को 1888 ई. एवं 1889 ई. में दोहराया था। तथ्यों को देखने से स्पष्ट होता है कि यद्यपि दिसम्बर, 1884 ई. में थियोसोफिस्ट नेता रघुनाथ राव के घर कुछ लोगों की बैठक हुई थी तथा जिसमें एक सामाजिक संगठन बनाने की चर्चा हुई थी परन्तु बाद में इस प्रकार का संगठन बनाने का कोई व्यावहारिक कदम नहीं उठाया गया। थियोसोफिस्ट कांग्रेस को अपनी कहने का दावा नहीं कर सकते क्योंकि ठीक उसी समय जिस समय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन चल रहा था थियोसोफिकल सोसाइटी के अदियार में होने वाले वार्षिक सम्मेलन में आलकाट ने कहा था कि, **"वर्तमान थियोसिफल कांग्रेस बम्बई में हो रही राजनीतिक कांग्रेस से कहीं ज्यादा महान् और उत्तम है क्योंकि आप लोग यहाँ मानवता को सुधारने के लिए इकट्ठे हुए हैं।"**

अतः कांग्रेस की स्थापना संबंधी उपरोक्त विचार तर्कसंगत नहीं है।

3. रूस की मध्य एशिया में प्रगति तथा उसके भारत आक्रमण के भय को भी कांग्रेस की स्थापना का कारण माना गया है। इस तथ्य की पुष्टि **वेडरबर्न की सार्वजनिक** घोषणाओं से होती है। **बी.एल. ग्रोवर** ने लिखा है कि **"कांग्रेस के सम्मुख अपने अध्यक्षीय भाषण में (दिसम्बर, 1889) वेडरबर्न ने कहा था कि भारत पर अपने आक्रमण की सफलता के लिए रूस के सेनापति इस बात की आशा करते हैं कि इस देश के लोग ब्रिटिश शासन के लिए विद्रोह करेंगे।"** रूस ने 1884 ई. में मर्व पर आक्रमण कर दिया था तथा उसके संबंध पंच देह क्षेत्र को लेकर अफगानिस्तान से तनावपूर्ण थे। अतः ऐसी स्थिति में कहीं उग्र राष्ट्रवादी रूसी सहयोग से ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फेंके। इसलिए डफरिन ने शिमला में ह्यूम से मिलकर कांग्रेस की स्थापना करने की मंजूरी दी थी परन्तु केवल रूसी आक्रमण के भय से राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई ऐसा मानना उचित प्रतीत नहीं होता जबकि ह्यूम के लिए एक सच्चे राजभक्त संगठन की स्थापना के लिए रूसी आक्रमण एक सहायक कारण माना जा सकता है।

कांग्रेस की स्थापना संबंधी प्रमुख विचार

कांग्रेस की स्थापना संबंधी विचारों में मुख्य रूप से दो विचारों को मान्यता प्राप्त है– **प्रथम,** सुरक्षा नली का सिद्धान्त (Safety Valve Theory) तथा **द्वितीय,** एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में (A National Organisation)।

1. **सुरक्षा नली सिद्धान्त (Safety Valve Theory)**–लाला लाजपत राय तथा नन्दलाल चटर्जी ने विचार व्यक्त किया था कि कांग्रेस की स्थापना के पीछे ह्यूम का उद्देश्य अंग्रेजी साम्राज्य को बचाना था। लाला लाजपत राय ने अपनी पुस्तक Young India में लिखा है कि, **"भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यह था कि हम ब्रिटिश साम्राज्य की संकटों से रक्षा करना तथा उसको छिन्न-भिन्न होने से बचाना चाहते**

हैं।" उन्होंने आगे कहा था कि, **"कांग्रेस लार्ड डफरिन के दिमाग की उपज थी।"** सुरक्षा नली सिद्धान्त संबंधी विचार के संबंध में निम्नलिखित बातें कहीं जा सकती हैं–

ह्यूम एक अंग्रेज अधिकारी था तथा वह भारतीय जनता के बढ़ते असंतोष से परिचित था। वह इस बात से चिंतित था कि कहीं यह असंतोष भयंकर विद्रोह का रूप धारण न कर ले। अतः उसने असंतोष को रोकने के लिए कार्य किया। इसकी पुष्टि **वेडरबर्न** के लेख से होती है–**"भारत के विभिन्न भागों से ब्रिटिश साम्राज्य के हितैषियों से ह्यूम को ब्रिटिश सरकार तथा भारत के भविष्य के लिए खतरे की चेतावनी मिल गई थी, क्योंकि जनता के कष्ट बढ़ गए थे और बुद्धिजीवी सरकार के विरुद्ध थे।"** ह्यूम की जीवनी के लेखक वेडरबर्न के लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि लार्ड लिटन के शासनकाल की समाप्ति पर भारत क्रांति के बहुत नजदीक पहुँच गया था। ह्यूम ने पुलिस की 30 हजार गुप्त रिपोर्टों के सात बड़े-बड़े संग्रह पढ़ने के बाद इस निर्णय पर पहुँचा था कि जनता की दयनीय दरिद्रता और शिक्षित नवयुवकों का घोर असंतोष क्रांति का रूप ग्रहण करने वाले हैं। दक्षिण के किसान विद्रोह (बलवन्त फड़के के नेतृत्व में रामोशी किसानों का विद्रोह) तथा बंगाल के उग्र क्रांतिकारियों की गतिविधियों ने दूरदर्शी ह्यूम को भावी खतरे की पूर्व सूचना दे दी थी। अतः उन्होंने जनता के असंतोष को क्रांति का रूप ग्रहण करने से रोकने के लिए अभयदीप (Safety Valve) का निर्माण किया जो कांग्रेस थी। **ह्यूम** ने एक बार कहा था कि, **"भारत में असंतोष की बढ़ती हुई शक्तियों से बचने के लिए एक अभयदीप की आवश्यकता है और कांग्रेस आन्दोलन से बढ़कर अभयदीप दूसरी कोई चीज नहीं हो सकती।** मिस्टर वेडरबर्न ने भी अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा था कि, **"ह्यूम साहब की यह योजना क्रांति का भय दूर करने तथा भारतीयों के उमड़ती राष्ट्रीयता की भावना को रोकने के उद्देश्य से बनाई गई थी।"** इतिहासकार गुरुमुख निहाल सिंह, आर.सी. मजूमदार एवं रजनी पाम दत्त ने भी इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। **रजनी पाम दत्त** ने लिखा है कि, **"कांग्रेस की स्थापना ब्रिटिश सरकार की एक पूर्व निश्चित गुप्त योजना के अनुसार की गई थी।"**

यह सत्य है कि कांग्रेस ने ब्रिटिश अधिकारियों की आशाओं को पूरा किया। यह शिक्षित भारतीयों के असंतोष का केन्द्र बन गई तथा असंतोष को वैधानिक रूप से व्यक्त करने का एक मंच बन गई। 1889 ई. की कांग्रेस रिपोर्ट से इसकी पुष्टि होती है। "कांग्रेस आन्दोलन की यह महत्ता है कि उसने भारत में फैली हुई छोटी-मोटी क्रांतिकारी संस्थाओं को दबा दिया और राजनैतिक असंतोष को वैधानिक उपायों द्वारा व्यक्त करने का साधन उपस्थित किया।" **परन्तु अभयदीप का सिद्धान्त एक आंशिक सत्य है।** आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत ऐतिहासिक तथ्यों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि इस मिथक को जितना महत्वपूर्ण माना जा रहा है, यह उतना सबल एवं ठोस नहीं है। इतिहासकार **विपिन चन्द्र** ने वेडरबर्न द्वारा उल्लिखित 30 हजार गुप्त रिपोर्टों के सात संग्रहों को सी.आई.डी. की रिपोर्ट मानने पर आपत्ति व्यक्त की है तथा बताया है कि ह्यूम जो गृह विभाग के सचिव नहीं थे वे भला इन रिपोर्टों का अध्ययन कैसे कर सकते थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष' के पृष्ठ 30 पर लाला लाजपत द्वारा के 1916 ई. में प्रकाशित 'यंग इण्डिया' के 'सुरक्षा नली' सिद्धान्त को लालाजी द्वारा कांग्रेस के नरम पंथी पक्ष पर प्रहार करने के लिए प्रयोग किया जाना बताया है।

सत्य तो यह है कि इस समय जो भारतीय लोग अखिल भारतीय संगठन की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे वे नए सामाजिक तत्वों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे तथा अंग्रेजों द्वारा भारत के शोषण के विरुद्ध थे। वे उच्च कोटि के देशभक्त थे तथा विदेशी सरकार के अनुयायी नहीं थे। उन्होंने ह्यूम का साथ इसलिए दिया कि वे अपनी प्रारम्भिक राजनैतिक गतिविधियों के लिए सरकार के संदेह का पात्र नहीं बनना चाहते थे। उन्होंने तड़ित चालक के रूप में कार्य करके आन्दोलन को ब्रिटिश सरकार के निरंकुश दमन से बचाया।

इस प्रकार उपरोक्त सिद्धान्त को पूर्णतया सत्य नहीं माना जा सकता।

2. **एक राष्ट्रीय संस्था संबंधी विचार (Theory Regarding a National Organisation)**–कांग्रेस की स्थापना के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण धारणा है कि कांग्रेस की स्थापना भारतीयों के लिए एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में की गई थी। प्रसिद्ध इतिहासकार **डॉ. ईश्वरी प्रसाद** ने लिखा है कि, "राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

भारतीयों के हित की दृष्टि से की गई थी।" इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हुए गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है कि, **"यह सम्भव है कि ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने के लिए कांग्रेस का अभयदीप की तरह प्रयोग करने का विचार ह्यूम तथा वेडरबर्न के हृदय में हो, परन्तु यह मानना असंभव है कि राष्ट्रवादी नेता (नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि) ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने का विचार रखते हो।"**

आधुनिक इतिहासकार **प्रो० विपिन चन्द्र** ने भी कांग्रेस के उदय को 19वीं सदी में ब्रिटिश साम्राज्य के शोषण से उत्पन्न राष्ट्रीयता की भावना का परिणाम माना है। उन्होंने लिखा है कि, **"1885 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना न तो अप्रत्याशित घटना थी और न ही कोई ऐतिहासिक दुर्घटना। कांग्रेस की स्थापना बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना की पराकाष्ठा थी।"**

1875 के पश्चात् युवा वर्ग में पनपी राजनीतिक चेतना के परिणामस्वरूप देश के विभिन्न भागों में अनेक संगठन बनने शुरू हो गए थे। 1876 ई. में बंगाल के युवा राष्ट्रवादियों सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा आनन्द मोहन बोस ने 'इण्डियन एसोसिएशन' का गठन किया था। इसी प्रकार 1884 ई. में मद्रास के युवा नेताओं सुब्रह्मण्यम अय्यर तथा आनन्द चार्लू ने 'मद्रास महाजन सभा' का गठन किया था। इसी प्रकार 1885 ई. में बम्बई के युवा नेताओं ने भी 'बाम्बे प्रेजीडेंसी एसोसिएशन' का गठन किया था। इस प्रकार देश के विभिन्न भागों में अनेक संस्थाएँ बनने लग गई थीं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की संस्था 'इण्डियन एसोसिएशन' ने तो 1883 ई. एवं 1885 ई. में दो अखिल भारतीय सम्मेलन भी आयोजित किए थे। जिनमें बंगाल के अतिरिक्त देश के अन्य भागों के लोग भी सम्मिलित हुए थे। इतिहासकार **अनिल सील** ने इस सम्मेलनों को कांग्रेस की स्थापना के पूर्वाभ्यास की संज्ञा दी है। इसी प्रकार दिसम्बर, 1884 ई. में थियोसाफिकल सोसाइटी के अधिवेशन के उपरान्त रघुनाथ राव के निवास पर देश के विभिन्न भागों से आए 17 व्यक्ति एकत्र हुए थे। उनका उद्देश्य देश के सभी राजनीतिज्ञों को एकत्र करने का उपाय तथा ढंग पर विचार करना तथा देश की वर्तमान सरकार के उपायों तथा साधनों में सुधार के लिए एक राजनीतिक आन्दोलन प्रारम्भ करना था। इस प्रकार विभिन्न संस्थाओं द्वारा कांग्रेस की स्थापना की पृष्ठभूमि तैयार कर दी गई थी।

अन्ततः 28 दिसम्बर, 1885 को राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना देश के विभिन्न भागों में रहने वाले राष्ट्रवादियों के सामूहिक प्रयासों का फल था तथा इसका निर्माण एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में किया गया था। इसकी पुष्टि कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के समय अध्यक्ष **वोमेशचन्द्र बनर्जी** द्वारा बताए गए उद्देश्यों से होती है। जिसमें कहा गया था कि देशप्रेमियों के बीच वंश, धर्म एवं प्रान्त संबंधी दूषित संस्कारों को मिटाकर राष्ट्रीय एकता की भावना का पोषण करना तथा उसमें वृद्धि करना था। इस प्रकार कांग्रेस राष्ट्रीय चेतना का प्रतीक था, भारतीय राजनीति के लिए एक प्लेटफार्म, एक संगठन तथा एक मुख्यालय था।

ह्यूम द्वारा कांग्रेस की स्थापना
(Foundation of Congress by Hume)

ऐलेन आक्टेवियन ह्यूम को अक्सर **"भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्मदाता'** माना जाता है। देश में जब एक अखिल भारतीय संगठन की स्थापना की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी तब कांग्रेस की स्थापना का श्रेय ह्यूम को मिला। वे स्काटलैंड के रहने वाले थे तथा उन पर उनके पिता जोसफ ह्यूम जो इंग्लैण्ड के रेडिकल नेता थे, का काफी प्रभाव पड़ा था। 1849 ई. में कंपनी की सेवा में आने के बाद ह्यूम ने विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर काम किया। ह्यूम को भारत सरकार के सचिव होने का भी गौरव मिला परन्तु लार्ड लिटन के साथ मतभेदों के चलते उसे पदानवत भी किया गया। भारतीय सिविल सेवा से रिटायर होने (1879) के पश्चात् ह्यूम शिमला में बस गया तथा उसकी रुचि भारतीय राजनीति में भी बढ़ी। एक अंग्रेज होते हुए भी उसकी रुचि भारतीयों की सामाजिक तथा राजनीतिक दशा सुधारने में थी। देश के प्रमुख राष्ट्रवादियों के साथ उसके मधुर संबंध थे। देश के विभिन्न भागों में जब एक राष्ट्रीय संगठन स्थापित करने की दिशा में प्रयास चल रहे थे तब ह्यूम ने भी भारतीयों का एक राष्ट्रीय स्तर के संगठन बनाने के अपने प्रयास आरम्भ किए तथा अन्ततः 28 दिसम्बर, 1885 ई. को ह्यूम के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन हुआ। ह्यूम द्वारा कांग्रेस की स्थापना किए जाने के विभिन्न चरण इस प्रकार हैं—

1. **कलकत्ता के स्नातकों के नाम पत्र (Open Letter to the graduates of Calcutta)**–1879 ई. में अपनी सेनानिवृत्ति के पश्चात् ह्यूम महोदय 1882 ई. तक जिम्मेदार सरकारी पदों पर थे। इन्हीं पदों पर रहते हुए उसके मन में भारतीय शिक्षित वर्ग में पनप रहे असंतोष को दूर करने के लिए एक संगठन की स्थापना का विचार आया। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने 1 मार्च, 1883 ई. को कलकत्ता के स्नातकों के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी–

"यदि आप लोग, जो देश की आशाओं के केन्द्र हैं, तथा उच्च शिक्षा प्राप्त किए हैं, अपने सुख चैन तथा स्वार्थ को त्यागकर स्वाधीनता प्राप्त करने के काम में नहीं लगा सके ....। तब कहना होगा कि उन्नति की सब आशाएँ व्यर्थ हैं, तथा भारत उसी प्रकार के शासन के योग्य है जो उसे मिला हुआ है।"

उन्होंने आगे कहा कि, **"यदि पचास शिक्षित नवयुवक ही स्वार्थ त्यागकर देश की स्वतंत्रता के लिए संगठित होकर प्रयत्न करें तो आगे कार्य सरल हो सकता है।"**

ह्यूम ने अपने पत्र के अंत में काफी प्रभावशाली ढंग से नवयुवकों को आत्म बलिदान तथा निःस्वार्थ धर्म के लिए प्रेरित किया था।

"आपके कन्धों पर रखा हुआ जुआ तब तक विद्यमान रहेगा, जब तक आप इस अटल सत्य को समझकर उसके अनुसार कार्य करने को उद्यत न होंगे, कि आत्म बलिदान तथा निःस्वार्थ कर्म ही स्थायी सुख तथा स्वतंत्रता के अचूक पथ प्रदर्शक हैं।"

ह्यूम की स्नातकों के नाम इस अपील का स्नातकों पर विशेष प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने ह्यूम महोदय को हर सम्भव सहयोग देने का वचन दिया। ह्यूम के इन प्रयासों के परिणामस्वरूप **'इंडियन नेशनल यूनियन'** का गठन हुआ तथा ह्यूम इसके मंत्री बने।

2. **लार्ड डफरिन एवं अन्य ब्रिटिश नेताओं से बातचीत (Conversation with Lord Dafrin and other British Leaders)**–ह्यूम ने अपनी प्रस्तावित योजना तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन के सामने रखी। वे नहीं चाहते थे कि इस देशव्यापी संगठन द्वारा राजनीतिक विषयों पर वाद-विवाद हो। लार्ड डफरिन ने ह्यूम की योजना को ध्यानपूर्वक सुना तथा उन्होंने योजना के क्षेत्र को आगे बढ़ाते हुए संगठन को राजनीतिक रूप देने की सलाह दी।

वोमेशचन्द्र बनर्जी ने लिखा है कि, **"ह्यूम के मस्तिष्क में सबसे पहले यह विचार आया था कि भारत के प्रमुख राजनीतिज्ञ वर्ष में एक बार एकत्र होकर सामाजिक विषयों पर चर्चा करें। वे यह नहीं चाहते थे कि उनकी चर्चा का विषय राजनीतिक रहे क्योंकि बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और अन्य भागों में राजनीतिक मण्डल थे। लार्ड डफरिन ने ह्यूम के विचार को राजनीतिक दिशा दी।"** लार्ड डफरिन ने कहा था कि, **"भारत में ऐसी कोई संस्था नहीं है, जो इंग्लैण्ड के विरोधी दल की भाँति यहाँ भी काम कर सकें तथा सरकार को यह बता सकें कि शासन में क्या कमियाँ हैं और उनको कैसे दूर किया जा सकता है।"** लार्ड डफरिन ने यह भी कहा था कि, **"गवर्नर को ऐसी संस्थाओं की अध्यक्षता नहीं करनी चाहिए क्योंकि गवर्नर की उपस्थिति में लोग अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट नहीं कर सकेंगे।"**

अपने संगठन की स्थापना से पूर्व ह्यूम इंग्लैण्ड तथा भारत के अंग्रेजों को यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि इस प्रकार के संगठन से ब्रिटिश साम्राज्य को कोई नुकसान नहीं होगा। अतः अपने संगठन की स्थापना से पहले ह्यूम इंग्लैण्ड गए तथा वहाँ उन्होंने लार्ड रिपन, लार्ड डलहौजी, जान ब्राइट तथा स्लैग आदि राजनीतिज्ञों से भावी संगठन के बारे में विचार-विमर्श किया। भारत लौटने से पहले उन्होंने इंग्लैण्ड में 'भारत संसदीय समिति' (Indian Parliamentary Committee) का गठन किया। इस संगठन का प्रमुख कार्य ब्रिटिश संसद सदस्यों की भारतीय मामलों में रुचि उत्पन्न करना था। भारत के समाचारों को इंग्लैण्ड के समाचार-पत्रों में प्रकाशित करवाने के लिए 'इण्डियन टेलीग्राफ यूनियन' की भी स्थापना की गई।

3. **ह्यूम की भारतीय नेताओं से बातचीत (Conversation of Hume with Indian Leaders)**–भारतीयों का कोई संगठन बनाने से पहले ह्यूम के लिए यह जरूरी था कि वे अपने प्रस्तावित संगठन के बारे में भारतीय नेताओं से सलाह-मशविरा करें। ह्यूम की मान्यता थी कि भारतीय शासन को सुचारु रूप से चलाने

के लिए अंग्रेज प्रशासकों एवं भारतीयों के बीच सामंजस्य स्थापित करना अति आवश्यक है। अतः ह्यूम ने अपनी योजना को क्रियान्वित करने के लिए विभिन्न भारतीय नेताओं से सम्पर्क स्थापित किया। वैसे भी प्रमुख राष्ट्रवादी नेताओं के साथ ह्यूम के संबंध अत्यन्त मधुर थे। दिसम्बर, 1884 ई. में ह्यूम बम्बई पहुँचे तथा अपने तीन मास के प्रवास के दौरान उसने 'बाम्बे प्रेजीडेंसी एसोसिएशन' के नेताओं (नौरोजी, फिरोजशाह मेहत्ता, वाचा) से राष्ट्रीय एसोसिएशन की संयोजना के विषय में बातचीत की। मार्च, 1885 ई. में ह्यूम बम्बई से पूणे गए तथा वहाँ के प्रमुख नेताओं सुब्रह्मण्यम अय्यर, एम० वीरराघवाचारी, रंगिया नायडू आदि लोगों से मिले तथा इन सबको राजनैतिक गतिविधियों में शामिल करने में सफल हुए। ह्यूम महोदय प्रस्तावित **'भारतीय राष्ट्रीय संघ' (इण्डियन नेशनल यूनियन)** का पहला अधिवेशन दिसम्बर, 1885 ई. में पूना में बुलाना चाहते थे। इसके पश्चात् ह्यूम 19 मार्च, 1885 ई. को कलकत्ता पहुँचे। यद्यपि कलकत्ता में गुटबंदी थी परन्तु ह्यूम वहाँ के नेताओं को पूना में बुलाए जाने वाली प्रस्तावित सभा में भाग लेने की स्वीकृति लेने में सफल रहे। तत्पश्चात् ह्यूम ने 'मद्रास महाजन सभा' तथा उत्तर पश्चिमी भारत के नेताओं से भी मुलाकात की तथा उन्हें भी अपनी प्रस्तावित सभा में आने का न्योता दिया। इस प्रकार भारतीय नेताओं से अपने अन्तरंग संबंधों के कारण ह्यूम भारतीय नेताओं से सहयोग प्राप्त करने में सफल रहे।

4. **कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन (First Session of the Congress)**–मई, 1885 के प्रारम्भिक दिनों में ह्यूम शिमला गए तथा उन्होंने तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन के साथ बैठकें करके पूना में होने वाली कान्फ्रेंस के लिए उनकी मौन स्वीकृति लेकर एक परिपत्र तैयार किया। इस परिपत्र के मुख्य अंश इस प्रकार हैं, "25 से 31 दिसम्बर, 1885 तक पूना में **'इण्डियन नेशनल यूनियन' की एक सभा होगी। इसमें बंगाल, बम्बई तथा मद्रास प्रान्तों के अंग्रेजी जानने वाले प्रमुख प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे।"** इस सभा के उद्देश्य होंगे–(i) राष्ट्र की प्रगति में जी-जान से लगे लोगों का एक दूसरे से परिचय (ii) इस वर्ष के लिए कौन-कौन से कार्य किए जाएँ इनकी चर्चा और निर्णय लेना चाहिए।

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के संबंध में यह निश्चित किया गया था कि यह सभा पूना में 25 से 31 दिसम्बर, 1885 को होगी परन्तु पूना में हैजा फैल जाने के कारण उपरोक्त निर्णय में परिवर्तन करना पड़ा तथा यह सभा बम्बई में बुलाई जानी निश्चित हुई। 2 दिसम्बर, 1885 को ह्यूम ने बम्बई पहुँचकर यह घोषणा की कि वह भारत के भिन्न-भिन्न भागों से स्थानीय शिष्ट लोगों की एक कांफ्रेंस बुला रहे हैं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की राष्ट्रीय कांफ्रेंस के साथ भ्रान्ति न हो इसलिए पूर्व निश्चित 'इंडियन नेशनल यूनियन' की कांफ्रेंस के स्थान पर 'कांग्रेस' शब्द का प्रयोग किया गया तथा इसके आरम्भ की तारीख 28 दिसम्बर कर दी। कॉन्फ्रेस का सारा प्रबन्ध 'बाम्बे प्रेजीडेंसी एसोसिएशन' ने किया।

28 दिसम्बर, 1885 को दिन के 12 बजे बम्बई के ग्वालिया टैंक स्थित गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज के विशाल भवन में कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन आरम्भ हुआ। अधिवेशन में देश के विभिन्न भागों के 72 व्यक्तियों ने भाग लिया जिन्हें 'प्रतिनिधि' नाम दिया गया। दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, दिनशा एदलजी वाचा, के.टी. तैलग, एन.जी. चन्द्रावरकर, वी. राघवाचार्य, एस. सुब्रह्मण्यम आदि अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रमुख प्रतिनिधि थे। कांग्रेस के इस अधिवेशन की अध्यक्षता कलकत्ता के प्रसिद्ध वकील **बोमेश (उमेश) चन्द्र बनर्जी** ने की।

इन प्रतिनिधियों में बम्बई प्रेजीडेंसी के 38, मद्रास प्रेजीडेंसी के 21, बंगाल प्रेजीडेंसी के 3, उत्तर पश्चिम प्रान्त एवं अवध के 7 तथा पंजाब के 3 प्रतिनिधि थे। अधिवेशन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों में सबसे अधिक संख्या वकीलों (39) की थी। इसके अतिरिक्त इसमें व्यापारी, जमींदार, साहूकार, डॉक्टर, समाचार-पत्रों के सम्पादक व मालिक, स्वाधीन कॉलेजों के प्रिंसीपल तथा प्रोफेसर, हेडमास्टर, धर्मगुरु व समाज-सुधारक थे। अधिवेशन में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई यूरोपियन तथा सभी ऊँची व नीची जाति के लोग भी सम्मिलित थे। अधिवेशन की कार्यवाही का संचालन पूर्णतया संसदीय तरीके से ह्यूम ने किया। कांग्रेस ने अपने प्रथम अधिवेशन के कुल नौ प्रस्ताव पास किए तथा दो निर्णय भी लिए गए जिनमें कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन 28 दिसम्बर, 1886 को कलकत्ता में बुलाने तथा सभी प्रस्तावों को प्रान्तीय व नगरीय संस्थाओं द्वारा पारित करवाया जाना

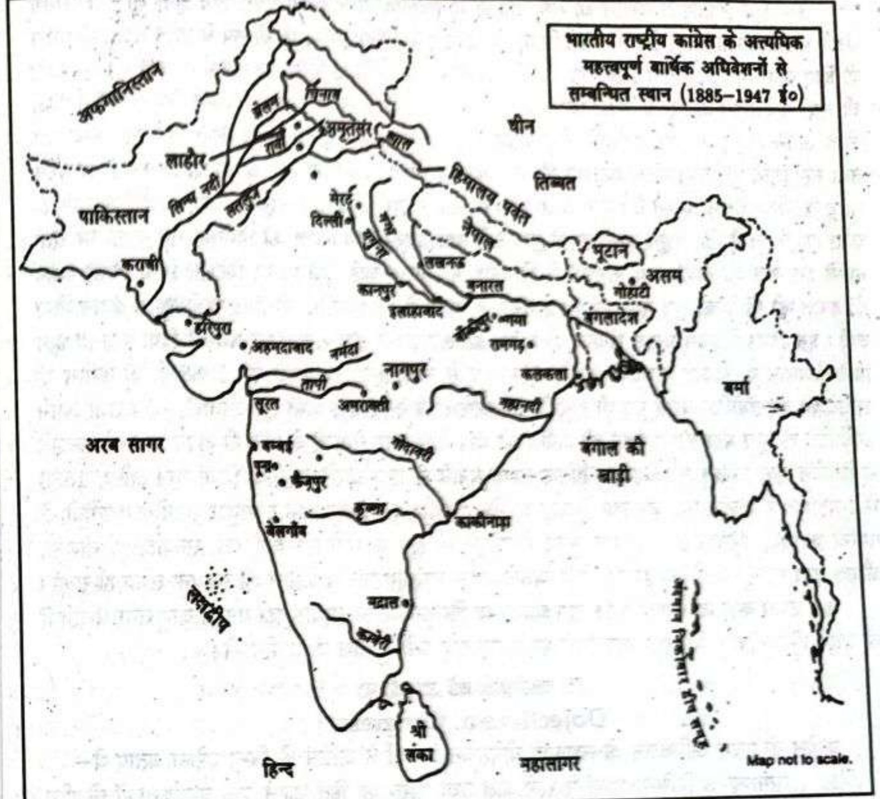

प्रमुख थे। अधिवेशन की समाप्ति पर ह्यूम के कहने पर कांग्रेस के सदस्यों ने 'महारानी विक्टोरिया की जय' के नारे लगाए। इस प्रकार सरकार के शुभ कामनाओं से कांग्रेस की स्थापना हुई। कूपलैण्ड ने लिखा है कि, **"भारतीय राष्ट्रीयता ब्रिटिश राज की शिशु थी तथा ब्रिटिश अधिकारियों ने उसके पालने को आशीर्वाद दिया।"** उधर **डॉ० ताराचन्द्र** ने कांग्रेस के जन्म को **"भारत के राजनीतिक इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना बताते हुए इसे नवयुग के आगमन की घोषणा बताया है।"**

5. **कांग्रेस की स्थापना में ह्यूम का उद्देश्य (Aim of Hume in the Formation of Congress)**–ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि ह्यूम ने एक अंग्रेज होते हुए भी भारतीयों को संगठित करने के लिए अखिल भारतीय स्तर की महत्वपूर्ण संस्था **'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'** की स्थापना की तथा वे लम्बे समय तक कांग्रेस के महासचिव भी रहे। परन्तु उसने ऐसा क्यों किया? यह एक विवाद का प्रश्न है। यद्यपि हमने कांग्रेस की स्थापना संबंधी प्रश्न पर विचार करते समय इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया था। ह्यूम के बारे में यह मान्यता है कि उसने अंग्रेजी साम्राज्य को बचाने के लिए सुरक्षा नली (Safety Valve) के रूप में कार्य की स्थापना की। यद्यपि ह्यूम का तात्कालिक उद्देश्य केवल उस संकट को टालना था जोकि उसके अनुसार भारत में किसी भी समय फूट सकता था।

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल आकलैण्ड कैलिवन को 1888 में लिखे पत्र में ह्यूम ने कांग्रेस स्थापना का उद्देश्य 'अभय कपाट' (Safety Value) की आवश्यकता बताया था। यद्यपि ह्यूम की ब्रिटिश ताज के प्रति निष्ठा में कोई कमी नहीं थी। परन्तु फिर भी केवल यह मान लेना कि, ह्यूम की कांग्रेस की स्थापना की योजना 'पूर्व निश्चित योजना' का परिणाम भी उचित नहीं है।

ह्यूम एक उदारवादी व्यक्ति था तथा उसका मानवतावाद उसी समय प्रकट होने लगा था जिस समय उसने भारतीय प्रशासनिक सेवा में प्रवेश किया था। इटावा के जिला अधिकारी के रूप में उसने शिक्षा के प्रसार के लिए अपने पद का प्रयोग किया था। उसने बाल-हत्या, बाल-विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों की निंदा की थी तथा मदिरापान के विरुद्ध प्रचार किया था। उसने भारतीयों के साथ जातीय भेदभाव अपनाने की ब्रिटिश नीति की निन्दा की थी तथा भारतीयों को प्रशासन में उचित स्थान दिलवाने का यत्न किया था। उसने ईमानदार तथा सहानुभूति पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता पर भी बल दिया था। वे ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत को ऊँचा उठाना चाहते थे। स्वयं लाला लाजपत राय ने **'यंग इण्डिया'** में ह्यूम के उच्च आदर्शों को स्वीकार करते हुए लिखा है कि, **"ह्यूम स्वतंत्रता के पुजारी थे तथा उनका हृदय भारत की निर्धनता एवं दुर्दशा पर रोता था–वे इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि कोई भी शासन चाहे देशी हो या विदेशी, बिना किसी दबाव के जनता की माँगों को पूरा नहीं करता। इसलिए वे चाहते थे कि भारतीयों के द्वारा स्वतंत्रता के प्रयत्न किए जाएँ। इस दिशा में प्रथम प्रयास संगठित होना था, इसलिए उनके द्वारा संगठन का परामर्श दिया गया।"** ह्यूम ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीयों को वैधानिक रूप से संगठित करना चाहते थे। 1888 ई. के कांग्रेस के अधिवेशन को संबोधित करते हुए भी ह्यूम ने उस सरकार की आलोचना करते हुए आजादी, न्याय तथा अपने अधिकारों के लिए महा संग्राम छेड़ने की अपील की थी। वे भारतीय नेताओं के प्रति भी अपने ऋण को समझते थे जिन्होंने एक अखिल भारतीय राजनीतिक संस्था बनाने के लिए प्रारम्भिक कार्य किया था। अप्रैल, 1888 में इलाहाबाद में उन्होंने एक जनसभा में कहा था कि, **"कांग्रेस आन्दोलन सभी सुसंस्कृत स्थानीय भारतीयों के प्रयत्नों का एक परिणाम है।"** गोपाल कृष्ण गोखले ने भी ह्यूम के भीमकाय व्यक्तित्व, सतर्कतापूर्ण योजना, कौशल तथा महान् प्रयत्नों की प्रशंसा की है जिसके कारण भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना संभव हो सकी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि ह्यूम चाहता था कि सरकार का आधार बड़ा बनाया जाए तथा भारतीयों को उसमें ठीक-ठीक विधिसंगत भाग मिले परन्तु यह सब अंग्रेजी ताज के अधीन हो।

II. कांग्रेस के उद्देश्य
(Objectives of Congress)

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के सभापति वोमेशचन्द्र बनर्जी ने कांग्रेस के निम्न उद्देश्य बताए थे–

1. साम्राज्य के विभिन्न भागों में रहने वाले तथा भारत का हित चाहने वाले कार्यकर्ताओं के बीच आपसी सम्पर्क तथा मित्रता को बढ़ावा देना।
2. सभी देशवासियों में वंश, धर्म तथा प्रान्त संबंधी दूषित संस्कारों को मिटाकर राष्ट्रीय एकता की भावना को विकसित करना।
3. भारत के शिक्षित लोगों के बीच देश की महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के संबंध में चर्चा करने के बाद प्राप्त परिपक्व सम्मतियों का संग्रह करना।
4. यह निर्धारित करना कि आगामी वर्षों में भारतीय लोकहित के लिए किस दिशा में तथा किस आधार पर कार्य किया जा सकता है।

कांग्रेस के पहले अधिवेशन में कुल 9 प्रस्ताव पास किए गए, जिनके द्वारा प्रशासनिक सुधारों की माँग की गई थी। पहले प्रस्ताव में भारतीय प्रशासन की जाँच के लिए एक शाही कमीशन नियुक्त किए जाने की माँग की गई थी। दूसरे प्रस्ताव में इंग्लैण्ड स्थित 'इण्डिया कौंसिल' को समाप्त करने की माँग की गई थी। तीसरे प्रस्ताव में गवर्नर-जनरल की परिषद् में मनोनीत सदस्यों के स्थान पर चुने हुए प्रतिनिधि शामिल करने तथा उन्हें प्रश्न पूछने का अधिकार देने की माँग की गई थी। अन्य प्रस्तावों में आई.सी.एस. की परीक्षा इंग्लैण्ड तथा भारत में एक साथ आयोजित करवाने, परीक्षा की न्यूनतम आयु को बढ़ाना, उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त, अवध एवं पंजाब में विधायिका सभाएँ बनाने की माँग की गई थीं। इस प्रकार पहले अधिवेशन की माँगें काफी संतुलित थीं। परन्तु जैसे-जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक विस्तृत तथा शक्तिशाली होता गया तथा सरकार का रवैया इसके विरुद्ध होता गया वैसे-वैसे कांग्रेस की नीति भी बदलती रही तथा धीरे-धीरे कांग्रेस ने अपना लक्ष्य ... 'पूर्ण स्वतंत्रता' रखा।

III. कांग्रेस का स्वरूप
(Character of the Congress)

कांग्रेस के स्वरूप के विषय में विद्वानों के बीच कई धारणाएँ हैं। कुछ विद्वान् जहाँ एक ओर इस संस्था को राष्ट्रीय संगठन कहते हैं वहीं दूसरी ओर कुछ इसे साम्प्रदायिक संस्था भी बताते हैं। भारतीय विद्वान् इसे जनता का संगठन कहते हैं जबकि लार्ड लिटन जैसे प्रतिक्रियावादियों ने कांग्रेस को 'सूक्ष्म अल्पमत' की संस्था माना है। उन्होंने कहा था कि, **"कांग्रेस के सदस्य भारत के अंग्रेजी पढ़े-लिखे एक छोटे से वर्ग का अंग है इसलिए वे भारतीय जनता के प्रतिनिधि होने का दावा नहीं कर सकते।"** लार्ड डफरिन के विचारों में भी परिवर्तन आया तथा उन्होंने भी बाद में इसे 'सूक्ष्म अल्पमत' की प्रतिनिधि संस्था बताया। **शिरोल (Chirol)** ने कांग्रेस को **हिन्दू संस्था** की संज्ञा दी थी। कांग्रेस के स्वरूप के संबंध में निम्न बातें कहीं जा सकती हैं–

1. **यह एक राष्ट्रीय संस्था थी (It was a National Organisation)**–कांग्रेस आरम्भ से ही एक राष्ट्रीय संस्था थी। यद्यपि अपनी स्थापना के प्रारम्भिक कुछ वर्षों में कांग्रेस आम आदमी तक नहीं जा सकी। परन्तु इसका जन्म एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में हुआ था। इसके विकास तथा प्रगति में सभी जातियों, धर्मों तथा वर्गों के प्रतिनिधियों ने योगदान दिया। यह किसी विशेष वर्ग अथवा हित का प्रतिनिधित्व नहीं करती थी बल्कि अखिल भारतीय हितों तथा वर्गों के प्रतिनिधित्व का दावा करती थी। इसके राष्ट्रीय स्वरूप की चर्चा करते हुए **महात्मा गाँधी** ने दूसरे गोलमेज सम्मेलन के समय कहा था, **"कांग्रेस सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय है, यह किसी विशेष जाति, वर्ग या हित की प्रतिनिधि नहीं है। यह समस्त भारतीय हितों और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए सबसे अधिक प्रसन्नता की बात है कि इसकी उपज एक अंग्रेज के दिमाग में आई तथा दो महान् पारसियों दादाभाई नौरोजी और फिरोजशाह मेहता ने इसका पोषण किया। प्रारम्भ से ही इसमें मुसलमान, ईसाई, एंग्लो-इण्डियन, हिन्दू आदि सम्मिलित थे।"**

2. **यह एक राजनीतिक संस्था थी (It was mainly a Political Organisation)**–**"ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना के समय कहा था कि ऐसा संगठन लोगों के मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं राजनैतिक पुनरुत्थान के लिए अति आवश्यक है।"** इस प्रकार ह्यूम द्वारा घोषित उद्देश्य के आधार पर कांग्रेस ने सभी क्षेत्रों में भारतीयों के कल्याण के लिए कार्य किया परन्तु धार्मिक क्षेत्र में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। कांग्रेस की माँगें मुख्यतः राजनीतिक मामलों से संबंधित रही, जैसे– राजनीतिक सुधार, परिषद् का विस्तार, चुने हुए सदस्यों की संख्या में वृद्धि, स्वराज्य पूर्ण स्वतंत्रता आदि। अपने प्रथम अधिवेशन में से कांग्रेस ने जो 9 प्रस्ताव पास किए थे उनमें से आठ का संबंध राजनीतिक मामलों से था। इस प्रकार अपनी स्थापना के समय से ही कांग्रेस एक राजनीतिक संस्था थी।

3. **यह एक साम्प्रदायिक संस्था नहीं थी (It was not a Communal Organisation)**–कूपलैण्ड जैसे कांग्रेस के कट्टर आलोचकों ने इसे एक साम्प्रदायिक संस्था (हिन्दुओं की संस्था) कहा है। उन्होंने कांग्रेस के अधिकांश सदस्यों एवं पदाधिकारियों के हिन्दू होने के कारण इसे **हिन्दू संस्था** बताया है। यद्यपि कांग्रेस में मुसलमानों की संख्या कम थी परन्तु उसका कारण इसका साम्प्रदायिक होना नहीं था अपितु देश में उनकी संख्या कम होना था। कांग्रेस ने मुसलमानों सहित सभी वर्गों के हितों का पूरा सम्मान किया। इसके **प्रथम अध्यक्ष वोमेशचन्द्र बनर्जी** भारतीय ईसाई थे। **दूसरे दादाभाई नौरोजी** पारसी थे। **तीसरे अध्यक्ष बदरुद्दीन तैयब जी** मुसलमान थे। **चौथे तथा पाँचवें अध्यक्ष जार्ज यूल एवं सर विलियम वेडरबर्न** अंग्रेज थे। संस्था का जन्मदाता **ए. ओ. ह्यूम** एक अंग्रेज अधिकारी था। इस प्रकार कांग्रेस के कार्यक्रम में एक भी ऐसी बात नहीं थी कि इसे साम्प्रदायिक संस्था माना जाए।

4. **यह एक क्रांतिकारी संगठन नहीं थी (It was not a Revolutionary Organisation)**–कांग्रेस के स्वरूप की एक विशेषता थी कि इसने कभी भी क्रांतिकारी कार्यक्रम को नहीं अपनाया। प्रारम्भ से ही कांग्रेस का संवैधानिक साधनों में पूर्ण विश्वास था। इसका उद्देश्य भारतीयों के लिए अधिक-से-अधिक राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना था। अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कांग्रेस ने जो साधन अपनाए (प्रार्थना-पत्र, शिष्टमण्डल, अहिंसा) वे पूर्णतया संवैधानिक थे। यद्यपि बदली हुई परिस्थितियों में कांग्रेस के कुछ सदस्यों ने

अथवा

- नरमपंथियों की विचारधारा का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
  (Critically evaluate the ideology of the moderates.)

अथवा

- भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास में उदारवादियों का क्या योगदान था?
  (What was the contribution of the moderates towards the growth of National Movement of India.)

अथवा

- उदारवादियों के उद्देश्यों, सिद्धांतों एवं साधनों का विवरण दीजिए।
  (Analysis the Aims, Methods and Programmes of Moderates.)

अथवा

- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उदारवादियों के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
  (Evaluate the contribution of Moderates in Indian National Movement.)

उत्तर : अपनी स्थापना के प्रारम्भिक 20 वर्षों (1885-1905) तक कांग्रेस की नीति अत्यन्त उदार रही। इसलिए इस युग को इतिहास में **'उदारवादी राष्ट्रीयता का युग'** या **उदारवादी युग** कहा जाता है। इस युग के दौरान कांग्रेस की बागडोर ऐसे लोगों के हाथों में थी जो ब्रिटिश सरकार से संघर्ष मोल लेना नहीं चाहते थे तथा वे सरकार के साथ सहयोग करके उससे प्रार्थना एवं अनुरोध करके ही अपने उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते थे। वे अंग्रेजी सरकार के समर्थक एवं प्रशंसक थे तथा ब्रिटिश शासन को भारतीयों के लिए वरदान मानते थे। पर ब्रिटिश विचारधारा, साहित्य एवं सभ्यता का उन पर बहुत अधिक प्रभाव था। वे इंग्लैण्ड की संस्थाओं के प्रशंसक थे तथा अंग्रेजों की न्यायप्रियता में पूर्ण विश्वास रखते थे। वे अंग्रेजी शासन के भक्त थे। उनका विश्वास था कि यदि वे प्रार्थना-पत्रों के माध्यम से अपनी माँगें सरकार के सामने रखेंगे तो सरकार उन्हें अवश्य ही स्वीकार कर लेगी। उन्होंने जनता की माँगों को प्रार्थना-पत्रों, स्मृति-पत्रों एवं प्रतिनिधि मण्डलों के द्वारा सरकार तक पहुँचाया तथा प्रशासन में सुधार संबंधी अनेक प्रस्ताव पास किए। उस समय तक जनता में राष्ट्रवादी चेतना का प्रसार काफी कम हुआ था अतः उदारवादी नेताओं ने सावधानीपूर्वक कदम उठाकर भारत में राष्ट्रीय चेतना की जड़ों को मजबूत किया तथा जन-जन को राष्ट्रवाद का पाठ पढ़ाया। उन्होंने अपने तरीकों द्वारा जनता के सामने सही ढंग से ब्रिटिश सरकार का शोषणकारी चरित्र प्रस्तुत किया। उदारवादी नेताओं में दादाभाई नौरोजी,

महादेव गोविन्द रानाडे, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले, मदन मोहन मालवीय, वोमेशचन्द्र बनर्जी, के.टी. तेलग, डी.ई. वाचा, बदरुद्दीन तैयब जी, आनन्द मोहन बोस आदि का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है।

उदारवादियों के सिद्धान्त
(Principals of Moderates)

जी.आर. प्रधान ने लिखा है कि, **"कांग्रेस के संस्थापक आकाश में उड़ने वाले आदर्शवादी नहीं थे बल्कि वे व्यावहारिक सुधारक थे तथा उदारवाद की भावनाओं एवं सिद्धान्तों से ओतप्रोत थे। वे स्वतंत्रता की ओर धीरे-धीरे कदम बढ़ाना चाहते थे। इसलिए उनकी माँगें बहुत ऊँची नहीं थीं। उन्होंने सुधार के ऐसे प्रस्तावों को रखा जिनका कम-से-कम विरोध हो।"** इस प्रकार प्रथम बीस वर्षों के कांग्रेसी नेताओं ने बड़ी संयमता एवं नरमाई से अपनी माँगें सरकार के सामने रखीं। उनके सिद्धान्तों का विवरण इस प्रकार है–

1. ब्रिटिश शासन के प्रति भक्तिभाव (Loyality to the British Crown)–उदारवादी नेता पश्चिमी सभ्यता एवं विचारों से पूर्ण रूप से प्रभावित थे तथा वे इसी सभ्यता की उपज थे। उनकी मान्यता थी कि ब्रिटिश शासन के दौरान शिक्षा, यातायात एवं संचार के साधनों का जो विकास हुआ है ,उसी के परिणामस्वरूप भारत आधुनिक युग में प्रवेश कर सका है। यही कारण था कि वे अंग्रेजी शासन को भारत के लिए वरदान मानते थे। उनके मन में देशभक्ति के साथ-साथ राजभक्ति भी विद्यमान थी। यदि हम कांग्रेस के प्रस्तावों का अध्ययन करें और सदस्यों के भाषणों को पढ़ें तो हम देखेंगे की वे अपने भाषणों तथा प्रस्तावों में स्वामिभक्ति की चर्चा करते रहते थे। प्रायः प्रत्येक अधिवेशन, महारानी विक्टोरिया की हुर्रे, तीन बार बोलकर समाप्त किया जाता था। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष **वोमेशचन्द्र** बनर्जी ने कहा था कि, **"मैं सब उपस्थित सज्जनों के मत को व्यक्त कर रहा हूँ। मैं कहता हूँ कि अंग्रेजी सरकार को मेरे तथा यहाँ बैठे हुए मेरे मित्रों की अपेक्षा, अधिक गहरें तथा पक्के राजभक्त व्यक्ति मिलना असम्भव है।"** इसी प्रकार कांग्रेस ने दूसरे अधिवेशन के अध्यक्ष **दादाभाई नौरोजी** ने भी। अपने सहयोगियों की भावना को व्यक्त करते हुए कहा कि, **"आओ हम पुरुषों की तरह बोलें और घोषणा कर दें कि हम पूर्ण रूप से राजभक्त हैं।"** उदारवादियों की ब्रिटिश ताज के प्रति इतनी गहरी स्वामिभक्ति एवं वफादारी का अर्थ यह नहीं था वे देशभक्त नहीं थे। वे उच्च आदर्शों से प्रेरित थे। उन्होंने देशभक्ति तथा स्वामिभक्ति का उचित तालमेल स्थापित करके बड़े संयम के साथ कांग्रेस आन्दोलन को आगे बढ़ाया।

2. अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास (Faith in sense of Justice of British)–उदारवादियों का अंग्रेजों की सत्यता एवं न्यायप्रियता में गहरा विश्वास था। उनका विचार था कि लोकतंत्र समानता एवं स्वतंत्रता की परम्परा वाली अंग्रेज जाति भारत के प्रति न्याय एवं उदारता का व्यवहार करेगी। भारतीय शासन की बुराइयों का कारण वे नौकरशाही व शासन-प्रणाली को मानते थे। वे यह समझते थे कि यदि वे अपनी समस्याओं और कठिनाइयों को अंग्रेजों के सामने रखेंगे तो निश्चय ही उनके प्रति न्याय किया जाएगा। **डॉ० पट्टाभि सीतारमैया** ने लिखा है कि उदारवादियों का मानना था कि यदि अंग्रेजों को भारतीय दृष्टिकोण का सही ज्ञान करवा दिया जाए तो वे उसे स्वीकार कर लेंगे। गोपालकृष्ण गोखले ने कहा था कि, **"अंग्रेज जाति की न्यायप्रियता तथा उदारता में हमारी अबोध निष्ठा है।"** सर फिरोज शाह मेहता की भी मान्यता थी कि अंग्रेज हमारी पुकार अवश्य सुनेंगे। **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** का कहना था कि **"अंग्रेजों के न्याय, बुद्धि तथा दया की भावना में हमारा दृढ़ विश्वास है। संसार की महानतम प्रतिनिधि संस्था, संसदों की जननी, ब्रिटिश कामन्स सभा के प्रति हमारे हृदय में श्रद्धा है। अंग्रेजों ने सर्वत्र प्रतिनिध्यात्मक आदर्श पर ही शासन की रचना की है।"** कांग्रेस के 12वें अधिवेशन के अध्यक्ष पद से बोलते हुए रहीमतुल्ला सयानी ने कहा था कि, **"अंग्रेजों से बढ़कर सच्चरित्र तथा सच्ची जाति इस सूर्य के प्रकाश के नीचे नहीं बसती।"** दादाभाई नौराजी भी कहा करते थे, **"मैं आशा करता हूँ कि वह दिन दूर नहीं जब अंग्रेज स्वेच्छा से भारत से चले जाएँगे।** इंग्लैण्ड के लोगों को वस्तु स्थिति से परिचित करवाने के लिए कांग्रेस ने दादाभाई नौरोजी को इंग्लैण्ड में रहकर भारत संबंधी कार्य करने के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने **'इण्डिया'** नामक समाचार-पत्र निकालकर तथा वहाँ की पार्लियामेंट की सदस्यता प्राप्त करके इंग्लैण्ड की जनता की सहानुभूति पाने का भी प्रयास किया था।

3. क्रमिक सुधारों में विश्वास (Faith in Gradual Reforms)–उदारवादी नेता क्रांतिकारी परिवर्तनों के विरोधी थे तथा क्रमिक सुधारों में विश्वास करते थे। वे राजनीतिक तथा प्रशासनिक क्षेत्र में धीरे-धीरे सुधार लाना चाहते थे। उनका मुख्य उद्देश्य प्रशासन में आवश्यक सुधारों, विधायी परिषदों, सेवाओं, स्वायत्त संस्थाओं तथा रक्षा सेवाओं में ही सुधार करवाना था। वे क्रमशः सुधार लाकर तथा प्रशासन में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाकर उन्हें स्वशासन के लिए प्रेरित करना चाहते थे। **रास बिहारी घोष** का कहना था कि, **"भारतीयों को संयम रखना चाहिए, हम इन्तजार करना सीखें क्योंकि हमारी सभी माँगें समयानुसार पूरी होंगी।"** **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** की भी मान्यता थी कि, **"भारतीयों को तत्कालिक रूप से केवल यह आशा है कि सरकार के आधार को बढ़ाया जाए तथा जनता का उसमें समुचित भाग हो।"** यद्यपि नौरोजी ने स्वशासन को कांग्रेस का लक्ष्य बताया था परन्तु इसके लिए भी उसने लम्बे प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया था। यही वजह थी कि उदारवादियों ने छोटे-मोटे प्रशासनिक सुधारों की माँग सरकार से की। **आर.जी. प्रधान** ने लिखा है कि, **"कांग्रेस के प्रारम्भिक प्रस्तावों से पता चलता है कि उनकी माँगें अत्यन्त साधारण थीं। कांग्रेस के नेता आदर्शवादी नहीं थे, वे हवाई किला नहीं बनाते थे। वे व्यावहारिक सुधारक थे तथा आजादी क्रमशः कदम-कदम करके हासिल करना चाहते थे।"**

4. ब्रिटिश संस्थाओं में विश्वास (Faith in British Institutions)–उदारवादी नेता अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली, पश्चिमी सभ्यता तथा इंग्लैण्ड की लोकतन्त्रीय संस्थाओं के प्रशंसक थे। वे भारत में भी इसी प्रकार की संस्थाओं की स्थापना करना चाहते थे। उनकी मान्यता थी कि ब्रिटिश संस्थाओं से भारतीयों को प्रशासनिक व राजनीतिक क्षेत्र में प्रशिक्षण प्राप्त होगा। वे अंग्रेजी राज को भारत के लिए वरदान मानते थे। **भूपेन्द्रनाथ बासु** कहते थे कि, **"ब्रिटिश राज रात्रि में डूबे रहे व्यक्ति को दिए गए सहारे के समान था।"** **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** ने भी कहा था कि, **"इंग्लैण्ड हमारा पथ प्रदर्शक है। हम ब्रिटिश प्रजा है, इंग्लैण्ड ने हमें अपने सीने से लगाया है तथा हमें अपना कहा है।"**

5. ब्रिटेन से स्थाई संबंध रखने में विश्वास (Faith in Keeping Permanent relations with Britain)–उदारवादी नेता इंग्लैण्ड से भारत के संबंध बनाए रखना चाहते थे क्योंकि वे मानते थे कि अंग्रेजी शासन भारत के लिए वरदान है। उनका मानना था कि भारत में राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने, देश की रक्षा करने तथा उसे प्रगति की ओर ले जाने में ब्रिटिश शासन ही समर्थ है। अंग्रेजी साहित्य, शिक्षा-पद्धति, यातायात एवं संचार के साधनों की व्यवस्था, न्याय-प्रणाली, स्थानीय स्वशासन आदि का विकास भारत में केवल इंग्लैण्ड के साथ संबंधों के कारण सम्भव हो पाया। इन सबसे भारतीयों में स्वतंत्रता एवं लोकतंत्र के प्रति रुचि उत्पन्न हुई है। अतः यह भारत के हित में होगा कि अंग्रेजी शासन के साथ भारत के संबंध स्थायी रूप से बने रहे। **फिरोजशाह मेहता** ने कांग्रेस के छठे अधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए कहा था कि, **"इंग्लैण्ड तथा भारत का संबंध इन दोनों देशों तथा समस्त विश्व की आने वाली पीढ़ियों के लिए एक वरदान होगा।"** **गोपाल कृष्ण गोखले** ने भी 1905 ई. के अध्यक्षीय भाषण में कहा था, **"हमें यह मानना पड़ेगा कि ब्रिटिश शासन विदेशी होने के कारण अपनी कमियों के होते हुए भी देशवासियों की प्रगति में एक बहुत बड़ा साधन रहा है, उसके जारी रहने का अर्थ उस शान्ति एवं व्यवस्था के जारी रहने से है, जिन्हें केवल यही कायम रख सकता है और जिनके साथ हमारे श्रेष्ठ बँधे हैं।"**

6. संवैधानिक साधनों में विश्वास (Faith in Constitutional Methods)–जिस प्रकार उदारवादी नेताओं के विचार शान्त, उदार व व्यावहारिक थे। उसी प्रकार अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी वे शान्त, सरल एवं व्यग्र नहीं थे। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे किसी भी कीमत पर सरकार के साथ लड़ने को तैयार नहीं थे अर्थात् वे क्रांतिकारी मार्ग अपनाना नहीं चाहते थे। वे अपनी माँगों को अत्यन्त नरम एवं शिष्ट भाषा में प्रस्तावों के रूप में पास करके प्रार्थना-पत्रों, स्मृति-पत्रों एवं प्रतिनिधिमण्डलों के माध्यम से सरकार के समाने रखते थे तथा उनको मनवाने का आग्रह करते थे। **पट्टाभि सीतारमैया** ने उनकी वैधानिक पद्धति का उल्लेख करते हुए लिखा है कि, **"उदारवादी अधिकारियों के सामने देश एवं जनता के दुःखों एवं कष्टों को ठोस तथ्य के रूप में रखते थे तथा उनके पक्ष में अकाट्य तर्क पेश करते थे, वे शासन से इस बात की भी प्रार्थना**

करते थे कि वह उनकी माँगों को शीघ्र से शीघ्र पूरा करने का वचन दें।" पं० मदनमोहन मालवीय ने भी कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन के समय कहा था कि, **"हमें सरकार से बार-बार निवेदन करना चाहिए कि वह हमारी माँगों पर शीघ्रता से विचार करें तथा फिर हम अपनी इन सुधार संबंधी माँगों को स्वीकारने पर जोर दें।"** दादाभाई नौरोजी के भी यही विचार थे कि हमें सभ्य, शान्ति एवं नैतिक शक्ति रूपी अस्त्र का ही प्रयोग करना चाहिए।

उदारवादियों के साधन (कार्य-प्रणाली)
(Methods of the Moderates)

जिस प्रकार वैधानिक युग के नेताओं के विचार शान्त, उदार व व्यावहारिक थे उसी प्रकार उनकी कार्य-प्रणाली भी शान्त, सरल व व्यावहारिक थी। वे आकस्मिक परिवर्तनों एवं उथल-पुथल के पक्ष में नहीं थे। वे ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते थे जो नियमानुसार एवं वैधानिक न हो। वे राजशासन से विधान एवं अनुशासन के अन्तर्गत ही अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना चाहते थे। वे शासन की सहायता से व वैधानिक परिवर्तनों द्वारा ही सुधार करवाना चाहते थे। वे उस समय अंग्रेजी सरकार से टक्कर लेना नहीं चाहते थे क्योंकि उन्हें मालूम था कि किसी भी प्रकार के विरोधी कदम को 1857 ई. की क्रांति की तरह कुचल दिया जाएगा। क्योंकि उनका कांग्रेस आन्दोलन जन आन्दोलन नहीं बना था अतः इसमें सरकार का सामना करने की शक्ति नहीं थी। इसलिए उन्होंने बड़े सरल साधनों द्वारा राष्ट्रीय चेतना का प्रसार किया तथा शिक्षित मध्य वर्ग को महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दों पर इकट्ठा किया। आलोचकों ने उनकी कार्य-प्रणाली को **'राजनीतिक भिक्षावृत्ति'** (Political Mendicancy) का नाम दिया है। परन्तु उनके द्वारा अपनाए गए साधन वैधानिकवाद (Constitutionalism) था। उनके वैधानिक उपाय निम्नलिखित थे–

1. प्रस्ताव (Resolutions)–अपने प्रारम्भ से ही कांग्रेस की कार्य-प्रणाली में वार्षिक बैठकें आयोजित करना तथा इनमें सरकार संबंधी नीतियों पर बहस करना था। प्रत्येक वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन देश के अलग-अलग स्थानों पर आयोजित किया जाता था। इन अधिवेशनों में देश के विभिन्न भागों के प्रतिनिधि भाग लेते थे। सबसे पहले अध्यक्ष का भाषण होता था तथा इसके बाद अन्य प्रमुख नेताओं के भाषण होते थे। इन अधिवेशनों में माँगों को प्रस्तावों के रूप में रखा जाता था। इन प्रस्तावों पर बहस होती थी तथा इन्हें पास किया जाता था। कई बार प्रस्तावों पर मतदान भी होता था। वार्षिक अधिवेशनों में पास किए गए प्रस्ताव अनुमोदन के लिए विभिन्न राजनैतिक संगठनों के पास भेजा जाता था। इन प्रस्तावों को निवेदनात्मक तथा सरल भाषा में सरकार के समक्ष रखा जाता था तथा सरकार से इन पर विचार करने तथा इन्हें मानने का आग्रह किया जाता था। उदारवादियों की मान्यता थी कि इस प्रणाली से लोगों में राष्ट्रीय चेतना जाग्रत होगी तथा सरकार का ध्यान भी देश की समस्याओं की ओर आकर्षित होगा।

2. प्रार्थना-पत्र एवं स्मृति-पत्र (Petitions and Memorandums)–उदारवादी अपनी माँगों को मनवाने के लिए वायसराय तथा सरकार के अन्य उच्च अधिकारियों के सामने प्रार्थना-पत्र एवं स्मरण-पत्र प्रस्तुत करते थे। इनकी भाषा याचनापूर्ण एवं नरम होती थी। कभी-कभी इन प्रार्थना-पत्रों को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए साधारण नागरिकों के हस्ताक्षर भी कराए जाते थे ताकि शासन यह समझे कि इन प्रार्थना-पत्रों को जनमत की सहमति भी प्राप्त है। कभी-कभी इंग्लैण्ड की सरकार के पास भी प्रार्थना-पत्र भेजे जाते थे। **पट्टाभि सीतारमैया** ने लिखा है कि, **"उदारवादी अधिकारियों के समक्ष देश और जनता के दुःखों एवं कष्टों को ठोस तथ्य के रूप में रखते थे और उनके पक्ष में अकाट्य तर्क पेश करते थे तथा शासन से इस बात की प्रार्थना करते थे कि वह उनकी माँगों को शीघ्र-से-शीघ्र पूरा करने का आश्वासन दे।"**

3. प्रतिनिधिमण्डल (Deputations)–उदारवादी नेता सरकार तक अपनी माँगें पहुँचाने के लिए समय-समय पर शिष्टमण्डल भेजते थे। ये शिष्टमण्डल गवर्नर-जनरल तथा अन्य अधिकारियों को लोगों की समस्याओं के बारे में अवगत कराते थे। इन शिष्टमण्डलों में कांग्रेस के उच्च नेता शामिल किए जाते थे। उदारवादियों ने कई बार इंग्लैण्ड भी शिष्टमण्डल भेजे। इंग्लैण्ड के नेताओं तथा लोगों तक भारतीय जनता की बात पहुँचाने के लिए 1889 ई. में लन्दन में **'ब्रिटिश कमेटी ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस'** की स्थापना हुई। इस संस्था ने इंग्लैण्ड में सराहनीय काम किया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, वोमेश चन्द्र बनर्जी, ए.ओ. ह्यूम तथा

नार्टन का एक प्रतिनिधिमण्डल 1890 ई. में इंग्लैण्ड गया। इन नेताओं ने अपने तर्कशील भाषणों द्वारा अंग्रेजी जनता को काफी प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त जब कभी भी इन नेताओं को व्यक्तिगत रूप से इंग्लैण्ड जाने का अवसर मिलता उस अवसर का भी ये लोग भरपूर फायदा उठाते थे तथा भारतीयों की समस्याओं को इंग्लैण्ड के लोगों तक पहुँचाते थे।

4. समाचार-पत्र (Press)–उदारवादी राष्ट्रवादियों ने अपनी माँगों को सरकार तथा जनता तक पहुँचाने में प्रेस का एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में प्रयोग किया। यहाँ यह बताना अति महत्त्वपूर्ण है कि इस युग के अनेक नेता सीधे समाचार-पत्रों से जुड़े हुए थे। जैसे–सुरेन्द्रनाथ बनर्जी **बंगाली** के सम्पादक थे। गोपालकृष्ण गोखले–**सुधारक** के सम्पादक, दादाभाई नौरोजी–**वाइस ऑफ इण्डिया** के सम्पादक, जी० सुब्रह्मण्यम–**हिन्दू** तथा **स्वदेश मित्र** से जुड़े हुए थे। प्रसिद्ध नेता तिलक ने भी **केसरी** तथा **मराठा** का सम्पादन किया था। इसके अतिरिक्त उस समय के अन्य समाचार-पत्रों में भी इन नेताओं के लेख छपते थे। भारत से बाहर लन्दन में स्थापित 'ब्रिटिश कमेटी ऑफ इण्डियन नेशनल कांग्रेस' ने 1890 ई. में **'इण्डिया'** नाम का समाचार-पत्र चलाया जिसका मुख्य उद्देश्य इंग्लैण्ड की जनता को भारत में होने वाली घटनाओं की जानकारी देना था। दूसरा इस पत्र के द्वारा इंग्लैण्ड के समाचार-पत्रों में छपने वाली भारत विरोधी खबरों का भी भण्डाफोड़ किया जाता था। इंग्लैण्ड के संसद सदस्यों तथा पत्रकारों की इस समाचार-पत्र की प्रतियाँ मुफ्त दी जाती थीं। समाचार-पत्रों के साथ-साथ अनेक पत्रिकाओं में भी नेताओं के लेख छपते थे। समाचार-पत्रों की भाषा भी अत्यन्त सधी हुई होती थी ताकि इन्हें सरकार की नाराजगी न झेलनी पड़ी।

इस प्रकार उदारवादी नेताओं ने देश के क्रमिक विकास के लिए वैधानिक तथा शान्तिमय साधन ही उपयुक्त समझे। वे मानते थे कि इन उपायों से उन्नति धीरे-धीरे होती है परन्तु वह उन्नति स्थायी होती है। प्रार्थना, विनय, अनुनय और प्रस्ताव इत्यादि के उपायों द्वारा जब विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई तो नई पीढ़ी के लोगों ने शान्तिमय वैधानिक उपायों की आलोचना करना शुरू कर दिया व उन्होंने इन तरीकों को त्याग दिया।

उदारवादियों की माँगें
(Demands of the Moderates)

प्रो० विपिन चन्द्र ने लिखा है कि, **"19वीं सदी में साम्राज्यवाद की अर्थशास्त्रीय आलोचना करने में उदारवादियों ने पहल की। यह आलोचना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में शायद उनका सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान था।"** उपरोक्त वक्तव्य के आधार पर कहा जा सकता है कि उदारवादियों का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य साम्राज्यवाद के आर्थिक पहलू की कड़ी आलोचना करके आर्थिक चेतना जाग्रत करना था। वे औद्योगीकरण तथा सामाजिक संबंधों के लोकतन्त्रीकरण द्वारा भारत की आर्थिक प्रगति के समर्थक थे। उन्होंने इंग्लैण्ड द्वारा भारत के आर्थिक शोषण को भारत की गरीबी का कारण माना तथा जनता को बताया कि अंग्रेजों द्वारा भारत से संपत्ति तथा पूँजी की निकासी की जा रही है। इसे उन्होंने रोकने की माँग की। उन्होंने बड़े विनम्र ढंग से सरकार को इस बारे में कदम उठाने की अपील की। उदारवादियों ने राजनीतिक क्षेत्र में भी संवैधानिक सुधारों से लेकर 'ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन की माँग की। परन्तु उन्होंने बड़े विनम्र तरीके से इनको सरकार के सामने रखा। इस प्रकार उदारवादियों ने अपनी माँगों द्वारा धीरे-धीरे ब्रिटिश शासन के शोषणकारी स्वरूप का जनता के सामने प्रदर्शन किया। 1885 से 1905 ई. तक उदारवादियों की प्रमुख माँगों को संवैधानिक, प्रशासनिक एवं राजनीतिक व आर्थिक सुधारों की संज्ञा दे सकते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है–

संवैधानिक सुधार या माँगें
(Constitutional Reforms or Demands)

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन से ही संवैधानिक सुधारों की माँग उठानी आरम्भ कर दी थी तथा 1905 ई. तक लगभग सभी अधिवेशनों में उन्होंने इन माँगों को उठाया। इनमें प्रमुख माँगें थीं–

(i) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय परिषदों का विस्तार तथा सुधार।

(ii) विधानपरिषदों में भारतीय जनता का अधिक-से-अधिक प्रतिनिधित्व। इनका मानना था कि जनता के कोष पर गैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यों का नियंत्रण होना आवश्यक है। अतः उन्होंने नारा

मतदान की कोई माँग नहीं की।

(iii) अन्य प्रान्तों के लिए विधानपरिषदों का गठन।

उदारवादियों द्वारा आवाज उठाए जाने के कारण यद्यपि सरकार ने 1892 ई. को 'इण्डियन कौंसिल एक्ट' पास किया परन्तु इससे उदारवादी सन्तुष्ट नहीं हुए। अतः 1904 ई. में कांग्रेस ने पुनः केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधानपरिषदों के और विस्तार तथा इनमें सुधारों की माँग की।

प्रशासनिक व राजनीतिक सुधार या माँगें
(Administrative and Political Reforms Demands)

(i) नागरिक सेवाओं का भारतीयकरण–कांग्रेस ने अपने पहले अधिवेशन में ही सरकारी सेवाओं के भारतीयकरण की माँग की थी तथा इंग्लैण्ड व भारत में प्रतियोगी परीक्षाएँ एक साथ होने की माँग की थी जिससे नागरिक सेवाओं में भारतीयों की संख्या में वृद्धि हो। 2 जून, 1893 को अंग्रेजी 'हाऊस ऑफ कामन्स' में यह प्रस्ताव पास भी हो गया था परन्तु सरकार ने अभी तक इस पर अमल नहीं किया था। अतः उदारवादियों ने सरकार का ध्यान इस तरफ पुनः आकर्षित किया।

(ii) कानून के शासन की माँग–यूरोपीय उदारवाद की भावना से प्रेरित होकर नरम दल के लोग व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा कानून के शासन की माँग करते थे। उन्होंने न्यायिक व्यवस्था के पुनर्गठन की माँग की तथा कार्यपालिका व न्यायपालिका को अलग-अलग करने को कहा। उन्होंने निवारक बन्दीकरण (Preventive Detention) कानून को भी रद्द करने की माँग की। 1886 ई. के अधिवेशन के बाद लगभग सभी अधिवेशनों में यह माँग दोहराई गई। 1899 में 'लार्ड हाब हाऊस' जैसे कुछ प्रशासकों ने जो वाइसराय की कार्यकारिणी के विधि सदस्य भी रह चुके थे ने भी इस बात पर बल दिया कि कार्यपालिका को न्यायपालिका से अलग कर देना वांछनीय है। उन्होंने न्यायिक सेवाओं में उन्हीं व्यक्तियों को लेने की भी माँग की जिनका व्यवसाय कानून हो। उन्होंने ऐसे राज्यों में जहाँ उच्च न्यायालय नहीं हैं वहाँ उच्च न्यायालयों की स्थापना करने पर भी बल दिया। अभियोगों की सुनवाई बैंच के कम-से-कम आधे सदस्यों द्वारा करवाने की भी माँग की।

(iii) शिक्षा पर बल–आम भारतीय की दशा सुधारने के लिए प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र को बढ़ाने तथा औद्योगिक व तकनीकी शिक्षा की सुविधा प्रदान करने की भी माँग की। सैनिक शिक्षा के लिए कॉलेज खोले जाए।

(iv) नागरिक अधिकारों की सुरक्षा–आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित होने के कारण उदारवादियों ने लोकतान्त्रिक प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए भाषण, प्रेस की आजादी, संगठन की स्वतंत्रता देने पर बल दिया। 1880-90 के दशक में सरकारी गोपनीयता रखने के नाम पर जब समाचार-पत्रों के आलोचना के अधिकार को समाप्त किया गया तब इसका 1897 में भारत विरोध किया तथा इस विरोध में कुछ नेताओं को जेल भी जाना पड़ा। कुछ सम्पादकों को सजाएँ भी भुगतनी पड़ीं।

(v) स्वशासन की माँग : कांग्रेस ने अपनी स्थापना के समय यद्यपि क्रमिक सुधारों द्वारा भारतीयों को प्रशासन में अधिक-से-अधिक स्थान देकर उन्हें प्रशासनिक व राजनैतिक प्रशिक्षण देने की बात की थी परन्तु कुछ समय पश्चात् सरकार के दृष्टिकोण से खफा होकर उदारवादियों को अपनी राजनैतिक माँगों में बदलाव लाना पड़ा। वे भारत में भी ऑस्ट्रेलिया तथा कनाडा जैसे देशों की तरह औपनिवेशिक शासन की माँग करने लगे। 1905 ई. व 1906 ई. के अधिवेशनों को संबोधित करते हुए गोपालकृष्ण गोखले एवं दादाभाई नौरोजी ने ब्रिटिश सरकार के सामने स्वशासन की माँग की। यद्यपि यह स्वशासन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ही प्राप्त किया जाना था।

आर्थिक सुधार या माँगें
(Economic Reforms or Demands)

(i) ब्रिटिश शासन के आर्थिक स्वरूप का खुलासा–जैसा कि ऊपर हमने प्रो० विपिन चन्द्र के विचारों को देखा कि उदारवादियों का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य 'अंग्रेजी शासन के आर्थिक स्वरूप' का खुलासा करना था। ... राज भारतीयों की भलाई के लिए है तथा इस राज से जनता का जीवन-स्तर ऊँचा उठ रहा है। दादाभाई नौरोजी, आर.सी. दत्त एवं महादेव गोविन्द रानाडे ने तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया कि अंग्रेजों ने भारतीय लघु उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य को अपने हाथों में लेकर भारतीय अर्थव्यवस्था को अंग्रेजी अर्थव्यवस्था के अधीन कर दिया है। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार अंग्रेजी आर्थिक नीतियों के कारण भारत के बाजार अंग्रेजी सामान से भर गए हैं तथा भारत से तैयार माल के स्थान पर कच्चा माल इंग्लैण्ड जाने लगा है। उन्होंने जनता के सम्मुख यह सच्चाई प्रकट की कि भौतिक दृष्टि से ब्रिटिश शासन भारत के लिए हानिकारक है।

(ii) भारत की निर्धनता की समस्या–उदारवादियों ने इस बात का खुलासा किया कि अंग्रेजी शासन के कारण किस प्रकार निर्धनता देश में जड़ पकड़ती जा रही है। भारत में निर्धनता इतनी स्पष्ट थी कि कोई भी राष्ट्रीय संस्था इसकी अनदेखी नहीं कर सकती थी। कांग्रेस ने अपने दूसरे (1886 ई.) ही अधिवेशन में भारत में बढ़ती निर्धनता पर चिन्ता व्यक्त की थी तथा इसके पश्चात् लगभग सभी अधिवेशनों में निर्धनता पर किसी-न-किसी रूप में प्रस्ताव पास किए गए। 1891-94 एवं 1896 ई. के अधिवेशनों में निर्धनता पर कड़े शब्दों में प्रस्ताव पास किया गया। कांग्रेस ने निर्धनता हटाने के लिए निम्न सुझाव भी दिए–

(क) देश में स्थाई भूमिकर व्यवस्था लागू कीजिए।

(ख) कृषि बैंक स्थापित किए जाए तथा कृषि ऋण अधिनियम के तहत ऋण लेना सरल बनाया जाए।

(ग) कृषि को सुधारने के लिए सभी सम्भव प्रयास किए जाएँ।

(घ) देश का आधुनिक ढंग से औद्योगीकरण किया जाए।

(ङ) देश के आर्थिक विकास में राज्य का हिस्सा हो।

(च) भारतीय उद्योगों की रक्षा के लिए टेरिफ बढ़ाया जाए।

दादाभाई नौरोजी ने **'पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया'** तथा **आर.सी. दत्त** ने **'भारत का आर्थिक इतिहास'** पुस्तकें लिखकर इनमें विवरण सहित भारत की निर्धनता का वर्णन इंग्लैण्ड व भारत में प्रस्तुत किया। 1895 ई. में नौरोजी ने लिखा उन्होंने लिखा, **"भारत कई प्रकार से विपन्न है और दरिद्रता में डूबा हुआ है।"** है, **"भारत भूखा मर रहा है।"** इसी प्रकार आर.सी. दत्त ने भी **ब्रिटिश आर्थिक नीतियों को भारत की गरीबी का कारण बताया।**

(iii) सम्पदा का निष्कासन रोकने का आग्रह–राष्ट्रवादियों ने भारतीय सम्पत्ति के इंग्लैण्ड-पलायन को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार से आग्रह किया। दादाभाई नौरोजी ने बताया कि किस प्रकार कई रूपों में सरकारी आय का बहुत बड़ा भाग भारत से इंग्लैण्ड चला जाता है। प्रशासन में ऊँचे पदों पर नियुक्त यूरोपीय नागरिकों के एकाधिकार के कारण घातक आर्थिक परिणामों का विश्लेषण करते हुए राष्ट्रवादियों ने बताया कि यूरोपीय अधिकारियों के ऊँचे दर पर वेतन व भत्तों पर सरकार को अधिक धन खर्च करना पड़ता है जबकि समान योग्यता वाले भारतीयों को कम वेतन मिलता है। इन अधिकारियों के स्वदेश लौटने पर पेंशन भी इंग्लैण्ड भेजी जाती है। इसी प्रकार अंग्रेज पूँजीपतियों को पूँजी निवेश का लाभ तथा सरकार पर ऋण के ब्याज के रूप में भी इंग्लैण्ड जाती है। नौरोजी ने बताया कि भारत में प्रतिवर्ष 3 करोड़ से 4 करोड़ पौंड की राशि इंग्लैण्ड जा रही है। उन्होंने बताया कि इंग्लैण्ड पूरी तरह सुरक्षित है तथा वह भारत से ले जाकर व भारत से खाकर पूरी सुरक्षा करता है। आर.सी. दत्त व नौरोजी ने जनता को बताया कि भारत में पड़ने वाले अकालों, महामारियों का कारण प्रकृति नहीं जबकि सरकार की आर्थिक नीतिया हैं। क्योंकि भारत से इंग्लैण्ड को अनाज का निर्यात किया जाता है।

(iv) औद्योगीकरण की माँग–उदारवादियों ने देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए भारत में आधुनिक उद्योग स्थापित करने की माँग की। 1902 ई. में कांग्रेस की कमेटी की रिपोर्ट से पता चलता है कि उदारवादियों की औद्योगीकरण में काफी रुचि थी। इस कमेटी ने विभिन्न जिलों से आने वाले प्रतिनिधियों से पूछा कि उनके जिले में किन वस्तुओं का उत्पादन होता है? कितने करघे हैं? सूत कहाँ से प्राप्त होता है? क्या कपड़ा रंगने के लिए देशी रंगों का इस्तेमाल करते हैं? उदारवादियों ने भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए

'स्वदेशी' वस्तुओं के इस्तेमाल में लोगों की रुचि बढ़ाने की कोशिश की। कई स्वदेशी स्टोर खोले गए। कांग्रेस अपने प्रत्येक अधिवेशन में औद्योगिक प्रदर्शनियां लगाती थी। **महादेव गोविन्द रानाडे** की तो एक ही माँग थी कि सरकार को स्वदेशी उद्योग की विदेशी वस्तुओं की प्रतिद्वंद्विता से रक्षा करनी चाहिए। देश में औद्योगिक विकास को बढ़ाने के लिए उदारवादियों ने तकनीकी शिक्षा शुरू करने व व्यापार नीति में भेदभाव समाप्त करने की माँग की। उदारवादियों ने रेलवे, बागानों व अन्य संस्थानों में ब्रिटिश पूँजी निवेश का भी जोरदार विरोध किया तथा इसे बन्द करने की माँग की।

(v) किसानों व कृषि की दशा सुधारने की माँग–उदारवादियों ने भारतीय कृषक एवं कृषि की दशा सुधारने के लिए सरकार के सम्मुख अनेक माँगें रखी। 1888 से 1903 के अधिवेशनों में लगभग हर वर्ष कृषि एवं किसानों संबंधी मुद्दे कांग्रेस ने उठाए। उन्होंने भारतीय किसान व कृषि की बिगड़ती आर्थिक स्थिति के लिए भू-राजस्व प्रणाली की कड़ी निन्दा की तथा किसानों को महाजनों के निर्मम शोषण से बचाने के कृषि बैंकों की स्थापना पर बल दिया। उन्होंने देश को अकालों से बचाने के लिए तथा कृषि के विकास के लिए व्यापक स्तर पर सिंचाई व्यवस्था विकास कार्यक्रम को आरम्भ करने का अनुरोध किया। उन्होंने किसानों से वसूले जाने वाले भू-राजस्व की दर को भी कम करने की माँग सरकार के समक्ष रखी।

उपरोक्त माँगों के अतिरिक्त उदारवादियों ने आम जनता के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए सरकार की वित्तीय नीति की भी आलोचना की तथा कुछ माँगें रखीं। इनमें **नमक कर में कटौती करना, जनता पर लगाए गए करों में कमी करना, तीसरे दर्जे के रेलयात्रियों को अधिक-से-अधिक सुविधा प्रदान करना, सरकारी खर्चे में कमी करना, सेना पर व्यय में कमी करना, पुलिस व्यवस्था में सुधार करना आदि प्रमुख थी।** वे सरकारी धन को अधिक-से-अधिक जनता पर खर्च करवाना चाहते थे।

इस प्रकार भारतीय उदारवादी ब्रिटेन तथा भारत के बीच चालू आर्थिक संबंधों में मौलिक परिवर्तन चाहते थे। उनकी राजनैतिक माँगें तो मृदु थीं किन्तु उनकी आर्थिक माँगें क्रांतिकारी थीं। आर्थिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे इंग्लैण्ड की अधीनता को खत्म करने की वकालत करते थे। उदारवादियों की माँगों के संबंध में **प्रो० आर.एन. अग्रवाल** ने लिखा है कि, **"इन वर्षों में कांग्रेस सभी हितों तथा वर्गों की प्रतिनिधि संस्था स्थापित हो चुकी थी.....अपने वार्षिक अधिवेशनों में राष्ट्रीय दृष्टि से इसने सरकार के प्रशासन तन्त्र की विस्तृत व तर्कसंगत आलोचनाएँ कीं तथा सरकार से प्रशासन सुधारने के अनुरोध किए।"**

उदारवादी आन्दोलन के प्रति सरकार का दृष्टिकोण
(Governments Attitude Towards Moderate Movement)

उदारवादी आन्दोलन के प्रति सरकार का क्या दृष्टिकोण था? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। उदारवादी पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति में पले बड़े थे तथा वे ब्रिटिश शासन के प्रति स्वामिभक्ति भी रखते थे। उनके तौर-तरीके भी नरम थे। आइए देखें की इस आन्दोलन के प्रति सरकार का क्या रवैया रहा–

1. उदारता एवं सहानुभूति की नीति (Liberal Attitude)–उदारवादियों के नरम रुख एवं राजभक्त होने के बावजूद भी उसे सरकार की ओर से कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। यद्यपि कुछ विद्वानों की मान्यता है कि ह्यूम को कांग्रेस की स्थापना में तत्कालीन वायसराय लार्ड डफरिन का सहयोग प्राप्त हुआ था। परन्तु यह सर्वमान्य सत्य नहीं है क्योंकि ह्यूम को कांग्रेस की स्थापना में डफरिन की बजाय राष्ट्रवादियों का अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ था। परन्तु फिर भी प्रारम्भिक तीन वर्षों में कांग्रेस के प्रति सरकार की नीति उदार एवं सहानुभूतिपूर्ण रही। 1885 ई. में वायसराय लार्ड डफरिन ने ह्यूम की योजना का स्वागत किया था। सन् 1886 में लार्ड डफरिन ने कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में शामिल होने वाले सदस्यों का कलकत्ता में एक स्वागत समारोह आयोजित किया था तथा **'उद्यान भोज'** (Garden Party) भी दिया था। कांग्रेस का तीसरा अधिवेशन 1887 में मद्रास में हुआ। इस अवसर पर मद्रास के गवर्नर लार्ड कोनमेयर ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों को राजकीय भवन के एक प्रीतिभोज में आमंत्रित किया था। इन अधिवेशनों में सरकारी कर्मचारियों ने भी भाग लिया था। मद्रास सरकार के सचिव व अन्य उच्च अधिकारी भी विशिष्ट दर्शकों के रूप में उपस्थित थे।

2. सरकार द्वारा उदारवादियों की आलोचना (Criticism of Moderates by the Government)–

जैसे-जैसे कांग्रेस की शक्ति बढ़ती गई तथा कांग्रेस द्वारा प्रशासनिक सुधारों की माँग की जाने लगी तब सरकार ने उदारवादियों की आलोचना करनी आरम्भ कर दी। 1888 का वर्ष कांग्रेस के इतिहास में बड़े संकट का वर्ष था। मद्रास कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर उत्तर तथा दक्षिण भारत में वितरित पत्रिकाओं में अपनी आलोचना देखकर सरकार तिलमिला उठी तथा उसने कांग्रेस को तोड़ने के प्रयास आरम्भ कर दिए। लार्ड डफरिन ने नवम्बर, 1888 को कलकत्ता के सेंट एन्ड्रूज के भोज में भाषण देते हुए कांग्रेस की स्वायत्त शासन की माँग का मजाक उड़ाया तथा कहा कि देश में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना की माँग करके कांग्रेस **'सूर्य के रथ पर चढ़ना'** और **अज्ञात की लम्बी छलाँग लगाना** चाहती है। उन्होंने अपनी अंतिम संक्षिप्त कार्यवाही में 1888 में लिखा, **"कांग्रेस तो एक ऐसे नगण्य अल्पमत (Microscopic Minority) का प्रतिनिधित्व करती है जिसको एक शानदार और विभिन्न रूपों वाले साम्राज्य की बागडोर हरगिज नहीं दी जा सकती।"** 1888 ई. में कांग्रेस को इलाहाबाद में अधिवेशन करने के लिए उत्तर प्रदेश की सरकार ने जगह देने से इंकार कर दिया। यदि उस समय दरभंगा के राजा 'लौदर कौंसिल हाऊस' खरीदकर नहीं देते तो कांग्रेस को अधिवेशन करने की जगह भी नहीं मिल पाती। इसी प्रकार सरकार की आलोचना करने के कारण राष्ट्रवादियों को भी भद्दे विशेषण देकर जैसे **असन्तुष्ट वकील, हिंसक खलनायक, नमक हराम बाबू** जनता में बदनाम करने का प्रयास किया। सरकार ने दादाभाई नौरोजी को पागल करार दिया। कांग्रेस की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता से **कर्जन** को काफी नाराजगी हुई तथा वह संगठन को खत्म करने के सपने लेने लगा। 1900 ई. में उसने भारत सचिव को लिखा **"कांग्रेस धीरे-धीरे लड़खड़ाकर गिर रही है और भारत में रहते हुए मेरी यह बहुत बड़ी इच्छा है कि मैं इसकी शान्तिपूर्ण मृत्यु में सहायक बनूँ।"**

3. फूट डालो तथा राज करो की नीति (Policy of Divide and Rule)–कांग्रेस आन्दोलन को कमजोर करने के लिए सरकार ने शुरू से ही **'फूट डालने तथा राज करने'** की नीति का अनुसरण किया। कांग्रेस को समाप्त करने के लिए सरकार अपने वफादार चाकरों तथा खैरख्वाहों की सहायता से उसे तोड़ने की कोशिश करने लगी। सरकार मुसलमानों, पारसियों, हिन्दुओं के बड़े हिस्से, जमींदारों तथा धनी मानी व्यक्तियों को कांग्रेस से अलग करने के लिए कोशिश करने लगी। बनारस के राजा, हैदराबाद के नवाब, सर सैय्यद अहमद खाँ तथा राजा शिवप्रसाद, सरदिनशा मानक जी पेटिट तथा अन्य धनी पारसियों को कांग्रेस के विरुद्ध भड़काया। सरकार ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों के बीच भेदभाव करने की कोशिश की। सरकारी नौकरियों के प्रश्न पर उसने शिक्षित हिन्दुओं तथा मुसलमानों में फूट डाली तथा साम्प्रदायिकता की भावना को बढ़ाया। हिन्दी और उर्दू भाषा तथा कट्टर हिन्दुओं द्वारा शुरू किए गए 'गोरक्षा आन्दोलन' का उपयोग भी इसी मतलब के लिए किया। अंग्रेजों ने 1888 में सर सैय्यद अहमद खाँ से **'एंग्लो मुस्लिम डिफेंस एसोसिएशन'** की स्थापना करवायी। भारत मंत्री लार्ड हेमिल्टन के निर्देशन में लार्ड कर्जन की सरकार ने धनी भारतीयों पर कांग्रेस से दूर रहने के लिए दबाव डाला तथा कांग्रेस विरोधी तत्त्वों को उपहार तथा उपाधियाँ दी।

4. सन्तुष्टिकरण एवं दमन की नीति (Policy of Liberalism and Repression)–उदारवादी आन्दोलन के बढ़ते प्रभाव को समाप्त करने के लिए सरकार ने कुछ रियायतें देकर आन्दोलन को समाप्त करने की कोशिश कीं। 1892 के 'इण्डियन कौंसिल एक्ट' से कांग्रेस को सन्तुष्ट करने की कोशिश की गई। इस कानून के द्वारा लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों को बजट पर बहस करने तथा जनहित के मामलों के बारे में सवाल पूछने का हक दिया। परन्तु जब उदारवादी इससे सन्तुष्ट नहीं हुए तो लार्ड कर्जन जैसे साम्राज्यवादी गवर्नर-जनरल ने दमन का सहारा लिया। उसने भारतीयों को बेइमान तथा धोखेबाज बताकर उन्हें नैतिक दृष्टि से नीचा दिखाने का कार्य किया व दूसरी तरफ तलवार के बल पर भारत को जीतने व बलपूर्वक साम्राज्य को बढ़ाने संबंधी बयान भी दिए। समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाकर तथा कुछ राष्ट्रवादियों को जेल में डालकर बलपूर्वक आन्दोलन को दबाने का भी प्रयास सरकार ने किया।

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार का दृष्टिकोण कांग्रेस के प्रति प्रारम्भ में सहानुभूतिपूर्ण था परन्तु 1888 के बाद उसका रवैया शत्रुतापूर्ण हो गया। **रैम्जे मैकडानाल्ड** के शब्दों में, **"प्रारम्भ में यह मित्रतापूर्ण थी परन्तु बाद में इसने कटु विरोध का रूप धारण कर लिया।"** ब्रिटिश सरकार के दमन के बावजूद कांग्रेस की शक्ति में निरन्तर

वृद्धि होती गई। अतः अंग्रेजी सरकार को अपने उद्देश्य में विफलता मिली। कट्टर आलोचक कूपलैण्ड ने लिखा है कि, **"कांग्रेस का जन्म भारत में ब्रिटिश सरकार के शत्रु के रूप में नहीं अपितु मित्र के रूप में हुआ। यह तो बाद के कटु अनुभवों का फल था कि राष्ट्रीय शक्तियों ने अहिंसात्मक आन्दोलन का संगठन करके ब्रिटिश शासकों को भारत छोड़ने पर विवश कर दिया।"**

उदारवादियों का मूल्यांकन
(Evaluation of the Moderates)

अनेक इतिहासकारों की यह मान्यता है कि उदारवादियों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में कोई विशेष योगदान नहीं दिया। उदारवादियों की नीतियों तथा कार्यप्रणाली की आलोचना करते हुए यह कहा जाता है कि उनके भीतर कार्यकुशलता का अभाव था। वे अपनी धारणाओं से ऊपर न उठ सके तथा भविष्य का स्वरूप निश्चित न कर सके। उनकी कार्य-प्रणाली को 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' कहकर आलोचना की जाती है। **लाला लाजपत राय** जैसे उग्रवादी नेता ने उदारवादियों की कड़ी आलोचना की है। इसमें संदेह नहीं है कि तत्कालीन उपलब्धियाँ कम थीं व वे युवा वर्ग को सन्तुष्ट नहीं कर सके। परन्तु जिन परिस्थितियों में उन्होंने इस कठिन कार्य को अपने हाथों में लिया तथा जो कठिनाइयाँ झेलीं उनको देखते हुए इस युग के नेताओं की आलोचना नहीं की जा सकती। उन्होंने भारतीय जनता को राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक हितों के प्रति जागरूक करके एक सामान्य शत्रु से परिचय करवाया व राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत की। **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** ने लिखा है कि, **"यद्यपि उदारवादियों की कार्यप्रणाली का मजाक उड़ाया जाता है तथापि वे अपनी सेवाओं के आधार पर विशेष प्रशंसा के पात्र हैं। इन प्रतिभाशाली तथा चरित्रवान देशभक्तों ने विदेशी नौकरशाही के बलशाली एवं दृढ़ होने के बावजूद भी भारत के पुनरुत्थान संबंधी महत्त्वपूर्ण कार्य किया।"** उदारवादियों की सफलताओं एवं दुर्बलताओं का विवरण इस प्रकार है–

उदारवादियों की सफलताएँ (योगदान)
(Achievements or Contribution of Moderates)

1. भारतीयों को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करना (Political Education to the Indians)–उदारवादी आन्दोलन से भारतीयों को राजनैतिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला। इस आन्दोलन के कारण भारत के विभिन्न भागों के लोगों का आपसी सम्पर्क हुआ तथा उनके बीच महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ, परिणामस्वरूप वे इकट्ठे होकर सुधारों एवं स्वशासन की माँग करने लगे। उदार राष्ट्रवादियों के भाषणों एवं लेखों का शिक्षित वर्ग पर काफी प्रभाव पड़ा तथा वे राजनीतिक विषयों के बारे में सोचने लगे। उदारवादियों ने भारतीयों को सामान्य राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक हितों के प्रति जागरूक किया। इससे लोगों में प्रजातन्त्र की भावना का विन्यास हुआ।

गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है कि, **"प्रारम्भिक दिनों में कांग्रेस ने अपनी वफादारी की घोषणाओं के साथ मध्यमार्ग तथा अपील के स्वर को अपनाया तथा उन दिनों राष्ट्रीय जागृति वाली राजनीतिक शिक्षा के संबंध में काफी वास्तविक कार्य किया। उन्होंने भारतीयों को संगठित करने तथा उनमें समान राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने में योगदान दिया।"**

2. 1892 ई. का भारतीय परिषद् अधिनियम (Indian Council Act of 1892 A.D.)–उदारवादियों ने कांग्रेस की स्थापना से ही सरकार के सामने प्रशासन में सुधारों की बार-बार माँगें रखीं। अतः उन माँगों को कुछ हद तक पूरा करते हुए, ब्रिटिश सरकार ने 1892 ई. में 'भारतीय परिषद् अधिनियम' पारित किया। इस एक्ट के द्वारा गवर्नर-जनरल व गवर्नर की परिषदों में भारतीय सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गई तथा इन परिषदों की शक्तियाँ भी बढ़ाईं। **गुरुमुख निहाल सिंह** ने लिखा है कि, **"1892 का अधिनियम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रयत्नों का परिणाम था।"** **डॉ० सुभाष कश्यप** ने भी 1892 के अधिनियम को प्रतिनिधि सरकार की स्थापना की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम बताया है। यद्यपि यह अधिनियम भारतीयों को सन्तुष्ट नहीं कर सका, परन्तु फिर भी देश के संवैधानिक विकास की दिशा में पहला कदम था।

3. राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना (Promotion of National Unity)–उदारवादियों ने सबसे पहले

भारत में राष्ट्रीयता एकता के विकास की आधारशिला रखी। उन्होंने देशवासियों को जाग्रत किया कि वे धर्म, सम्प्रदाय, वर्गभेद, भाषा, प्रान्तवाद के धरातलों से ऊपर उठें तथा अपने हृदय में सामान्य राष्ट्रीयता की भावना का विकास करें। उन्होंने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की सशक्त आर्थिक समीक्षा प्रस्तुत करके यह सिद्ध कर दिया कि भारत की बेकारी, गरीबी तथा आर्थिक पिछड़ेपन का कारण अंग्रेजी साम्राज्य है। इस समीक्षा से अंग्रेजी राज का नैतिक आधार कमजोर हुआ तथा राष्ट्रीय चेतना को बल मिला। कांग्रेस के अधिवेशनों में सभी वर्गों, धर्मों एवं क्षेत्रों के लोग हिस्सा लेते रहे जिससे भी राष्ट्रीय एकता को बल मिला। **प्रो. आर.एन. अग्रवाल** ने लिखा है कि, **"उन्होंने स्वतंत्रता का पौधा लगाया और उसे सावधानी से, किन्तु नियमित रूप से सींचकर समय के साथ बड़ा किया। उन्होंने एक साधारण किन्तु सही नींव रखी। अतएव जो महान् कार्य कांग्रेस ने अपने प्रारम्भिक चरणों में किया, हमें उसे महत्वहीन नहीं समझना चाहिए।"**

4. भारतीय स्वतंत्रता की आधारशिला रखना (Laid the foundation of the Indian Independence)–उदारवादियों ने अपने क्रियाकलापों द्वारा ऐसी नींव तैयार की जिस पर भविष्य में विभिन्न आन्दोलन चलाए जा सकें तथा अन्ततः भारत को स्वतंत्रता मिली। **श्रीमती ऐनी बेसेन्ट** ने लिखा है कि, **"उदारवादियों ने ही हमें इस योग्य बनाया कि हम स्वतंत्रता की माँग सरकार के समक्ष रख सकें।"** अपनी अनेक असफलताओं के बावजूद प्रारम्भिक राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन की सुदृढ़ नींव डाली और ऐसे मार्ग का निर्माण किया जिस पर चलकर आजादी प्राप्त की जा सके। **डॉ. पट्टाभि सीतारमैया** ने लिखा है कि, **"जिस समय भारत के राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने पदार्पण किया, उस समय वे अकेले थे। उन्होंने जो नीतियाँ अपनाईं उन्हें हम कोई दोष नहीं दे सकते। क्या किसी भी इमारत की नींव में पड़े चूना व पत्थरों को दोष लगाया जा सकता है? क्योंकि वहीं तो आधार है जिस पर सम्पूर्ण इमारत खड़ी हुई है। सर्वप्रथम औपनिवेशिक स्वशासन फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, उसके बाद स्वराज्य तथा सबसे ऊपर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिलें एक के बाद एक ही बन सकीं।"**

5. अंग्रेजी शासन के दोष स्पष्ट करना (Expose the evils of British Regime)–उदारवादियों ने प्रारम्भ से ही ब्रिटिश नौकरशाही की बुराइयों से भारतीयों को अवगत कराने का प्रयास किया। उन्होंने जनता के सामने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के वास्तविक स्वरूप का पर्दाफाश किया। उन्होंने सभी आर्थिक प्रश्नों को भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ जोड़ा तथा भारतीय वास्तविकता के सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक पहलुओं को सफलतापूर्वक उजागर किया। अपनी स्थापना के कुछ वर्षों बाद ही कांग्रेस ब्रिटिश सरकार की नीतियों की स्पष्ट आलोचना करने लगी। जैसे-जैसे अंग्रेजी शासन के दोष स्पष्ट होते गए वैसे-वैसे कांग्रेस में उग्रवादी तत्त्वों को प्रोत्साहन मिलता रहा। **इस प्रकार कांग्रेस सरकार का एक प्रतिपक्ष बन गई, किन्तु वह कोई मित्रतापूर्वक परामर्शदाता प्रतिपक्षण नहीं बनी अपितु वह एक ऐसा प्रतिपक्ष बनी जिसने सरकार की हैसियत तथा अधिकार को चुनौती दी।**

6. इंग्लैण्ड के लोगों को भारतीयों की समस्या बताना (To Give Knowledge of Indian Problem to British People)–उदारवादियों ने इंग्लैण्ड के लोगों को भारत की वास्तविक स्थिति के बारे में ज्ञान करवाया। इससे कांग्रेस आन्दोलन की सफलता की सम्भावनाएँ बढ़ीं। उदारवादियों ने अपनी माँगें मनवाने के लिए इंग्लैण्ड में भी अपनी संस्थाएँ स्थापित कीं। इस दिशा में दादाभाई नौरोजी ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने 1887 में लन्दन में **'भारतीय सुधार समिति'** की स्थापना की। इस समिति का उद्देश्य बताते हुए उन्होंने कहा कि, **"क्योंकि शासन सत्ता का प्रमुख केन्द्र इंग्लैण्ड में है, इसलिए इंग्लैण्ड में कांग्रेस द्वारा किए गए कोई भी वैधानिक प्रयत्न अधिक प्रभावशाली तथा लाभदायक होंगे।"**

नौरोजी ने 1888 ई. में **विलियम डिग्बी** के नेतृत्व में **'इण्डियन एजेंसी'** की स्थापना की जो 1889 में **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश समिति** बन गई। इस समिति ने **इण्डिया** नामक पत्र का प्रकाशन किया। इस पत्र के माध्यम से इंग्लैण्ड के लोगों को भारतीयों की समस्याओं से अवगत कराया जाता था। कांग्रेस ने इंग्लैण्ड में अनेक प्रतिनिधिमण्डल भेजकर भारतीय समस्याओं से इंग्लैण्ड के लोगों को अवगत कराया। 1899 ई. में उग्रवादी नेता विपिन चन्द्र पाल ने भी इंग्लैण्ड की यात्रा की तथा भारत के पक्ष में बहुमूल्य प्रचार किया।

उदारवादियों के इन प्रयासों का परिणाम यह निकला कि इंग्लैण्ड में भारतीय हितों से सहानुभूति रखने वाले एक प्रभावशाली वर्ग का निर्माण हो गया।

उदारवादियों की दुर्बलताएँ अथवा कमियाँ
(Weaknesses or Short comings of Moderates)

यद्यपि उदारवादियों ने भारत के राजनैतिक क्षेत्र में कई महत्त्वपूर्ण सफलताएँ अर्जित की परन्तु फिर भी 1895-1905 ई. के 20 वर्षों में ब्रिटिश शासकों का व्यवहार उनके प्रति उपेक्षापूर्ण ही रहा। उदारवादी अच्छे तर्कों के बावजूद भी कुछ विशेष परिणाम देने में विफल रहे। उनकी कार्यप्रणाली में निम्नलिखित दोष थे–

1. अंग्रेजी राज में अत्यधिक विश्वास (To much faith in British Rule)–उदारवादी नेता पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति में पले बड़े थे अतः वे इससे अत्यधिक प्रभावित थे। उनकी मान्यता थी कि अंग्रेजी राज के साथ भारत के संबंध बने रहने से भारत को काफी फायदा हो रहा है अतः वे भारत व इंग्लैण्ड के संबंधों को बनाए रखना चाहते थे। ब्रिटिश संस्थाओं, न्याय, साहित्य एवं शिक्षा में उनका अत्यधिक विश्वास था। अतः वे शासन के प्रति वफादार थे। यद्यपि उनके हृदय में देशभक्ति की भावना थी परन्तु वे राजभक्ति प्रदर्शित करने में भी गौरव महसूस करते थे। उनकी देशभक्ति का राजभक्ति के साथ मेल हो जाने से उनकी देशभक्ति आंशिक रह गई थी। उनका यह सोचना भी गलत था कि ब्रिटिश राज भारत के हित में है। वे यह सोचने में भी असमर्थ रहे कि अंग्रेज अपने हितों को प्राथमिकता देंगे। अंग्रेजों का मुख्य उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करना था न कि जनकल्याण। यद्यपि उन्होंने ब्रिटिश शासन के शोषणकारी स्वरूप को जनता के सामने प्रदर्शित किया परन्तु वे अंग्रेजों की बदलती हुई मान्यताओं को समझने में असफल रहे।

2. उदारवादी आन्दोलन जन आन्दोलन न बन सका (Liberal Movement was not a mass movement)–उदारवादी आन्दोलन का सबसे बड़ा दोष यह था कि उन्होंने अपने कार्यक्रमों में जन-साधारण को शामिल करने की कोशिश नहीं की। उनका सम्पर्क केवल भारतीय समाज के उच्च वर्ग एवं उच्च मध्य वर्ग से था। उदारवादियों में पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त वकील, उद्योगपति, शिक्षक, पत्रकार आदि थे जो निर्धन तथा अशिक्षित भारतीयों के दृष्टिकोण को समझने तथा उनको अपना दृष्टिकोण समझा सकने में मनोवैज्ञानिक रूप से असमर्थ थे। **मौरिस जोन्स** ने लिखा है कि, **"अपने प्रारम्भिक चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उच्चवर्गीय शिक्षित उदारवादियों की एक राजनैतिक क्लब मात्र थी।"** भारत के मध्य एवं निम्न वर्ग में जो राजनैतिक भावना उठ रही थी उसे उदारवादी आत्मसात् नहीं कर सके। शीर्ष उदारवादी नेताओं की **जीवन शैली भी अत्यन्त अभिजात्य थी। प्रो० सुमीत सरकार** ने लिखा है कि 1866 में जब महादेव रानाडे शिमला गए तो उनके साथ 25 नौकरों की फौज थी। 1874 में जब फिरोजशाह मेहता पारसी-मुसलमानों की झड़पों में घिर गए तो गुस्से में आकर उन्होंने मुसलमानों के लिए निकृष्ट एवं निम्नतम शब्दों का प्रयोग कर दिया। वे स्वयं संपत्तिधारी थे इसीलिए उन्होंने किसानों को भूमिकर से बचाने तथा मजदूरों को पूँजीपतियों के शोषण से बचाने के लिए कुछ नहीं किया। इसलिए उन्हें जनसाधारण का सहयोग नहीं मिला।

3. उदारवादियों की साधारण माँगें भी पूरी नहीं हुई (Even the Ordinary Demands of Moderates were not fulfilled)–अंग्रेजी ताज के प्रति गहरी स्वामिभक्ति एवं अपनी निवेदनात्मक भाषा व उदार कार्यक्रम के बावजूद भी उदारवादी अंग्रेजी सरकार से छोटी-छोटी माँगें मनवाने में भी असमर्थ रहे। 1892 ई. के इंडियन कौंसिल एक्ट के मामूली से लाभ के अतिरिक्त सरकार ने उनकी सवैधानिक माँगों (प्रशासनिक सुधार, राजनैतिक सुधार, आर्थिक सुधार) की तरफ बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। जैसा कि **लाला लाजपत राय** ने लिखा, **"बीस वर्षों के निरन्तर आन्दोलन के पश्चात् हमें रोटी के स्थान पर पत्थर प्राप्त हुए।"** सरकार में आस्था के बावजूद भी उनके प्रति सरकार ने कड़ा रुख अपनाया। इसलिए वे राष्ट्रवाद की उठती युवा आवाज को सन्तुष्ट नहीं कर सके।

4. उदारवादी नेता कर्मशील न होकर विचारशील थे (Liberal leaders were men of ideas and not Men of Actions)–20वीं सदी के आरम्भ में उग्र दल के नेताओं ने नरमदल (उदारवादी) वालों की कड़ी निन्दा की। उन्होंने उनकी नीति को 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' की संज्ञा दी। **लाला लाजपत राय** ने लिखा था, **"अधिक-से-अधिक हम इसे अवसरवाद कह सकते हैं। इससे पाखण्ड तथा देशद्रोह को बढ़ावा मिला। इससे कुछ लोगों को देशभक्ति के नाम पर व्यापार करने का अवसर मिला।"** नरमदल वालों के बारे में यह भी कहा जाता है कि वे सरकार की चापलूसी करते थे तथा उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थों के सामने देश हित की अनदेखी की। कई उदारवादियों के पास बड़े-बड़े पद थे। वे यह भूल गए थे कि व्यक्तिगत त्याग एवं बलिदानों के बिना स्वतंत्रता की मंजिल प्राप्त नहीं की जा सकती।

इसी संबंध में **गुरुमुख निहाल सिंह** ने लिखा है कि, **"तिलक एवं गोखले को छोड़कर कांग्रेस के नरमदल के नेता व्यक्तिगत बलिदान देने एवं कष्ट सहने के लिए तैयार नहीं थे।"**

5. कार्यप्रणाली में समयानुरूप परिवर्तन नहीं करना (No timely change in Methodology)–उदारवादियों ने अपनी माँगें मनवाने के लिए प्रस्तावों, प्रार्थना-पत्रों, स्मरण-पत्रों एवं शिष्टमण्डलों का सहारा लिया। यद्यपि कांग्रेस की स्थापना के प्रारम्भिक दिनों में इस प्रकार की कार्यप्रणाली अपनाना उदारवादियों का विवेकपूर्ण कार्य था परन्तु इस कार्यप्रणाली का सरकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अतः उदारवादियों को अपनी कार्यप्रणाली में बदलाव लाना चाहिए था। उनके उदार एवं सहनशील, स्वामिभक्त बर्ताव के बावजूद भी ब्रिटिश सरकार का रवैया उनके प्रति कड़ा होता गया तथा सरकार ने कांग्रेस आन्दोलन को भरसक दबाने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप कांग्रेस के भीतर ही नवयुवकों का गुट इस कार्यप्रणाली से नाखुश हो गया व उन्होंने इसे राजनीतिक भीख की संज्ञा दे डाली। असन्तुष्ट नवयुवकों ने उनकी सारी निर्बलताओं को जनता के सामने प्रस्तुत कर दिया इस कारण वे लोकप्रिय बन गए व उदारवादी कमजोर पड़ गए।

निष्कर्ष (Conclusion)–उदारवादी आन्दोलन में कई कमियाँ थीं। उनकी राजभक्ति व भिक्षावृत्ति वास्तव में निन्दनीय थी। परन्तु उनको पूर्णतया राजभक्त स्वीकार करना न्यायसंगत नहीं होगा। वे भारत के प्रथम राजनैतिक संगठन के निर्माता थे। यदि वे आरम्भ में ही अंग्रेजों के प्रति विद्रोहपूर्ण व्यवहार अपनाते तो सरकार उनके अस्तित्त्व को उभरने से पहले ही समाप्त कर देती। अतः कांग्रेस के अस्तित्व को बनाए रखना उनकी एक बहुत बड़ी सफलता थी। कांग्रेस के अधिवेशनों में विभिन्न जातियों, वर्गों, धर्मों एवं प्रान्तों के लोग भाग लेते थे जिससे निश्चित रूप से राष्ट्रीयता की भावना मजबूत हुई। उन्होंने ब्रिटिश शासन के आर्थिक स्वरूप का खुलासा करके ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ों को काटने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने आर्थिक विकास के प्रति राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया था इसके पीछे समाज कल्याण उनका प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता रूपी पौधे का बीजारोपण सुन्दर ढंग से किया।

प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ. आर.सी. मजूमदार ने उदारवादियों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि, **"इण्डियन नेशनल कांग्रेस के महत्त्व या इसके कार्य को कम करके बताना इसके लिए अन्यायपूर्ण होगा, बेशक इसकी वास्तविक उपलब्धियाँ इसके उद्देश्यों तथा आशाओं से बहुत कम थीं।" प्रो० विपिन चन्द्र** ने भी उदारवादियों को आधुनिक भारत के अग्रणी निर्माताओं में से बताया है।

- ❑ **कांग्रेस में उग्रपंथी राजनीतिक विचारधारा के उदय के कारणों का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।**
(Critically examine the causes of rise of extremist political ideology in Congress.)

अथवा

- ❑ **1920 तक भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचारधारा के विकास का रेखांकन कीजिए।**
(Trace the development of the ideology of Indian National Congress upto 1920.)

अथवा

- ❑ **1905-1917 तक भारतीय राजनीति में उग्रवादियों की नीतियों और कार्यक्रमों का विश्लेषण कीजिए।**
(Analyse the policies and programme of the extremists in Indian polity during 1905-1917.)

अथवा

अथवा

- क्रांतिकारी आंदोलन के उदय का विश्लेषण कीजिए।
(Analyse the emergence of Revolutionary Movement.)

अथवा

- भारत में क्रांतिकारी आन्दोलनों के उदय के क्या कारण थे? यह भी बताइये कि ये क्यों असफल हुए?
(Discuss the various causes which give birth to the Revolutionary Movements in India. Why these movements fail?)

अथवा

- 1896 से 1924 के बीच क्रांतिकारी आंदोलन का रेखांकन कीजिए।
(Trace the Revolutionary movement during 1896 to 1924.)

अथवा

- प्रारंभिक दौर के क्रांतिकारी आन्दोलन का मूल्यांकन कीजिए।
(Evaluate the early phase of Revolutionary Movements.)

उत्तर : भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के समय से ही इसके शोषणकारी स्वरूप के विरुद्ध संग्राम आरम्भ हो गए थे। इस विदेशी साम्राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए भारत के लोगों ने कई तरीके अपनाए। 1857 ई. तक भारतीय जनता ने अपने राजाओं, धार्मिक नेताओं तथा बेदखल जमींदारों के नेतृत्व में ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए सशस्त्र संघर्ष किए। इस प्रकार के संघर्ष 1857 ई. की क्रांति के समय अपनी चरम सीमा तक पहुँच गए थे। अंग्रेजी सरकार की तानाशाही तथा शोषणकारी नीतियों के विरुद्ध कई जनवादी आन्दोलन भी हुए जैसे 1855 ई. का 'संथाल विद्रोह', 1860 का नील आन्दोलन, दक्षिण में 1870 के दशक एवं 1890 के दशक के किसान आन्दोलन, 1890 में पंजाब में कूका आन्दोलन तथा उत्तरपूर्व में बहावी आन्दोलन आदि। 1857 की क्रांति के बाद 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों के कारण धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। भारतीय राजनीति के रंगमंच पर सबसे पहले उदारवादियों का पदार्पण हुआ। इन लोगों का अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास था। ये लोग क्रमिक सुधारों के पक्षधर थे। क्रांति एवं आतंक में इन लोगों की आस्था नहीं थी। ये लोग शासन में सुधार, प्रेस की स्वतंत्रता एवं शान्ति एवं संवैधानिक तरीकों से सुधार चाहते थे। परन्तु इनकी ये नीतियाँ कोरे कागज के समान थीं जिन्हें आम भारतीय जनता समझने में असमर्थ रही। समय के साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना बढ़ती गई तथा उदारवादी प्रणाली का विरोध करने वाले लोग सामने आने लगे। इन लोगों को 'उग्रवादी' कहा गया जिनका अंग्रेजों की नेक नियति तथा न्याय में तनिक भी विश्वास नहीं था तथा अंग्रेजों के विरुद्ध आवाज बुलन्द कर 'स्वराज्य'

प्राप्त करना इन लोगों का प्रमुख लक्ष्य था। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल आदि इनके नेता थे। इन लोगों का विश्वास संगठन शक्ति तथा आत्म-निर्भरता में था। इन लोगों ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग तथा राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना पर जोर दिया। परन्तु 1907 में कांग्रेस की फूट के बाद उग्रवादी आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने कठोर दमन का सहारा लिया। लाला लाजपत राय तथा सरदार अजीत सिंह के ऊपर चलाए गए सरकारी दमन चक्र ने कुछ युवकों के हृदय में विद्रोह पैदा कर दिया। **इस प्रकार नरमपंथी राजनीति की अव्यावहारिकता तथा उग्रपंथी राजनीति की असफलता के कारण उत्पन्न निराशा एवं सरकार की दमनात्मक गतिविधियों के परिणामस्वरूप कुछ युवकों के मन में हिंसा तथा आतंक द्वारा विदेशी शासन को समाप्त करने का विचार उत्पन्न हुआ।** भारत तथा विदेशों में होने वाली कुछ घटनाओं ने भी नवयुवकों को इस दिशा में मुड़ने के लिए प्रेरित किया। **राजनीतिक क्षेत्र में उभरी इस विचारधारा को आतंकवादी या क्रांतिकारी कहा गया।** अंग्रेजी सरकार के दस्तावेजों में इन नवयुवकों को आतंकवादी कहकर बदनाम करने का प्रयास किया गया। क्योंकि ये लोग बम एवं हथियारों का सहारा लेकर ब्रिटिश साम्राज्य को समूल नष्ट करना चाहते थे अतः सरकार ने इन नवयुवकों को 'आतंकवादी' की संज्ञा दी। परन्तु हमारे विचार में ये लोग सही अर्थों में कट्टर देशभक्त थे एवं मातृभूमि की रक्षा के लिए इन लोगों ने हँसते-हँसते अपने प्राणों की बलि दे दी। अतः हम इस विचारधारा के लिए 'क्रांतिकारी' शब्द का प्रयोग करेंगे।

क्रांतिकारी विचारधारा
(The Revolutionary Thinking)

क्रांतिकारी गतिविधियाँ अथवा चरमपंथ भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष और प्रवृत्ति थी। कांग्रेस के व्यापक क्षेत्र के बाहर युद्धप्रिय (लड़ाकू) राष्ट्रवाद की चेतना निरन्तर विकसित हो रही थी। क्रांतिकारियों की संवैधानिक साधनों तथा भिक्षावृत्ति में कोई आशा नहीं थी। इनका आत्म-निर्भरता एवं आत्म-शक्ति में अटूट विश्वास था। इनकी हिंसा में आस्था थी तथा ये लोग हिंसात्मक उपायों द्वारा ब्रिटिश शासन को अस्त-व्यस्त करना चाहते थे। इनका विश्वास था कि विदेशी दासता से मातृभूमि को स्वतंत्र कराने के लिए कोई भी त्याग तथा बलिदान तुच्छ है। इन लोगों में देशभक्ति की भावना कूट-कूटकर भरी थी तथा इसी भावना से प्रेरित होकर ये लोग मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार थे। ब्रिटिश एवं ब्रिटिश शासकों के हृदय में आतंक उत्पन्न करके उनसे स्वतंत्रता छीनना ये लोग अपना कर्तव्य समझते थे। इस पवित्र कार्य के लिए रक्तदान करना, खून की नदी बहाना एवं मौत को गले लगाना सामान्य समझा जाता था। इन लोगों को देश को गुलामी से मुक्त करके पवित्र करना जिंदगी से भी बढ़कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। यही कारण था कि ये लोग फाँसी पर चढ़ने के लिए तथा जेल में सड़कर अपनी आहुति देने के लिए तैयार रहते थे। परन्तु अपने लक्ष्य को कभी भी हल्की नजर से देखने को तैयार नहीं थे। वासुदेव बलवन्त फड़के, चापेकर भाइयों, रास बिहारी बोस, श्याम जी कृष्ण वर्मा, मदनलाल ढींगरा, वारिन्द्रकुमार घोष, सरदार भगत सिंह आदि के वक्तव्य इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि इन लोगों के हृदय में देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। ये लोग जल्द-से-जल्द अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकना चाहते थे। 1857 ई. की महान् क्रांति उनकी प्रेरणा का स्रोत थी। इटली, आयरलैंड, सोवियत रूस आदि देशों के आतंकवादी आन्दोलनों ने भी इन्हें प्रेरणा दी। ये लोग न तो अराजकतावादी थे तथा न आतंकवादी जैसा कि अंग्रेजों ने इन्हें संबोधित किया है। ये मातृभूमि के सच्चे सपूत थे तथा अन्याय एवं घूसखोरी व कूटनीति पर टिकी अंग्रेजी व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते थे। 'फ्रांस के आतंक के राज्य' की तरह इनका उद्देश्य समाज में आतंक फैलाना नहीं था। ये लोग आतंक के द्वारा अंग्रेजों के मन में यह भावना पैदा करना चाहते थे कि लोकमत की उपेक्षा के क्या परिणाम निकलते हैं?

इनका कार्य केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं था, अपितु ये लोग सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक क्षेत्र में भी अन्याय एवं अव्यवस्था का अन्त करना चाहते थे। ये लोग भारत में सच्चा लोकतन्त्र स्थापित करना चाहते थे। ये लोग क्रांति के द्वारा भारत को स्वतंत्र करवाकर समानता के आधार पर नये राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। मानवता से इन्हें प्रेम था तथा ये लोग एक मानव का रक्त बहाकर प्रायश्चित करते थे परन्तु अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हिंसात्मक साधनों का प्रयोग करना उचित समझते थे। भारत में क्रांतिकारी

आन्दोलन को मुख्य रूप से दो चरणों में विभाजित किया जा सकता है–प्रथम, कांग्रेस के विभाजन से 1920 ई. तक। द्वितीय चरण, 1926-34 एवं सुभाष चन्द्र बोस के क्रांतिकारी आन्दोलन तक।

भारत में क्रांतिकारी विचारधारा का अध्ययन करने के लिए हम क्रांतिकारियों के उद्देश्यों, सिद्धान्तों एवं साधनों का अध्ययन करेंगे।

क्रांतिकारी आन्दोलन के उदय के कारण
(Causes of Origon of Revolutionary Movement)

साधारण तथा क्रांतिकारी आन्दोलन के प्रारम्भ होने के प्रमुख कारण वही थे जिनके परिणामस्वरूप उग्रवादी राष्ट्रवाद का उदय हुआ। परन्तु तत्कालीन राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं ने भी क्रांतिकारी आन्दोलन को प्रोत्साहित किया। कुछ प्रमुख कारणों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. संवैधानिक साधनों की असफलता (Failure of Constitutional Movement)–कांग्रेस के उदारवादी नेताओं ने अपनी माँगें मनवाने के लिए संवैधानिक साधनों का उपयोग किया परन्तु लगातार प्रार्थना करने के बावजूद भी अंग्रेजी सरकार ने उनकी माँगों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। उग्रवादी नेताओं का सम्पूर्ण कार्यक्रम व राजनीतिक आन्दोलन भी शान्तिपूर्ण विरोध पर आधारित था। ब्रिटिश सरकार पर जब इसका भी कोई प्रभाव नहीं हुआ तो देश का युवा वर्ग विवश हो गया तथा उन्हें विश्वास हो गया कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शक्ति का प्रयोग करना अति आवश्यक है। 'युगान्तर' पत्र ने 1906 में लिखा कि, **"ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाए। भारत के 30 करोड़ लोगों के 60 करोड़ हाथ संघर्ष में जुट जाएँ।"** अतः युवा वर्ग के लिए आतंक का सहारा लेना आवश्यक हो गया।

2. आर्थिक शोषण (Economic Exploration)–अंग्रेजों की शोषणकारी आर्थिक नीतियों ने देश में चारों तरफ तबाही मचा दी थी। स्वतंत्र व्यापार (Free Trade) नीति से देश का व्यापार व उद्योग ठप्प हो गया था। कृषि की बुरी हालत थी। देश में बेरोजगारी बढ़ रही थी। भारत का धन इंग्लैण्ड भेजा जा रहा था। भारत के धन का अपव्यय अफगानिस्तान, तिब्बत एवं अफ्रीका की लड़ाइयों में हो रहा था। यह अटल सत्य है कि जब शोषण अपने शिखर पर पहुँचता है तो क्रांति एवं आतंक का जन्म होता है। शिक्षित युवा वर्ग यह जान चुका था कि भारत की बिगड़ती आर्थिक स्थिति का कारण अंग्रेजी सरकार है तथा देश के स्वतंत्र होने से ही आर्थिक शोषण हट सकता है। अतः वे हिंसात्मक साधनों द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य को खत्म करने के प्रयासों में जुट गए।

3. अकाल तथा प्लेग (Famine and Plague)–1897 ई. में देश में भयंकर अकाल पड़ा जिससे दक्षिण भारत की बड़ी आबादी मौत के मुँह में चली गई। परन्तु सरकार ने अकाल पीड़ितों के लिए कुछ नहीं किया। उल्टे इन दिनों में भारत के धन को महारानी विक्टोरिया की 'रजत जयन्ती' मनाने पर खर्च किया। प्लेग ने भी भारी तबाही मचायी। सरकार ने प्लेग की रोकथाम के लिए विशेष प्रबन्ध नहीं किया। प्लेग पीड़ितों के साथ सरकारी कर्मचारियों ने दुर्व्यवहार किया। इससे क्षुब्ध होकर चापेकर भाइयों ने दो प्लेग अधिकारियों रैंड तथा आर्यस्ट को मार डाला। सरकार ने इस घटना के लिए तिलक को जिम्मेवार माना तथा उन्हें 18 मास के कठोर कारावास की सजा दी। इससे क्रांतिकारी आन्दोनन को प्रोत्साहन मिला।

4. बंगाल का विभाजन (Partitation of Bengal)–क्रांतिकारी आतंकवादी आन्दोलन को उत्साहित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण कारण बंगाल का विभाजन था। लार्ड कर्जन ने हिन्दुओं व मुसलमानों में फूट डालने तथा साम्प्रदायिकता का जहर घोलने के लिए प्रशासनिक सुविधा के नाम पर बंगाल को दो भागों में बाँट दिया। इस विभाजन को भारत की राष्ट्रीयता पर गहरी चोट समझा गया तथा देश में असंतोष की व्यापक लहर जाग उठी। युवा वर्ग को विश्वास था कि शांतिमय एवं संवैधानिक साधनों से अंग्रेजी शासन नहीं मानने वाला है अतः वे आतंकवाद की तरफ मुड़े। बंगाल में अनेक क्रांतिकारी गुप्त समितियाँ स्थापित हो गई एवं देश के अन्य भागों में काम कर रहे नवयुवकों के साथ मिलकर ये समितियाँ ब्रिटिश साम्राज्य को ताकत द्वारा नष्ट करने का प्रयत्न करने लगीं।

5. धार्मिक नेताओं का प्रभाव (Influence of Religions Leadership)–'लन्दन टाइम्स' के

संवाददाता वेलेन्टाइन शिरोल ने लिखा था कि, **"भारत में आतंकवाद पश्चिम के विरुद्ध ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया थी और उसे कट्टरवादी हिन्दुओं ने प्रेरित किया था।"** भारतीय नवयुवक विवेकानन्द एवं अन्य नेताओं से अत्यन्त प्रभावित थे। उन्होंने बताया कि 'आत्मा अमर है तथा सबसे बड़ा धर्म राष्ट्र भक्ति है।' इसका नवयुवकों पर विशेष प्रभाव पड़ा तथा बलिदान देना उनके लिए धार्मिक कर्तव्य हो गया। बलिदान की इस भावना के कारण ही उनके मन में मृत्यु का भय समाप्त हो गया तथा वे क्रांति के मार्ग की ओर अग्रसर हुए।

6. साहित्य का प्रभाव (Influence of Literature)–भारत का युवा वर्ग साहित्यकारों की रचनाओं एवं लेखों से खासा प्रभावित हुआ। **बंकिम चन्द्र** का 'आनन्दमठ' पूर्णतया क्रांतिकारी विचारों से भरा पड़ा था तथा यह नवयुवकों का प्रेरणा स्रोत बन गया। **रवीन्द्रनाथ टैगोर** की रचनाओं ने भी देशभक्ति एवं बलिदान के भाव भरे। **वीरेन्द्र कुमार घोष** के लेखों ने भी नवयुवकों को अत्याचारी शासन को समाप्त करने के लिए क्रांतिकारी साधन अपनाने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने लिखा कि जब ईश्वरीय शक्ति मानवीय हृदय में चमकती है तो मनुष्य में असंभव कार्य करने की भी शक्ति आ जाती है। इस प्रकार साहित्य ने भी युवाओं को क्रांतिकारी साधनों की तरफ मुड़ने की प्रेरणा दी।

7. विदेशी घटनाओं का प्रभाव (Influence of Foreign Incidents)–भारतीय क्रांतिकारियों को विदेशी क्रांतिकारी घटनाओं से भी प्रेरणा मिली। 1905 में रूस पर जापान की विजय ने साम्राज्यवादियों की अजेयता पर से पर्दा उठाया तथा युवाओं में आत्म-विश्वास जगाया, आयरलैंड के क्रांतिकारियों ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध जो कदम उठाए थे उनसे भी नवयुवकों को प्रेरणा मिली तथा रूसी निहिलिस्टो की हिंसात्मक कार्यवाहियों से भी वे प्रेरित हुए।

8. सरकार की दमन नीति (Govt. Policy of Suppression)–कांग्रेस में विभाजन से अंग्रेजी सरकार को राष्ट्रवादी तत्त्वों से निपटने का मौका मिल गया। बंगाल विभाजन के दौरान सरकार ने कठोर दमनात्मक नीति का पालन किया। लाला लाजपत राय, सरदार अजीत सिंह एवं तिलक व वीरेन्द्र कुमार घोष जैसे नेताओं पर राजद्रोह कानून लगाकर उन्हें देश निकाला दिया गया। लार्ड मिन्टो तथा लार्ड हार्डिंग ने कई कठोर नियम बनाकर राष्ट्रवादी आन्दोलन का गला घोंटने का प्रयास किया।

अतः बेबस होकर देश के युवा वर्ग सरकारी दमन को रोकने के लिए 'ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए' तत्पर हो उठा। **डॉ० परमात्मा शरण** ने लिखा है कि, **"1907 एवं 1908 में बने राजद्रोहात्मक सभा अधिनियम, समाचार-पत्रों के अधिनियम तथा अन्य दमनकारी कानूनों ने भी किसी भी अन्य प्रकार का राजनैतिक आन्दोलन सिवाय उससे जिसे नौकरशाही सहन कर सकती थी, खुले रूप से चलाना असम्भव बना दिया। अतः विशेषकर बंगाल में तथा अन्य प्रान्तों में भी क्रांतिकारी संगठन बने जो छुपकर अपना कार्य करते तथा प्रचार करते थे।"**

स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति के परिणामस्वरूप ही क्रांतिकारी आन्दोलन का उदय हुआ।

क्रांतिकारियों के उद्देश्य, सिद्धान्त एवं साधन
(Aims, Principles and Method of Revolutionaries)

प्रथम चरण में क्रांतिकारियों ने विदेशी शासन को हटाने के लिए हिंसा का सहारा लिया। उन्होंने व्यक्तिगत हिंसा को महिमा प्रदान की तथा विद्यार्थियों व नवयुवकों को संगठित किया व उन्हें बारूद आदि बनाने का प्रशिक्षण दिया। इस दौर के कुछ क्रांतिकारी अंग्रेजों के विरुद्ध सशस्त्र आन्दोलन करने के लिए भारतीय सेना की तथा सम्भव हो तो अंग्रेजों के दुश्मनों की मदद लेने में विश्वास करते थे जबकि दूसरे हिंसात्मक साधनों—कत्ल करने, डाका डालने आदि में विश्वास करते थे। उनमें देशभक्ति, बलिदान एवं आदर्शवादिता की भावनाएँ प्रबल थीं तथा उनका उद्देश्य ब्रिटिश शासकों के मन में भय पैदा करके उन्हें भारत से निकालकर भारत में लोकतन्त्र की स्थापना करना था। क्रांतिकारियों की रचनाओं, पत्रों एवं दस्तावेजों से उनके उद्देश्यों तथा कार्यप्रणाली पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है जिनका विवरण इस प्रकार है–

क्रांतिकारियों के उद्देश्य
(Aims of Revolutionary)

अंग्रेजों ने क्रांतिकारियों को हत्यारों, डाकुओं तथा अराजकतावादियों का नाम देकर उन्हें अपमानित करने का प्रयास किया है। परन्तु यह असत्य है। क्रांतिकारी सच्चे देशभक्त थे। वे लुटेरे एवं हत्यारे नहीं थे अपितु इनका प्रयोग उन्होंने अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए किया। उनका उद्देश्य समाज में आतंक का राज्य स्थापित करना नहीं था। उनके उद्देश्यों का विवरण इस प्रकार है–

1. क्रांतिकारियों का मुख्य उद्देश्य भारत से ब्रिटिश शासन का अन्त करना था। उनका विश्वास था कि अंग्रेजी शासन को शान्तिपूर्ण तरीकों से नहीं हटाया जा सकता। अतः वे हिंसा एवं आतंक से अंग्रेजों को भारत से निकालना चाहते थे।
2. क्रांतिकारी भारत में अन्याय एवं शोषण के आधार पर टिकी समाज व्यवस्था का अन्त करके न्याय एवं समानता के आधार पर नये समाज का निर्माण करना चाहते थे।
3. वे सामाजिक तथा आर्थिक असमानताओं का अन्त करके भारत में किसान एवं मजदूर के राज्य की स्थापना करना चाहते थे।
4. उनका उद्देश्य भारत से विदेशी सभ्यता तथा संस्कृति का अन्त करके सच्चा लोकतंत्र स्थापित करना था।
5. क्रांतिकारी मानवतावादी थे। वे केवल उसी अधिकारी की हत्या करते थे जो देशभक्तों पर अधिक अत्याचार करते थे। क्रांतिकारी उधम सिंह ने जलियाँवाला बाग के हत्यारे जनरल डायर की हत्या प्रतिशोध लेने के लिए की थी। परन्तु एक व्यक्ति का रक्त बहाना वे अच्छा नहीं समझते थे।
6. वे अपने त्याग एवं बलिदान द्वारा विदेशों में भारत की छवि सुधारना चाहते थे।

इस प्रकार क्रांतिकारियों के आदर्श बहुत ऊँचे थे। वे मातृभूमि के अनन्य भक्त एवं स्वतंत्रता प्रेमी थे। वे शोषण रहित समाज व्यवस्था के निर्माण का स्वप्न देखते थे तथा भारत को विदेशी दासता से मुक्त कराकर आम आदमी की सरकार की स्थापना करना चाहते थे।

क्रांतिकारियों के सिद्धान्त
(Principles of Revolutionary)

क्रांतिकारियों की विचारधारा उदारवादियों एवं उग्रवादियों से एकदम विपरीत थी। वे स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए हिंसा, लूट एवं हत्या जैसे साधनों का उपयोग आवश्यक समझते थे। उनकी मान्यता थी कि, **"अंग्रेजी शासन पाशविक बल पर स्थित है और इसका अन्त केवल पाशविक बल के द्वारा ही किया जा सकता है।"** उनके दृष्टिकोण में 'क्रांति' का अभिप्राय बम एवं पिस्तौल मात्र नहीं था अपितु वे क्रांति के द्वारा अन्याय एवं शोषणकारी व्यवस्था का अन्त करके सच्चे लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते थे। उनके प्रमुख विचारों का विवरण इस प्रकार है–

1. संवैधानिक साधनों में अविश्वास (No faith in Constitutional Methods)–क्रांतिकारी उदारवादियों के संवैधानिक तरीकों को एकदम व्यर्थ समझते थे। वे जानते थे कि अंग्रेजी सरकार पर प्रार्थना-पत्रों एवं स्मृति पत्रों व प्रतिनिधि मण्डलों के माध्यम से दबाव नहीं बनाया जा सकता। उग्रवादियों का निष्क्रिय विरोध भी सरकारी दमन को कम नहीं कर सकता। अतः इनका संवैधानिक साधनों से विश्वास उठ गया था।

2. हिंसात्मक साधनों पर विश्वास (Faith in Violent Methods)–क्रांतिकारियों की मान्यता थी कि अंग्रेजों पर प्रार्थना-पत्रों एवं अनुनय विनय का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। अंग्रेजी सरकार को विनय तथा बहिष्कार की भाषा समझ नहीं आती। उनका विचार था कि अंग्रेजी राज्य का आधार हिंसा है। अतः इसे केवल हिंसा के द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है।

उनका कहना था कि जो लक्ष्य अनेक युक्ति युक्त एवं नैतिक साधनों से प्राप्त नहीं हो सकता, उसे हिंसा एवं बल से प्राप्त किया जा सकता है। उनका नारा था कि, "तलवार हाथ में ले लो और सरकार को मिटा दो।" इस प्रकार वे ईंट का पत्थर से तथा गाली का जवाब गोली से देने के पक्षधर थे।

3. आत्मविश्वास (Self Confidence)–क्रांतिकारियों में आत्मविश्वास एवं आत्म-सम्मान की प्रबल भावना थी। वे भारतीयों में इन्हीं भावनाओं को भरना चाहते थे। उनका कहना था कि, इस देश में अंग्रेजों की संख्या आटे में नमक के समान है। यदि हम दृढ़ संकल्प करें तो अंग्रेजी राज को एक दिन में मिटाया जा सकता है। अपने त्याग व बलिदान को वे लोगों में आत्म-विश्वास जगाने का साधन मानते थे। वे मानते थे कि आत्मनिर्भरता की परम आवश्यकता है तथा विदेशी शासन का अन्त करने के लिए दृढ़ संकल्प की जरूरत है।

4. मारो तथा मरो (Kill and be Hanged)–क्रांतिकारियों का एक बहुत-ही महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त था मारो तथा मरो अर्थात् अंग्रेजों को मारकर फाँसी पर चढ़ जाओ। क्रांतिकारी वीरेन्द्र कुमार घोष ने 'युगान्तर' नामक पत्र में लिखा था **"स्वतंत्रता के लिए अपना जीवन अर्पण कर दो, परन्तु उससे पहले कम-से-कम एक अंग्रेज का जीवन समाप्त कर दो। देवी की अराधना पूरी नहीं होगी यदि तुम एक और बलिदान दिए बिना देवी के चरणों में अपनी बलि चढ़ाओगे।"** क्रांतिकारियों का नारा था, **"प्राण देने से पहले प्राण ले लो।"** वे अपने वतन के लिए दुश्मन की जान लेना भी चाहते थे तथा अपनी जान देना भी चाहते थे।

5. जन जागृति पर विश्वास (Faith in Public Awakening)–क्रांतिकारियों का विश्वास था कि जनता के सहयोग के बिना कोई भी आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। जनता तभी सहयोग करती है जब उसमें जागृति हो। अतः वे जनता में जागृति उत्पन्न करना चाहते थे। जनता में जागृति उत्पन्न करने के लिए वे अपने त्याग एवं बलिदान को साधन समझते थे। उन्होंने जनता को यह समझाने का प्रयास किया कि अन्याय तथा अत्याचारों के आगे झुकना अधर्म है। इस प्रकार उन्होंने जनता में चेतना जगाने का प्रयास किया।

6. धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास (Faith in religions tolerance)–यद्यपि क्रांतिकारी हिन्दू धर्म में विश्वास रखते थे तथा उन्होंने 'दुर्गा', 'काली' आदि की उपासना भी की। बंगाल के क्रांतिकारी देवी के उपासक थे। 'युगान्तर' के लेख से इसकी पुष्टि होती है। वीरेन्द्र घोष ने इसमें लिखा था कि, "क्या शक्ति के उपासक बंगालवासी रक्त बहाने से घबरा जाएँगे। परन्तु वे साम्प्रदायिक सौहार्द में अटूट विश्वास रखते थे। क्रांतिकारियों में हिन्दू, सिक्ख, मुस्लिम आदि सभी धर्मों के युवक शामिल थे। उनके लिए राष्ट्रीयता परम धर्म था।

7. समाजवाद में विश्वास (Faith in Socialism)–क्रांतिकारियों में सामाजिक तथा आर्थिक असमानता को दूर करके समान आधार पर समाज का गठन करना था। यद्यपि प्रो. सत्याराय ने लिखा है कि प्रथम चरण के क्रांतिकारी इस बारे में स्पष्ट नहीं थे कि स्वतंत्र भारत में कैसा समाज बनाना चाहिए। परन्तु दूसरे दौर के क्रांतिकारी व गदरी कार्यकर्ता भारत से शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था को बदलकर समानता के आधार पर स्थापित समाज व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे।

क्रांतिकारियों के साधन तथा कार्यप्रणाली
(Methods and Programmes of Revolutionary)

क्रांतिकारियों के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों पर चर्चा करने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि हम उनकी कार्यप्रणाली की चर्चा करें जिसका उपयोग उन्होंने अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में किया। क्रांतिकारियों के साधनों का विवरण इस प्रकार है–

1. सैनिक विद्रोह (Military Revolt)–क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी सरकार का तख्ता पलटने के लिए सैनिक विद्रोह की योजना बनाई। उनका विचार था कि भारतीयों की एक अपनी सशस्त्र सेना बनाई जाए तथा इस सेना के द्वारा अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत कर दी जाए। कुछ क्रांतिकारी सेना को शक्तिशाली बनाने के लिए भारत के साथ सहानुभूति रखने वाले देशों की मदद भी लेना चाहते थे। वे भारतीय सैनिकों को भी विदेशी शासकों के विरुद्ध शस्त्र उठाने की प्रेरणा देते थे। क्रांति की सफलता के लिए वे अधिक-से-अधिक हथियार भी इकट्ठा करना चाहते थे।

2. हत्याएँ (Murders)–अंग्रेज अधिकारियों को आतंकित करने के लिए क्रांतिकारियों का अधिकारियों तथा मुखबिरों की हत्याएँ करना भी एक प्रमुख साधन था। उनकी मान्यता थी कि जब बदनाम अधिकारियों तथा मुखबिरों की हत्याएँ की जाएँगी तो सरकारी शासन व्यवस्था चरमरा जाएगी व अंग्रेज आतंकित होकर

देश छोड़कर भाग जाएँगे। प्रसिद्ध क्रांतिकारी विरेन्द्र घोष ने अपने साथियों को हत्याएँ करने की प्रेरणा दी। उनका संदेश था कि, **"तलवार हाथ में ले लो तथा सरकार को मिटा दो।"** क्रांतिकारियों ने कई भारतीय एवं अंग्रेज अधिकारियों की हत्याएँ कीं। नन्दलाल बनर्जी, जैनेन्द्र मोहन घोष, मुखबिर नरेन्द्र गोसाई आदि की हत्याएँ कीं। चापेकर भाइयों ने प्लेग कमिश्नर रैंड तथा आर्यस्ट की गोली मारकर हत्या की। खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चाकी ने किंग्स फोर्ड की हत्या करने का प्रयास किया। पूर्वी बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर फुलर, ढाका के मैजिस्ट्रेट एलन पर भी गोलियाँ दागी गईं। इस प्रकार क्रांतिकारियों ने हत्याएँ करके अंग्रेजी शासन-व्यवस्था को तहत-नहस करने का प्रयास किया।

3. बमों का प्रयोग (Use of Bombs)–क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी अधिकारियों को भयभीत करने के लिए तथा उनकी हत्याएँ करने के लिए बमों का भरपूर प्रयोग किया। क्रांतिकारियों की गुप्त समितियाँ युवकों को शस्त्र चलाने तथा बम बनाने का प्रशिक्षण देती थीं। क्रांतिकारी हेमचन्द्र दास ने अपनी सारी संपत्ति बेच दी तथा वह बम बनाना सीखने के लिए पेरिस गया। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उसने भारत आकर क्रांतिकारी नेता वीरेन्द्र घोष के सहयोग से देशी बम बनाने का कारखाना लगाया। उसने पूर्वी बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर फुलर को अपने बम का निशाना बनाया था।

4. डकैतियाँ (Dacoities)–नवयुवक अपना घर तथा सम्पत्ति छोड़कर क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल होते थे। अतः उन्हें बम बनाने, हथियार खरीदने, सेना तैयार करने, साहित्य का प्रकाशन करने तथा अपने साथियों के मुकदमे लड़ने के लिए धन की आवश्यकता होती थी। वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चन्दा इकट्ठा करते थे परन्तु अधिकांश लोग उन्हें खुले रूप से चंदा नहीं दे सकते थे क्योंकि उन्हें सरकार का भय बना रहता था। अतः धन की कमी को पूरा करने के लिए क्रांतिकारियों ने डाके डालने की योजना बनाई। वे धनी लोगों से व सरकारी खजाने से धन लूटते थे। पं. रामप्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में काकोरी डकैती क्रांतिकारी गतिविधियों का प्रसिद्ध उदाहरण है। वे जब किसी व्यक्ति का निजी धन लूटते थे तो उसके यहाँ एक पत्र छोड़कर आते थे जिस पर वे संदेश छोड़ते थे कि उनका उद्देश्य पूरा होने पर वे लूटे गए धन को वापिस ब्याज सहित लौटा देंगे। यह केवल आश्वासन ही नहीं था अपितु उन्होंने कई लोगों का धन वापिस भी किया था। परन्तु डकैती के विषय को लेकर क्रांतिकारियों में मतभेद उत्पन्न हो चुके थे। कुछ की मान्यता थी कि लूट के धन से क्रांतिकारियों में लालच आ जाएगा तथा वे देशभक्ति की भावना भूल जाएँगे। दूसरे आम जनता उन्हें डकैत समझकर उनसे घृणा करने लगेगी। परन्तु फिर भी क्रांतिकारियों ने डाके डालना जारी रखा।

5. बलिदान (Sacrifice)–अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए क्रांतिकारी हमेशा अपने प्राणों की आहुति देने के लिए तैयार रहते थे। उनका विचार था कि एक बलिदान से हजारों लोगों को क्रांति के मार्ग पर लाया जा सकता है। 'युगान्तर' में वीरेन्द्र घोष ने लिखा था, **"देश की स्वतंत्रता के लिए अपना जीवन अर्पण कर दो, परन्तु उससे पहले कम-से-कम एक अंग्रेज का जीवन समाप्त कर दो।"** राष्ट्र प्रेम व स्वतंत्रता की बलिवेदी पर वे अपना जीवन अर्पण करना अपना परम कर्तव्य समझते थे। प्रफुल्ल चाकी, खुदीराम बोस, भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव, मदनलाल धींगरा, करतार सिंह सराभा, सोहन सिंह भकना आदि क्रांतिकारी हँसते-हँसते फाँसी के फँदे पर झूल गए। बहुत-से क्रांतिकारियों को आजीवन कारावास व काले पानी की सजाएँ भी हुईं व अन्य कठोर यातनाएँ भी सहन करनी पड़ीं। परन्तु उनका विश्वास था बलिदान निश्चित रूप से देशवासियों को झकझोर देगा तथा लाखों अन्य क्रांतिकारी पैदा होंगे।

6. साहित्य (Literature)–अपने विचारों तथा कार्यों का जनता में प्रचार करने के लिए क्रांतिकारी पुस्तकों, पत्रिकाओं एवं पत्रकों, समाचार-पत्रों का प्रयोग करते थे। सभी क्रांतिकारी लेखक थे तथा जब भी उन्हें समय मिलता था वे अपने विचारों को कलमबद्ध करने लगते थे। **सन्ध्या, युगान्तर, वन्देमातरम्, नवशक्ति** आदि क्रांतिकारियों के पत्र थे। अकेले युगान्तर की 50 हजार कापियाँ बिकती थीं। **'भवानी मंदिर'** नामक पुस्तक के द्वारा अंग्रेजों को भारत निकालने के लिए एकजुट होने की अपील की गई थी। **अविनाश चन्द्र भट्ट** की पुस्तक **'वर्तमान राजनीति'** का उद्देश्य भारतीयों को सैनिक रूप से प्रशिक्षित करके अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध संघर्ष छेड़ना था। **'बम का दर्शन'**, **'मेरा क्रांतिकारी जीवन'** आदि अन्य प्रसिद्ध क्रांतिकारी पुस्तकें थीं। अपने लेखों

द्वारा क्रांतिकारी आम जनता को यह समझाने का प्रयास करते थे कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए शक्ति का प्रयोग करना बेहद आवश्यक है। अंग्रेजी शासन की कमियों की जानकारी भी इन पत्र पत्रिकाओं द्वारा जनता को दी जाती थी। कई बार क्रांतिकारी पोस्टर भी लगाते थे तथा पर्चे भी बाँटते थे। दूसरे चरण के क्रांतिकारियों ने पोस्टरों का व्यापक प्रयोग किया।

7. गुप्त समितियाँ तथा सभाएँ (Secret Societies and Meetings)–ब्रिटिश साम्राज्यवाद से लड़ने के लिए क्रांतिकारियों ने अनेक गुप्त संगठनों एवं सभाओं का गठन किया था। इन गुप्त समितियों के माध्यम से क्रांतिकारी अपनी योजनाओं को अंजाम देने के लिए योजनाएँ बनाते थे, बमों का प्रयोग करने एवं हथियारों का प्रशिक्षण दिया जाता था। इनके माध्यम से देश के विभिन्न भागों में काम करने वाले क्रांतिकारियों के बीच सम्पर्क भी स्थापित होना था। **अभिनव भारत, अनुशीलन समिति, युगान्तर पार्टी तथा सरस्वती समिति, अंजुमन-ए-मुहिबान-ए-वतन, भारत माता सोसाइटी** आदि क्रांतिकारियों की प्रसिद्ध गुप्त समितियाँ थीं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि क्रांतिकारी दर्शन त्याग, बलिदान एवं राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति का दर्शन था। क्रांतिकारी उच्च आदर्शों से परिपूर्ण सच्चे देशभक्त थे। वे अन्याय तथा शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था को बदलकर समानता एवं भाईचारे के आधार पर नये भारत का निर्माण करना चाहते थे। वे पाशविक बल पर आधारित ब्रिटिश साम्राज्य को बल के जरिए ही समाप्त करना चाहते थे। जनता में जागृति उत्पन्न करने के लिए उन्होंने त्याग एवं बलिदान का मार्ग अपनाकर अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया।

- भगत सिंह के जीवन तथा कार्यों का विवरण दीजिए।
  (Describe the life and Work of Bhagat Singh.)

अथवा

- राष्ट्रीय आन्दोलन में भगत सिंह व हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।
  (Evaluate the role of Bhagat Singh and H.S.R.A. in Indian National Movement.)

उत्तर : भगत सिंह भारतीय इतिहास के उन गिने-चुने महानायकों में से एक है जिनका नाम बड़े आदर के साथ आज भी लिया जाता है। जुबाँ पर उनका नाम आते ही गर्व की अनुभूति होती है। उच्चतम आदर्शों के लिए उनके द्वारा दी गई कुर्बानी से देश के युवक प्रभावित तथा प्रोत्साहित होते हैं। एक क्रांतिकारी की मर्यादा

के अनुरूप मुकदमे के दौरान तथा फाँसी की सजा पाने के बाद भी वे विचलित नहीं हुए। उनके द्वारा जेल के अन्दर किया गया अनशन तथा वहाँ के नियमों का विरोध उनकी दृढ़ता तथा संघर्षशील व्यक्तित्व को उजागर करता है। क्रांतिकारी विचारों के प्रचार के लिए अदालत का मंच के रूप में प्रयोग उनकी सूझ-बूझ को दर्शाता है। उनके व्यक्तित्व में एक कुशल संगठनकर्ता, जुझारू नेता और उच्च कोटि के बौद्धिक गुणों का सम्मिश्रण था। 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकेशन एसोसिएशन' का गठन करके उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ने के पश्चात् भारत में समानता के आधार पर प्रजातन्त्र की स्थापना की कल्पना की। क्रांति के द्वारा वे अन्याय एवं शोषण पर आधारित व्यवस्था को समाप्त करके समानता के आधार पर किसान व मजदूर वर्ग के शासन की स्थापना करना चाहते थे। उनकी शहादत ने क्रांतिकारी आन्दोलन को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया तथा आजादी की लड़ाई को सम्बल प्रदान किया और उनका नाम क्रांति का प्रतीक बन गया।

1. प्रारम्भिक जीवन एवं शिक्षा (Early life and Education)–भारतीय क्रांतिकारियों के महानायक भगत सिंह का जन्म 27 सितम्बर, 1907 ई. को प्रातः 9 बजे लायलपुर जिले के बंगा गाँव में हुआ। यह स्थान अब पाकिस्तान में है। भगत सिंह के पूर्वज मूलरूप से जालन्धर जिले के खटकड़ कला गाँव के निवासी थे जो बाद में विस्थापित होकर बंगा चले गए थे। उनके पूर्वज संधू जाट थे जिन्होंने सिक्ख धर्म अपना लिया था। ऐसा माना जाता है कि बालक का नाम उनकी दादी ने भगत (भाग्य Lucky) इसलिए रखा क्योंकि जिस दिन उसका जन्म हुआ था उसी दिन उनके चाचा स्वर्ण सिंह को जेल से छोड़ा गया था, उनके पिता नेपाल से लौट आए थे तथा उनके चाचा अजीत सिंह के माण्डले जेल से छूटने का समाचार प्राप्त हुआ था।

भगत सिंह क्रांतिकारी परिवार में पैदा हुए थे। उनके दादा सरदार अर्जुन सिंह जाने माने आर्यसमाजी नेता तथा यूनानी वैद्य थे। उन्होंने 19वीं सदी के धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलनों में बढ़-चढ़कर भाग लिया था। सरदार अर्जुन सिंह के तीन पुत्र थे–किशन सिंह, अजीत सिंह तथा स्वर्ण सिंह। भगत सिंह के पिता किशन सिंह को उनके दादा एक सफल व्यवसायी बनाना चाहते थे अतः उन्होंने अपने बेटे को लाहौर में एक कंपनी का बीमा एजेंट नियुक्त करवाया। परन्तु उनका मन सामाजिक कार्यों में अधिक था। उन्होंने बरार प्रान्त में 1899-1900 के अकाल में लाला विशम्बर दास तथा अमरदास के साथ मिलकर अकाल सहायता कार्य किया था। बाद में उन्होंने कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण कर ली थी तथा 1907 में अपने भाइयों (अजीत सिंह, स्वर्ण सिंह), सूफी अम्बा प्रसाद आदि से मिलकर 'भारतमाता सोसाइटी' का गठन किया था। 1907 के 'कालोनाइजेशन एक्ट' के विरोध में प्रदर्शन करने पर उन्हें जेल में बन्द कर दिया गया था। बाद में 'गदर' आन्दोलन में भी उन्होंने बढ़-चढ़कर भाग लिया था। अंग्रेजों की आँखों की किरकिरी बने **भगत सिंह के चाचा सरदार अजीत सिंह थे।**

लाहौर के डी.ए.वी. कॉलेज से इन्टर करने के पश्चात् वे कुछ दिन तक स्कूल अध्यापक रहे। बाद में लाला लाजपत राय से प्रेरणा पाकर उग्रवादी नेता बन गए थे। उन्होंने 'कालोनाइजेशन बिल' के विरोध में जेल की सजा पाई थी। उन्होंने **'इण्डियन पैट्रोटियक एसोसिएशन'** तथा **'भारतमाता सोसाइटी'** का गठन किया। सूफी अम्बा प्रसाद के साथ मिलकर पेशवा नामक पत्र का सम्पादन भी किया था। वे एक प्रसिद्ध क्रांतिकारी थे। भगत सिंह के जन्म के समय वे माण्डले जेल से रिहा हुए थे। भगत सिंह पर उनका खासा प्रभाव था। सरदार अर्जुन सिंह के **तीसरे पुत्र स्वर्ण सिंह** भी एक प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानी थे। मात्र 23 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया था। इस प्रकार भगत सिंह को विरासत में एक **प्रसिद्ध क्रांतिकारी व देशभक्त परिवार** मिला था। भगत सिंह के चार भाई–कुलबीर सिंह, कुलतार सिंह, राजेन्द्र सिंह तथा रणबीर सिंह व तीन बहनें बीबी अमरकौर, बीबी प्रकाश कौर तथा बीबी शकुन्तला थीं। उनकी माता का नाम श्रीमती विद्यावती था।

1911-12 ई. में भगत सिंह को बंगा के प्राइमरी विद्यालय में भर्ती करवाया गया। स्कूल में बहुत जल्दी सब उसे प्यार करने लगे थे क्योंकि वह बहुत प्यारा तथा मिलनसार था। अपने प्रारम्भिक जीवन में ही भगत सिंह का भारत के प्रमुख नेताओं से सम्पर्क हुआ था क्योंकि ये लोग अक्सर उनके घर आते जाते थे। इनमें लाला पिण्डी दास, आनन्द किशोर मेहता, लाला लाजपत राय, सूफी अम्बा प्रसाद आदि थे। गदर आन्दोलन के प्रमुख करतार सिंह सराभा के साहस एवं त्याग का भगत सिंह के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था तथा वे

अक्सर अपनी जेब में उनकी फोटो रखते थे। गाँव के विद्यालय से पाँचवीं कक्षा पास करने के पश्चात् भगत सिंह ने लाहौर के डी.ए.वी. स्कूल में दाखिला लिया। संस्कृत में वह बहुत प्रवीण थे। भगत सिंह के लाहौर प्रवास के दौरान भारतीय इतिहास का भीषण नरसंहार 'जलियाँवाला बाग' हत्याकाण्ड हुआ। इस घटना ने भगत सिंह के दिल को दहला दिया। वह उस स्थान पर गया तथा उस जगह की लाल मिट्टी को अपनी बोतल में भरकर लाया व इस लाल मिट्टी से उसे 'बलिदान' की प्रेरणा मिली तथा उसने इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने का निश्चय कर लिया। महात्मा गाँधी के आह्वान पर भगत सिंह ने डी.ए.वी. स्कूल छोड़ दिया तथा उसने लाला लाजपत राय एवं भाई परमानन्द द्वारा स्थापित नेशनल कॉलेज में प्रवेश लिया। नेशनल कॉलेज में भगत सिंह का सम्पर्क भगवती चरण, सुखदेव, यशपाल, रामकृष्ण एवं तीर्थराम से हुआ। कॉलेज में इतिहास के प्राध्यापक जयचन्द्र विद्यालंकार भगत सिंह से बहुत प्रभावित थे तथा उन्होंने भगत सिंह को क्रांतिकारी इतिहास पढ़ाया। **प्रो० विद्यालंकार भगत सिंह के राजनीतिक गुरु बन गए।** इतिहास तथा राजनीति शास्त्र भगत सिंह के प्रिय विषय थे। पढ़ाई के अतिरिक्त देशभक्ति के गीतों, नाटकों में भी भगत सिंह की रुचि थी। वह **'नेशनल ड्रामाटिक क्लब'** लाहौर का सदस्य था। **'सम्राट् चन्द्रगुप्त'** नाटक में भगत सिंह ने नायक शशिगुप्त की भूमिका अदा की थी। **राणा प्रताप, महाभारत** आदि नाटकों में भी भगत सिंह ने मुख्य भूमिकाएँ अदा की थीं। नेशनल कॉलेज लाहौर से भगत सिंह ने एफ.ए. परीक्षा पास की तथा बी.ए. में प्रवेश लिया परन्तु अपने माता-पिता द्वारा उनकी शादी का प्रस्ताव मंजूर कर लिए जाने के कारण उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी व लाहौर से चले गए।

2. राजनीतिक जीवन का आरंभ (Beginning of Political life)–जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड एवं रौलट एक्ट के बाद महात्मा गाँधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन चलाया। गाँधीजी की अपील पर बड़ी संख्या में नवयुवकों ने इस आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। परन्तु जब यह आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था तो 4 फरवरी, 1922 को चौरी-चौरा घटना के कारण गाँधीजी ने इस आन्दोलन को वापिस ले लिया। इससे युवा वर्ग में एक बार पुनः निराशा छा गई तथा वे पुनः क्रांतिकारी साधनों की तरफ मुड़े। चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने दिल्ली के फिरोजशाह कोटला में इकट्ठे होकर **'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'** का गठन किया। इस संगठन का उद्देश्य भारत में सशस्त्र क्रांति द्वारा ब्रिटिश शासन का अन्त करके समानता के आधार पर प्रजातन्त्र की स्थापना करना था।

1924 ई. में लाहौर छोड़ने के पश्चात् भगत सिंह अपने गुरु जयचन्द्र विद्यालंकार का एक पत्र लेकर कानपुर पहुँचे। कानपुर पहुँचकर सीधे उनकी मुलाकात क्रांतिकारी गणेश शंकर विद्यार्थी से हुई जो एक महान् देशभक्त थे तथा **प्रताप प्रेस** चला रहे थे। विद्यार्थी भगत सिंह से बातचीत करने पर अत्यधिक प्रभावित हुए तथा उन्होंने भगत सिंह को 'प्रताप' प्रेस में काम दे दिया तथा उन्होंने भगत सिंह का नाम बदलकर **'बलवन्त'** रख दिया। खाली समय में भगत सिंह स्वतंत्रता आन्दोलनों, क्रांतियों एवं समाजवाद से संबंधित पुस्तकें पढ़ते थे। विद्यार्थी का घर क्रांतिकारियों का केन्द्र था तथा यहाँ अनेक क्रांतिकारी जैसे **बटुकेश्वर दत्त, चन्द्रशेखर आजाद, जोगेश चन्द्र चटर्जी, बिजोय कुमार सिन्हा** आदि से भगत सिंह की मुलाकात हुई तथा वे भी **'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन'** के सदस्य बन गए। एसोसिएशन का सदस्य बनने के पश्चात् भगत सिंह की मुलाकात पंजाब एवं संयुक्त प्रान्त के अन्य क्रांतिकारियों से हुई।

भगत सिंह का कार्य क्रांतिकारी पत्रों का प्रकाशन करना एवं उन्हें बँटवाना था। अपने कार्य को पूरा करने के लिए भगत सिंह ने मेलों को चुना। एक बार प्रताप गढ़ के दशहरे मेले के अवसर पर भगत सिंह ने बड़ी चतुराई एवं साहस से पुलिस वालों को बेवकूफ बनाकर अपनी जान छुड़ाई थी। कानपुर में कुछ दिन रहने के बाद गणेश शंकर विद्यार्थी ने भगत सिंह को कानपुर के निकट एक नेशनल स्कूल का प्राचार्य नियुक्त करवा दिया। यहाँ उन्होंने बड़ी मेहनत एवं लग्न से काम किया। 1924 में गंगा नदी में बाढ़ आने पर भगत सिंह ने बाढ़ पीड़ितों की भी मदद की।

इसी बीच भगत सिंह की दादी बीमार पड़ गई तथा उसने भगत सिंह को देखने की इच्छा जताई। अतः भगत सिंह के पिता ने उसके मित्र जिनरका गाँव के रामचन्द्र के सहयोग से भगत सिंह तक यह संदेशा पहुँचाया। अपनी दादी की बीमारी का समाचार सुनकर भगत सिंह लाहौर लौट आए तथा अपनी दादी की उन्होंने खूब

इसी बीच 1925 में अपने गाँव में अकाली सेवा की। दादी के स्वस्थ होने पर वे कानपुर वापिस नहीं लौटे। इसी बीच 1925 में अपने गाँव में अकाली जत्थे का नेतृत्व करने के आरोप में सरकार ने उनको पकड़ने के लिए वारन्ट जारी कर दिए परन्तु भगत सिंह बचकर लाहौर चले गए। लाहौर से वे अपने गुरु का पत्र लेकर दिल्ली आए तथा यहाँ उन्होंने समाचार-पत्र वीर अर्जुन के लिए 5-6 महीने कार्य किया तथा अकाली आन्दोलन की समाप्ति पर पुनः लाहौर आ गए। यहाँ आकर उन्होंने **सोहन सिंह जोश द्वारा स्थापित कीर्ति किसान पार्टी** से सम्पर्क किया तथा इस पार्टी के लिए लेख लिखे। उन्होंने 'हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन' से भी अपने संबंध बनाए रखे क्योंकि अगस्त, 1925 ई. में **काकोरी डकैती** काण्ड के कुछ क्रांतिकारियों को सरकार ने गिरफ्तार कर लिया था। अपने साथियों को जेल से छुड़ाने के लिए क्रांतिकारियों ने एक योजना भी बनाई। एक योजना को क्रियान्वित करने के लिए नवम्बर, 1925 में भगत सिंह कानपुर गए परन्तु योजना के बारे में खूफिया खबर पुलिस को लग जाने के कारण यह योजना रद्द करनी पड़ी। जनवरी, 1926 ई. में दूसरी योजना भी असफल हो गई।

3. नौजवान भारत सभा का गठन (Formation of Naujawan Bharat Sabha)–लाहौर में भगत सिंह ने समान विचारों वाले मित्रों से बातचीत करने के बाद एक संगठन स्थापित करने का मन बनाया। काफी विचार विमर्श के बाद मार्च, 1926 ई. में भगत सिंह ने अपने मित्रों के साथ मिलकर **नौजवान भारत सभा** का गठन किया। इसके **अध्यक्ष रामकिशन** बी.ए. **तथा सचिव भगत सिंह** तथा प्रचार मंत्री **भगवती चरण बोहरा** बने। छबीलदास, यशपाल, डॉ० सत्यपाल, जयचन्द्र विद्यालंकार, लाला पिंडीदास आदि ने भी इस सभा को अपना योगदान दिया। इस सभा के प्रमुख राजनीतिक उद्देश्य निम्नलिखित थे–

(i) सारे भारत में किसानों व मजदूरों के राज्य की स्थापना करना।

(ii) देश के नौजवानों में भारत को संगठित करने के लिए देशभक्ति की भावना का विकास करना।

(iii) ऐसे आर्थिक, औद्योगिक एवं सामाजिक आन्दोलनों के साथ सहानुभूति प्रकट करना जो साम्प्रदायिकता से दूर रहकर देश में पूर्ण स्वतंत्रता व मजदूर व किसान का राज्य लाने में सहायता करें।

(iv) देश के मजदूरों एवं किसानों को संगठित करना।

शीघ्र ही कीर्ति किसान पार्टी के सहयोग से नौजवान सभा की शाखाएँ लाहौर, अमृतसर, जालंधर, लुधियाना, मिंटगुमरी, मोरिंज व सरगोधा, स्यालकोट, मुलतान आदि स्थानों पर खोली गईं। सभा ने **'जलियाँवाला बाग दिवस'** एवं **'काकोरी दिवस'** तथा **करतार सिंह सराभा** का शहीदी दिवस मनाया। नौजवान सभा के उद्देश्यों से स्पष्ट है कि भगत सिंह भारत में समाजवाद की स्थापना करना चाहते थे। उन पर 1917 ई. की रूसी क्रांति का प्रभाव था जिसका अध्ययन उन्होंने अपने कॉलेज के दिनों में किया था। भगत सिंह ने जून, 1928 ई. में 'नौजवान भारत सभा' की सहायक संस्था के रूप में **'छात्र-यूनियन'** का भी गठन किया। सरकार 'नौजवान भारत सभा' की सभी गतिविधियों पर पैनी नजर रखे हुए थी तथा वह भगत सिंह की गिरफ्तारी के मौके की तलाश में थी। सरकार को भगत सिंह को गिरफ्तार करने का अवसर तब मिला जब दशहरे मेले पर एक बम फट गया जिससे 12 व्यक्ति मारे गए तथा 60 घायल हुए। भगत सिंह को बिना मुकदमा चलाए लाहौर के किले में रखा गया तथा बाद में **बास्टल जेल** भेज दिया गया। जनता के दबाव व माता-पिता की प्रार्थना पर अन्ततः सरकार ने 60000 रुपये की जमानत पर भगत सिंह को छोड़ दिया।

4. हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक संघ (Hindustan Socialist Republicans Association)–काकोरी केस के पश्चात् क्रांतिकारियों में कुछ निराशा आ गई थी परन्तु नौजवान सभा के गठन के पश्चात् क्रांतिकारी गतिविधियों में पुनः तेजी आई। भगत सिंह व उसके साथी रूसी क्रांति की तर्ज पर समूचे देश में जन क्रांति लाना चाहते थे। इसके लिए आवश्यक था कि संगठन को मजबूत किया जाए तथा देश के विभिन्न भागों में काम करने वाले क्रांतिकारियों में एकता स्थापित की जाए। इसी उद्देश्य के लिए 9-10 सितम्बर, 1928 ई. को दिल्ली के फिरोजशाह कोटला में चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में इकट्ठे हुए। इस सभा के सचिव भगत सिंह थे। देश के विभिन्न भागों से आए 60 क्रांतिकारियों ने इस बैठक में भाग लिया था जिनमें 5 महिलाएँ भी थीं। इनमें प्रमुख थे–चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह, सुखदेव, बिजोय कुमार सिन्हा,

सुरेन्द्र पांडे, भगवती चरण, राजगुरु, यशपाल, जतिन्द्रनाथ दास आदि। चन्द्रशेखर आजाद ने सैनिक आधार पर संगठन को खड़ा करने पर बल दिया। भगत सिंह के सुझाव पर **'हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक संघ'** के साथ 'समाजवादी' शब्द जोड़ कर संगठन का नाम **'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक संघ'** रखा गया। इससे स्पष्ट होता है कि संगठन का ध्येय समाजवादी प्रजातन्त्र की स्थापना करना था। संगठन को सैनिक रूप देने के लिए संघ की अपनी सेना **'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना'** का गठन किया गया तथा **चन्द्रशेखर आजाद को इसका कमान्डर-इन-चीफ** बनाया गया। भगत सिंह, सुखदेव, विजोय कुमार सिन्हा, जितेन्द्र नाथ घोष, कुन्दन लाल तथा चन्द्रशेखर आजाद सदस्यों की अखिल भारतीय वर्किंग कमेटी का भी गठन हुआ। भगत सिंह तथा बिजोय कुमार सिन्हा को मिलाकर अन्तर्प्रान्तीय कोर्डीनेशन कमेटी का भी गठन हुआ। सदस्यों को **कार्यकर्ता** एवं **सहायक** दो भागों में बाँटा गया। इस सभा में साइमन कमीशन के बहिष्कार तथा उनकी गाड़ी पर बम फेंकने, कलकत्ता, सहारनपुर, आगरा तथा लाहौर में बम बनाने के कारखाने खोलने, काकोरी काण्ड के मुखबिरों की हत्या करने आदि निर्णय लिए गए। सभा के बाद भगत सिंह भटिंडा के रास्ते वेश बदलकर लाहौर चले गए।

5. लाला लाजपत राय की मृत्यु एवं सांडर्स की हत्या (Lala Lajpat Rai's Death and Saunder's Murder)–जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की कि 'हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन' ने फिरोजशाह कोटला में अपनी बैठक में साइमन कमीशन के बहिष्कार का फैसला लिया था। इस निर्णय को क्रियान्वित करने के लिए अक्टूबर, 1928 में भगत सिंह ने 'नौजवान भारत सभा' के सदस्यों के साथ बैठक की तथा कमीशन के बहिष्कार के लिए कार्यकर्ता तैयार किए। 30 अक्टूबर, 1928 को जब कमीशन लाहौर पहुँचा तो लाला लाजपत राय के नेतृत्व में विरोध जुलूस स्टेशन की तरफ बढ़ा। भगत सिंह व उसके साथी जुलूस की अगली पँक्ति में थे। जुलूस ने कमीशन को काले झण्डे दिखाते हुए 'साइमन वापिस जाओ' तथा 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे लगाए। लाला लाजपत राय ने पुलिस द्वारा जुलूस को आगे बढ़ने से रोकने का विरोध किया। परिणामस्वरूप पुलिस अधीक्षक मि. स्कॉट ने स्वयं लाठी लेकर लाला जी पर प्रहार किया। लाला जी के सिर पर गम्भीर चोटें लगीं। भगत सिंह जो यह सब देख रहे थे गुस्से से आग-बबूला हो गए परन्तु विरोध न करने की सख्त हिदायतों के कारण कुछ नहीं बोल सके। चोटों के कारण 17 नवम्बर, 1928 ई. को लाला जी की मृत्यु हो गई। भगत सिंह तथा उसके साथियों ने इसे राष्ट्रीय अपमान माना तथा उन्होंने लाला जी की मौत का बदला लेने का निश्चय किया।

लाला जी की मौत का बदला लेने के लिए 10 दिसम्बर, 1928 की रात्रि को H.S.R.A. की बैठक हुई जिसमें **'खून का बदला खून' (Blood for Blood)** के निर्णय को कार्य रूप देने के लिए योजना बनाई गई। **दुर्गा भाभी** के निर्णय के अनुसार राजगुरु, भगत सिंह, जयगोपाल, सुखदेव व भाभी को इस कार्य की जिम्मेवारी सौंपी गई, परन्तु चन्द्रशेखर आजाद के निर्णय के अनुसार दुर्गा भाभी को कार्यक्रम से अलग रखा गया। 15 दिसम्बर की बैठक में जयगोपाल को स्कॉट को पहचान कर इशारा करने का काम दिया गया। राजगुरु तथा भगत सिंह को जयगोपाल से इशारा मिलने के बाद स्कॉट पर गोली चलाने का आदेश तथा आजाद व सुखदेव को उनकी सुरक्षा की जिम्मेवारी दी गई। 17 दिसम्बर को जब सहायक पुलिस अधीक्षक जे.पी. सांडर्स पंजाब सिविल मंत्रालय के पुलिस दफ्तर से बाहर निकला तो जयगोपाल ने उसे स्कॉट समझकर भगत सिंह की तरफ इशारा किया। राजगुरु ने सांडर्स पर गोली चलाई जिससे वह गिर गया। तत्पश्चात् भगत सिंह ने पाँच अन्य गोलियाँ मारकर सांडर्स का काम तमाम कर दिया। यद्यपि पुलिस ने उनका पीछा किया परन्तु क्रांतिकारी बड़ी चालाकी से कोर्ट स्ट्रीट होते हुए डी.ए.वी. कॉलेज पहुँच गए। अगले दिन लाल इश्तहार बाँटा गया जिसमें घोषणा की गई कि H.S.R.A ने लाला लाजपत राय की मौत का बदला ले लिया। इश्तहार में लिखा था, **"लाखों लोगों के चहेते नेता की एक सिपाही द्वारा हत्या देश का अपमान था। भारत के नौजवानों का उनकी हत्या का बदला लेना एक महान् कर्तव्य था।"** सांडर्स की हत्या ने भगत सिंह को सारे देश में प्रसिद्ध कर दिया। पंडित नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा, "वह (भगत सिंह) एक प्रतीक बन गया,.... कुछ ही दिनों में पंजाब का प्रत्येक **गाँव व नगर तथा पूरे उत्तरी भारत में भगत सिंह का नाम गूँज उठा।"**

6. एसैम्बली बम काण्ड 8 अप्रैल, 1929 (The Assembly Bomb Case April 8, 1929)–सांडर्स हत्याकाण्ड के बाद भगत सिंह दुर्गा भाभी के साथ लाहौर से निकल कर कलकत्ता आए जहाँ कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन चल रहा था। यहाँ उन्होंने यतीन्द्रनाथ दास से सम्पर्क किया तथा उनसे आगरा चलकर दल के सदस्यों को बम बनाने की विधि सिखाने का आग्रह किया। जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। आगरा H.S.R.A (हि... की सेना) का मुख्यालय था। बम बनाने का प्रशिक्षण एक महीने चला तथा इसके बाद केन्द्र बन्द कर दिया गया व अब दिल्ली केन्द्र बनाया गया। शिव वर्मा व जयदेव कपूर ने सहारनपुर व सुखदेव ने लाहौर में बम फैक्ट्री प्रारम्भ की। आगरा में बनाए गए बमों का झाँसी के जंगलों में भगत सिंह ने प्रयोग करके देखा। 1928-29 का वर्ष भारतीय राजनीति में काफी उथल-पुथल का वर्ष था। युवा आक्रोश, मेरठ षड्यंत्र, मजदूर आन्दोलन एवं जन आन्दोलन के लिए कांग्रेस तत्परता ने वातावरण को लोगों को राजनीतिक जागरण के अनुकूल बना दिया था। अतः भगत सिंह व दल के अन्य लोगों ने आन्दोलन को एक दिशा देने का प्रस्ताव पास किया। ब्रिटिश सरकार ने इस परिस्थिति का मुकाबला करने के लिए **सार्वजनिक सुरक्षा बिल (Public Safety Bill)** व **औद्योगिक विवाद बिल (Trade Despute Bill)** नामक दो विधेयक केन्द्रीय व्यवस्थापिका (सैन्ट्रल एसैम्बली) में पेश किए ताकि उन्हें कानून बनाया जा सके। क्रांतिकारियों की इस समस्या पर बातचीत करने के लिए आगरा में हींग की मंडी में बैठक हुई। इस बैठक में बिलों के पेश करने के दिन केन्द्रीय एसैम्बली में बम फेंकने की योजना बनाई गई व इसके लिए भगत सिंह एवं बटुकेश्वर दत्त को चुना गया।

एसैम्बली बहुमत से 'सार्वजनिक सुरक्षा' एवं 'औद्योगिक विवाद बिल' को ठुकरा चुकी थी परन्तु वायसराय के विशेषाधिकार द्वारा 8 अप्रैल को इन्हें कानून बनाया जाना था। इस दिन से पहले भगत सिंह ने आगरा व दिल्ली के बीच कई चक्कर लगाए। भगत सिंह व बी.के. दत्त ने कश्मीरी गेट पर रामनाथ से अपने फोटो खिचवाएं व उन्हें 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में प्रकाशित करवाया। दोनों ने एसैम्बली में प्रवेश का 'अतिथि पास' भी प्राप्त कर लिया व इसी पास के जरिए वे 8 अप्रैल को दर्शक दीर्घा में जाकर बैठ गए। दोनों खाकी कमीज़ व निकर पहने थे तथा भगत सिंह ने नीले रंग का कोट भी डाला हुआ था जिसमें बम छिपाकर रखे हुए थे। उन्होंने कुछ देर संसद की कार्यवाही देखी तथा ज्योंहिं अध्यक्ष अपना निर्णय देने के लिए खड़े हुए भगत सिंह ने खड़े होकर एक बम फेंका, इससे सदन में अफरा-तफरी मच गई इतने में भगत सिंह ने एक और बम फेंका। पूरा हाल धुएँ से भर गया। सदस्य व पत्रकार इधर-उधर भागने लगे व अध्यक्ष भागकर अपने कमरे में चले गए।

जब सदन धुएँ से भरा हुआ था तब भगत सिंह व बी.के. दत्त ने **'इन्कलाब जिन्दाबाद'** व **'ब्रिटिश साम्राज्य का नाश हो'** तथा मजदूर एकता जिन्दाबाद के नारे लगाए। उन्होंने सदन में लाल रंग के पर्चे फेंके जिन पर लिखा था, **"बहरों को सुनाने के लिए ऊँचा धमाका करना पड़ता है। ये शब्द एक फ्रांसीसी देशभक्त ने कहे थे। हम भी इन्हीं शब्दों से अपनी कार्यवाही की सफाई पेश करते हैं।"...... हमें इस बात से खेद है कि हम मानवता का रक्त बहा रहे हैं ...... परन्तु क्रांति की बलीवेदी पर व्यक्तिगत बलिदान से स्वतंत्रता मिलेगी तथा व्यक्ति द्वारा व्यक्ति के शोषण को दूर किया जा सकेगा। "क्रांति जिन्दाबाद"**

भगत सिंह व दत्त चाहते तो बड़ी आसानी से भाग सकते थे परन्तु वे बड़े धैर्य से अपनी जगह खड़े रहे तथा दोनों ने घटना की जिम्मेवारी स्वीकारते हुए अपनी गिरफ्तारी दी। गिरफ्तारी के समय भगत सिंह के पास एक स्वचालित पिस्तौल भी थी।

7. भगत सिंह पर मुकदमा (Trial of Bhagat Singh)–एसैम्बली बम काण्ड से अंग्रेजी सरकार घबरा गई। दिल्ली में कलकत्ता से विशेष आतंकवादी विरोधी पुलिस बुलाई गई तथा इस काण्ड के षड्यन्त्र का पता लगाने की कोशिश की गई। लाहौर में बम फैक्ट्री पकड़ी जाने तथा जयगोपाल के पुलिस का मुखबिर (सरकारी गवाह) बन जाने से सांडर्स हत्याकाण्ड व एसैम्बली बमकाण्ड के संबंधों की जानकारी मिली। क्रांतिकारियों की धर पकड़ तेज हो गई व 'हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रिक समाजवादी सेना' के अनेक क्रांतिकारी गिरफ्तार कर लिए गए। 7 मई, 1929 को मजिस्ट्रेट पूल की अदालत में भगत सिंह व बी.के. दत्त पर मुकदमा चलाया गया। बाद में 'स्पेशल ट्रिब्यूनल' के जज मिडिलटन की अदालत में यह मुकदमा चला। बचाव पक्ष की दलील सुनने के

बाद IPC की धारा 307 के अन्तर्गत हत्या करने के प्रयास एवं 'विस्फोटक सामग्री अधिनियम' के तहत मुकदमा चलाया गया।

भगत सिंह व उसके साथियों ने अदालत को अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए मंच के रूप में प्रयोग किया। वे अदालत में निडर होकर बयान देते रहे। अदालत में इन क्रांतिकारियों ने अपनी पार्टी के उद्देश्यों एवं कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला। अभियोग पक्ष की दलीलें पूरी होने के बाद भगत सिंह ने महसूस किया कि अब अपने विचारों को रखने का समय आ गया है। कठिन परिश्रम के बाद उन्होंने अपना उत्तर तैयार किया। यह भारतीय क्रांति के इतिहास में एक ऐतिहासिक वक्तव्य था। इसे क्रांतिकारी दस्तावेजों की अमूल्य निधि कहा जा सकता है। भगत सिंह व बी.के. दत्त की तरफ से यह वक्तव्य 6 जून, 1929 ई. को आसफ अली ने प्रस्तुत किया। इसके कुछ अंशों का विवरण इस प्रकार है। बम फेंकने के कारणों का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, **"परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो गया था कि इंग्लैण्ड को अपने मीठे स्वप्नों से बम द्वारा जगाया जाए। एक बार गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य सी.आर. दास ने अपने पुत्र को लिखा था कि इंग्लैण्ड को अपने सुख स्वप्नों से जगाने के लिए बम जरूरी है। इन्हीं शब्दों पर विचार करते हुए हमने एसैम्बली में बम फेंका। यह हमने उन लोगों की तरह इन बिलों के विरुद्ध घोर विरोध दिखाने के लिए किया है जिनके पास अपने हृदय को चीरने की वेदना को दिखाने के लिए कोई और साधन नहीं होता। बम जो फेंके हैं वे जानबूझकर ऐसे बनाए गए थे जिनसे कोई हानि न हो तथा सदन में खाली जगह पर फेंके गए थे ताकि किसी को जरा-सी भी हानि न हो।"** उन्होंने आगे कहा कि, **"हमें किसी से व्यक्तिगत द्वेष या घृणा नहीं थी, बल्कि हम मानव जीवन को अत्यधिक पवित्र समझते हैं। दूसरों को चोट करने की बजाय हमने आत्म-समर्पण कर दिया तथा अपने आप को बलिदान करने के लिए तैयार किया क्योंकि हम दिखा देना चाहते हैं कि हम भाड़े के सैनिक नहीं हैं। काला कानून या अत्यधिक अत्याचार भी क्रांति की लपटों को नहीं बुझा सकते।"**

क्रांति के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा, **"क्रांति का अभिप्राय बम या पिस्तौल मात्र नहीं है। क्रांति से हमारा अभिप्राय यह है कि वर्तमान वस्तुस्थिति और समाज व्यवस्था को जो स्पष्ट रूप से अन्याय पर टिकी हुई है को बदला जाए। क्रांति से मतलब ऐसी समाज व्यवस्था की स्थापना से है जहाँ साधारण जनता की सत्ता स्थापित हो। इस उच्च आदर्श की प्राप्ति हेतु हम सभी प्रकार के त्याग व कष्ट सहने को तैयार हैं।"**

अदालत में भगत सिंह व उसके साथी क्रांतिकारियों के निर्भीक बयानों एवं विद्रोही रुख ने सम्पूर्ण देश का ध्यान आकृष्ट किया। युवा क्रांतिकारी जो बयान देते थे वे अगले दिन अखबारों में छपते थे। वे **इन्कलाब जिन्दाबाद तथा साम्राज्यवाद मुर्दाबाद** के नारे लगाते व **'सरफरोशी की तम्मना अब हमारे दिल में है'** तथा **'मेरा रंग दे बसंती चोला'** गाने गुनगुनाते अदालत में निडर एवं साहस से जाते थे। भगत सिंह का नाम देश के घर-घर में प्रत्येक व्यक्ति की जुबान पर आ गया तथा वे क्रांति के प्रतीक के रूप में उभरे।

8. लाहौर जेल में भूख हड़ताल (Hunger Strike in Lahore Jail)–एसैम्बली बम केस में जज ने भगत सिंह को भारतीय दण्ड विधान को धारा 307 एवं विस्फोटक पदार्थ रखने के अपराध में 12 जून, 1929 को आजीवन कारावास की सजा दी। इस दण्ड के विरुद्ध अपील की सुनवाई के समय भगत सिंह ने लाहौर हाईकोर्ट में बम फेंकने से इन्कार नहीं किया परन्तु बम किसी को मारने के उद्देश्य फेंके से गए थे, इसका विरोध किया। बम काण्ड के बाद लाहौर में बम फैक्ट्री पकड़ी जाने तथा जयगोपाल के मुखबिर बन जाने से सांडर्स हत्याकाण्ड में भी भगत सिंह की सम्बद्धता से उन पर सम्राट् के खिलाफ युद्ध छेड़ने का अभियोग लगाया गया। इसे **लाहौर षड्यंत्र केस** कहते हैं। इस केस के बाद उन्हें मियाँवाली जेल से केन्द्रीय कारागार लाहौर भेज दिया गया।

केन्द्रीय कारागार लाहौर आने पर भगत सिंह ने क्रांतिकारियों के साथ साधारण कैदी की तरह व्यवहार करने की माँग की। उल्लेखनीय है कि क्रांतिकारियों के साथ साधारण कैदियों की तरह व्यवहार नहीं किया जाता था तथा उन्हें यातनाएँ दी जाती थीं। भगत सिंह व उसके साथियों ने राजनैतिक कैदी होने का दावा किया क्योंकि ब्रिटिश सरकार उन पर सम्राट् के विरुद्ध युद्ध छेड़ने और राजनैतिक विचारों को प्रोत्साहित करने के संबंध में मुकदमा चला रही थी। उन्होंने अच्छा भोजन, वस्त्र, समाचार-पत्र तथा पढ़ने लिखने की सुविधाओं

की माँग की तथा साथ ही भूख हड़ताल करने की चुनौती दी। 14 जून, 1929 ई. को भगत सिंह व साथियों ने भूख हड़ताल प्रारम्भ की। 10 जुलाई को जब सांडर्स हत्याकाण्ड का मुकदमा आरम्भ हुआ तो वे अपने साथियों जयगोपाल, सुखदेव, शिव वर्मा से मिले। 12 जुलाई, 1929 ई. को लाहौर षड्यंत्र के अन्य क्रांतिकारियों ने भी भगत सिंह की माँगों के समर्थन में भूख हड़ताल कर दी। अमृतसर के लोगों ने एक सभा करके जिसकी अध्यक्षता डॉ० किचलू ने की थी तथा इसमें 10,000 लोग शामिल थे, भूख हड़ताल का समर्थन किया। नौजवान भारत सभा ने भी **भगत सिंह दिवस** मनाया। जनता के विरोध को नजरअंदाज करते हुए सरकार ने भूख हड़तालियों के प्रति कठोर व्यवहार रखा तथा उन्हें जबरदस्ती नाक से दूध पिलाया। **अजय घोष** ने अपनी पुस्तक 'Bhagat Singh and his Comrades' में क्रांतिकारियों को जबरदस्ती खाना देने के अत्याचारपूर्ण तरीकों की चर्चा की है।

लगातार भूख हड़ताल के कारण भगत सिंह व उनके साथियों का स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। बंगाल के एक क्रांतिकारी यतीन्द्रनाथ दास (जतीन दास) की हालत 2 अगस्त को बहुत बिगड़ गई परन्तु फिर भी उन्होंने अपने प्रयास जारी रखे। डॉ० गोपीचन्द के दवाई न लेने संबंधी प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने कहा, **"मैं अपने देश के लिए मरना चाहता हूँ।"** पंजाब सरकार ने 6 अगस्त व 9 अगस्त को क्रांतिकारियों की कुछ माँगें स्वीकार कीं परन्तु उन्होंने अपना विरोध जारी रखा। अन्ततः 63 दिन की भूख हड़ताल के बाद जतीनदास शहीद हो गए। उनकी मृत्यु से पूरे देश में उत्तेजना की लहर दौड़ गई। पंडित मोतीलाल नेहरू ने 14 सितम्बर को केन्द्रीय विधानसभा में स्थगन प्रस्ताव रखा। जतीनदास की शहादत के बाद क्रांतिकारियों ने कांग्रेस कार्य-समिति के आग्रह पर 110 दिन बाद अनशन समाप्त कर दिया तथा **जेल जाँच समिति** की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया।

9. लाहौर षड्यंत्र केस व भगत सिंह की शहादत (Lahore Concipiracy Case and Martyrdom of Bhagat Singh)–जब जेल सुधारों को लेकर भगत सिंह संघर्ष कर रहे थे तब 10 जुलाई, 1929 को सांडर्स हत्याकाण्ड का मुकदमा प्रारम्भ हुआ। इस मुकदमे में 24 क्रांतिकारियों पर अभियोग चलाया गया जिनमें से 6 फरार थे, 3 को छोड़ दिया गया था, 7 सरकारी गवाह बन गए थे अतः शेष 8 के विरुद्ध मुकदमा चला जिनमें भगत सिंह भी थे। क्रांतिकारियों से इस मुकदमे को गम्भीरता से न लेने का निर्णय किया। भगत सिंह अदालती कार्यवाही के समय अदालत में क्रांतिकारी गाने गाते, नारे लगाते (इन्कलाब जिन्दाबाद, साम्राज्यवाद मुर्दाबाद) जाते थे तथा अदालत की कार्यवाही में बाधा डालते थे। कई बार उन्होंने अदालत का बहिष्कार किया परन्तु उन्हें जबरदस्ती ले जाया जाता। 19 दिसम्बर को भगत सिंह ने **'काकोरी बलिदान'** पर अदालत में एक गाना गाने की अनुमति माँगी। 24 जनवरी, 1930 को सभी अभियुक्त अदालत में लाल मफलर बाँध कर गए तथा **लेनिन दिवस** मनाया। अदालत की कार्यवाही में बाधा पहुँचाने के कारण सरकार ने Ordinane III 1930 के तहत **विशेष ट्रिब्यूनल** का गठन किया इसमें जी.एच. हिल्टन, अब्दुल कादिर तथा जे. के ताप प्रमुख थे। अपने साथियों के बचाव में दलील प्रस्तुत किए जाने के कारण भगत सिंह व अन्य ने स्पेशल ट्रिब्यूनल का बहिष्कार किया। भगत सिंह व साथियों को H.S.R.A. के कमाण्डर चन्द्रशेखर आजाद ने 23 दिसम्बर, 1929 को दिल्ली स्टेशन के पास गाड़ी से छुड़ाने के प्रयास किए परन्तु वे असफल रहे। भगत सिंह के पिता किशन सिंह ने भी वायसराय से अपने पुत्र को छोड़ने की अपील की। परन्तु भगत सिंह ने अपने पिता को लिखे पत्र में लिखा, "No Defence" Father. भगत सिंह व उसके साथियों को बचाने के लिए पूरे देश में व्यापक जन आन्दोलन भी चला।

7 अक्टूबर, 1930 को स्पेशल ट्रिब्यूनल ने भगत सिंह व उसके साथियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 121, 302, 4b, 6f व 120(b) के तहत मृत्युदण्ड की सजा दी। भगत सिंह, सुखदेव व राजगुरु की फाँसी की सजा को रोकने के लिए डिफैंस कौंसिल का गठन किया गया। प्रीवी कौंसिल में अपील की गई परन्तु सब प्रयास विफल रहे। मृत्युदण्ड को रोकने के लिए पूरे देश में प्रदर्शन हुए। मदन मोहन मालवीय ने मानवता के आधार पर मृत्युदण्ड की सजा को आजीवन कारावास में बदलने की प्रार्थना की। इंग्लैण्ड के 'हाउस ऑफ कामन्स' के कुछ सदस्यों ने भी अभियुक्तों को छोड़ने का निवेदन किया परन्तु वायसराय ने सभी प्रार्थनाओं

एवं जन विरोध की अनदेखी की। अन्त में 23 मार्च, 1931 को फाँसी दण्ड देने की तारीख निश्चित की गई।

23 मार्च, 1931 को शाम 5 बजे सभी कैदियों के बैरक में जाने के बाद तीनों को नहलाने का प्रबन्ध किया गया व उन्हें काले कपड़े पहनने को कहा। परन्तु अन्तिम साँस तक संघर्ष करते हुए तीनों ने यह कहते हुए काले कपड़े पहनने से इंकार कर दिया कि वे डकैत व हत्यारे नहीं हैं। शाम 7 बजे से कुछ पहले तीनों को बाहर लाया गया। वे 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'ब्रिटिश साम्राज्य मुर्दाबाद', 'ब्रिटिश झण्डा मुर्दाबाद' व 'राष्ट्रीय ध्वज जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए आए। 7 बजे तीनों को फाँसी लगा दी गई। जनता के विरोध के कारण रात को ही शवों को जेल की पीछे की दीवार तोड़कर सतलुज के किनारे अन्तिम संस्कार कर दिया गया। 24 मार्च को लाहौर के जिला मजिस्ट्रेट ने तीनों की मृत्यु एवं अन्तिम संस्कार संबंधी घोषणा के बाजार में पोस्टर लगवाए। देश में चारों तरफ उनकी शहादत की प्रशंसा की गई। जगह-जगह प्रदर्शन व सभाएँ हुईं यहाँ तक कि कांग्रेस ने कराची अधिवेशन में उनकी शहादत में प्रस्ताव पास किया।

भगत सिंह एवं एचएसआरए का स्वतंत्रता संग्राम में योगदान
(Role of Bhagat Singh & H.S.R.A. in Freedom Struggle)

भारतीय क्रांति के इतिहास में भगत सिंह व हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक संघ दूसरे चरण में उभर कर आए। H.S.R.A. के उद्देश्य में भारत में ब्रिटिश शासन का अन्त करके समाजवादी धर्म निरपेक्ष गणतन्त्र की स्थापना करना था। राष्ट्रीय आन्दोलन में H.S.R.A. ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसका विवरण इस प्रकार है–

1. पूर्ण स्वतंत्रता के साथ समाजवादी गणतंत्र की स्थापना का लक्ष्य (Objective of Establishment of Socialist Republic with complete Independance)–क्रांतिकारी आन्दोलन से पहले उदारवादी एवं उग्रवादी भारत में क्रमशः प्रशासनिक सुधार एवं औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग कर रहे थे परन्तु क्रांतिकारियों ने इन सबसे आगे बढ़कर भारत में पूर्ण स्वतंत्रता को अपना उद्देश्य घोषित किया। वे हिंसा एवं आतंक के आधार पर सशस्त्र संघर्ष द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य का अन्त करना चाहते थे। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय शासन का स्वरूप कैसा हो इस प्रश्न के संबंध में उनके विचार एकदम स्पष्ट थे। भगत सिंह ने 6 जून, 1929 ई. को अदालत में जो बयान दिया था उससे उनकी इस सोच की पुष्टि हो जाती है। उन्होंने कहा था, **"क्रांति का अभिप्राय बम एवं पिस्तौल मात्र नहीं है, क्रांति से अभिप्राय उस समाज व्यवस्था को बदलना है जो शोषण एवं अन्याय पर टिकी है तथा समानता के आधार पर कृषक एवं मजदूर वर्ग की शासन में भागेदारी है।"** इस प्रकार H.S.R.A. एवं भगत सिंह न्याय एवं समानता पर आधारित आदर्श समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें निम्न एवं पिछड़े वर्गों के अधिकार सुरक्षित हों। इसलिए H.S.R.A. ने समाजवादी प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र की स्थापना का लक्ष्य रखा।

2. राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान करना (To give impetus to National Movement)– क्रांतिकारियों ने न केवल अंग्रेज अधिकारियों व उनके समर्थकों की हत्याएँ कीं अपितु जन साधारण में अहिंसात्मक आन्दोलन से उत्पन्न हुई निष्क्रियता को दूर करके आजादी के संग्राम में लगे रहने की भावना को बनाए रखना भी था। 1922 ई. में असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद जिस समय देश का राजनीतिक वातावरण शान्त एवं भयभीत हो गया था ऐसे समय में राजनीतिक रिक्तिता को H.S.R.A. ने अपने साहसिक कार्यों की वजह से भरा। उन्होंने डटकर अंग्रेजों की यातनाएँ एवं कष्ट सहे व अंग्रेजों को भी भयभीत किया। उनके प्रयोगों का असर 1930 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन, 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन एवं आजाद हिन्द फौज के कारनामों पर स्पष्ट देखा जा सकता है जब भारतीयों ने निडर होकर अंग्रेजी साम्राज्य को उखाड़ने का प्रयास किया।

3. आत्म-त्याग एवं बलिदान द्वारा युवाओं को प्रेरणा (Teahing to youth by self sacrifice)–भगत सिंह व H.S.R.A. के अनेक क्रांतिकारियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में साहसिक कारनामे द्वारा अपने त्याग एवं बलिदान के अनूठे उदाहरण प्रस्तुत किए। 'काकोरी ट्रेन डकैती', एसैम्बली बमकाण्ड, लाहौर षड्यंत्र, सांडर्स की हत्या, जतीनदास की शहादत, भगवती चरण वोहरा की शहादत, भगत सिंह व उसके साथियों की शहादत आदि

ऐसी अनेक घटनाओं के आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि देश की आजादी के लिए अ प्राणों को अर्पण करने में इन्हें कोई भय नहीं लगता था। भगत सिंह ने अपनी माँ को विवाह न करने के लि मनाते हुए कहा था कि, **"देश को मेरी जरूरत है जब मेरा देश आजाद होगा मैं तब विवाह करूँगा।"** भ सिंह व H.S.R.A. के अन्य क्रांतिकारियों को सांसारिक सुखों की कोई परवाह नहीं थी वे तो देश के लि मर मिटना चाहते थे। इस प्रकार अपने त्याग एवं बलिदान द्वारा क्रांतिकारी युवाओं के प्रेरणा-स्रोत बन ग वे आज भी लाखों भारतीयों के प्रेरणा स्रोत हैं।

4. जन क्रांति का प्रयास (Attempt of Mass Revolution)–भगत सिंह व H.S.R.A. के बया एवं क्रांतिकारी साहित्य से पता चलता है कि ये लोग ब्रिटिश शासन को समाप्त करने के लिए अपने बलि द्वारा जन क्रांति लाना चाहते थे। एसैम्बली बमकाण्ड के बाद ये लोग आसानी से भाग सकते थे परन्तु भ सिंह व H.S.R.A. अदालत का प्रयोग एक मंच के रूप में करना चाहते थे ताकि उनकी विचारधारा लो तक पहुँच सके। वे प्रतिदिन अदालत में 'इन्कलाब जिन्दाबाद', 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद' के नारे लगाते जाते ताकि जनता में जोश पैदा किया जा सके। यद्यपि उन्होंने कुछ कार्यवाहियाँ छिपकर कीं परन्तु ये उनकी मजबू थी। उनको इस प्रयास में सफलता भी मिली जैसा कि **डॉ० पट्टाभि सीतारमैया** ने लिखा है कि, **"कराची कांग्रेस के अधिवेशन के समय सरदार भगत सिंह का नाम भारत में उतना ही लोकप्रिय था जितना गाँधीजी का** **सुभाष चन्द्र बोस** ने भी उन्हें **"क्रांतिकारी भावना का प्रतीक"** बताया था। इससे स्पष्ट है कि उन्हें व्यापक ज समर्थन प्राप्त हुआ।

5. कांग्रेस की नीतियों में परिवर्तन (Change in Congress Policies)–कांग्रेस की नीतियों व लक्ष्यों पर भी भगत सिंह व एच.एस.आर.ए. की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। 1929 ई. में कांग्रेस ने अप पुरानी 'औपनिवेशिक स्वराज्य' की माँग को छोड़ते हुए 'पूर्ण स्वतंत्रता' को अपना लक्ष्य बनाया। कांग्रेस ने य लक्ष्य एच.एस.आर.ए. से लिया था जिन्होंने भारत में साम्राज्यवादी प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र की स्थापना को अप लक्ष्य बनाया था। भगत सिंह व उसके साथियों ने 6 जून, 1929 ई. में अपना जो ऐतिहासिक वक्तव्य दि था उसकी स्पष्ट छाप दिसम्बर, 1929 ई. के कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन पर दिखाई देती है। हिंसक का के बढ़ते दबाव के कारण गाँधीजी ने 1930 में सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया था। **प्रो० विपिन च** ने लिखा है कि, **"राष्ट्रवाद के उद्देश्य के कारण ही क्रांतिकारियों ने देश को जाग्रत करने तथा अपने देशवासि का प्यार व आदर प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की। यह कोई साधारण सफलता नहीं थी। इस सफलता क लाभ परम्परागत कांग्रेसी नेताओं ने उठाया।"**

निष्कर्ष (Conclusion)–निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि भगत सिंह व हिन्दुस्तान प्रजातान्त्रि समाजवादी संघ ने राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इन वीरों ने जिस प्रकार देश की स्वतंत्र के लिए स्वयं को मौत के द्वार तक पहुँचाया, उसके लिए निःसंदेह वे प्रशंसा के पात्र हैं। एम.एन. दास ने लिखा है कि, **"उनकी (क्रांतिकारियों) एक के बाद लहर आती ही चली जाती तो इस महाद्वीप पर बिखरे हुए मुट्ठी अंग्रेज इन अराजकतावादियों के हमलों को अधिक समय तक नहीं रोक पाते और आजादी जिस समय मि उससे बहुत पहले मिल गयी होती।"**

Swadeshi Movement.)

अथवा

- स्वदेशी आन्दोलन के प्रभाव का मूल्यांकन कीजिए।
(Evaluate the impact of Swadeshi Movement.)

अथवा

- "स्वदेशी आन्दोलन पहले की राजनीतिक गतिविधियों से भिन्न था।" स्वदेशी आन्दोलन का विवरण देते हुए इस कथन की चर्चा कीजिए।
("The Swadeshi Movement was different from its earlier political activities." Discuss the statement giving account of Swadeshi Movement.)

अथवा

- लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन क्यों किया? बाद में विभाजन समाप्त करने के पीछे अंग्रेजों की क्या विवशता थी?
(Why did Lord Curzon partition Bengal? What compulsion of the British behind ending the partition later?)

अथवा

- बंग भंग अथवा बंगाल विभाजन (1905) के उद्देश्यों और उसके परिणामों की विवेचना कीजिए।
(Enumerate the split in Bengal or Division of Bengal (1905) with the objectives inherent and its result.)

अथवा

- भारतीय राष्ट्रीय संग्राम के इतिहास में बंगाल-विभाजन के विरुद्ध हुए आन्दोलन के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
(Highlight the importance of movement launched against split in Bengal in the history of India's National Struggle.)

उत्तर :

बंग-भंग के विरुद्ध विद्रोह
(Revolt Against Split Caused in Bengal)

भारत विरोधी ब्रिटिश सरकार का राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक और आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप उसके विरुद्ध पैदा असन्तोष तथा भारतीयों में पैदा हो रही प्रबल उग्रराष्ट्रीयता की भावना के

बीच **'लार्ड एल्गिन'** (द्वितीय) के बाद **'लार्ड कर्जन'** भारत के वायसराय होकर आए। वह अपने पूर्ववर्ती लार्ड लैंसडाउन और लार्ड एल्गिन (द्वितीय) से भी अधिक अनुदारवादी, अदूरदर्शी और भारत विरोधी था। वह भारतीयों को बहुत ही हेय नजर से देखते तथा उनके प्रति उनका दृष्टिकोण एवं व्यवहार बहुत ही अविश्वासपूर्ण और अपमानजनक था। यही कारण था कि वह उच्च पदों पर भारतीयों की नियुक्ति के घोर विरोधी थे। उनकी यह दुर्भावनापूर्ण मान्यता थी कि असल में भारतीयों की कोई आस्था नहीं तथा उनके नैतिक आचरण में उसके स्थान पर मक्कारी और दांवपेंच का प्राबल्य होता है। इतना ही नहीं, वह उन्हें मूर्ख और असभ्य और जंगली भी मानते थे। इस पूर्वाग्रह तथा भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों (उदारवादी गतिविधियों तक को) और राष्ट्रीय चेतना कुचल देने के संकल्प के साथ उन्होंने वायसराय का पदभार ग्रहण किया। शासन की बागडोर सम्भालते ही उन्होंने अपनी भारत विरोधी राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक नीतियों के माध्यम से भारतीयों पर अपना दमनचक्र शुरू किया जो ब्रिटिश साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। **गोखले जी** के अनुसार उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के लिए वही किया जो औरंगजेब ने मुगल साम्राज्य के लिए किया। उनके द्वारा 1905 ई. में किया गया बंगाल विभाजन उनके दमनचक्र का ही एक भाग था।

राष्ट्रीयता की भावना कुचल देने हेतु उन्होंने भारत केन्द्रीकरण, समाचारपत्रों की स्वतंत्रता के हनन और अन्य दमनकारी नीतियों के साथ-साथ हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालने और उनमें कटुता और वैमनस्यता की भावना उत्पन्न करने की नीति का भी अवलम्बन किया। इसके अन्तर्गत ही उन्होंने 1905 ई. में बंगाल विभाजन जैसा मूर्खतापूर्ण काम किया जिसका ब्रिटिश साम्राज्य पर घातक प्रभाव पड़ा तथा जिसने भारत में उग्रराष्ट्रीयता की भावना को प्रबल बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनके इस मूर्खता एवं अदूरदर्शितापूर्ण कार्य से न केवल बंगाल बल्कि पूरे भारत में असंतोष की प्रबल लहर दौड़ गई। इसके विरोध में अकेले बंगाल में एक हजार सभाएं हुईं। बंगाल विभाजन की तिथि 16 अक्टूबर, 1905 ई. को सारे देश में राष्ट्रीय शोक दिवस मनाया गया।

विभाजन के पूर्व बंगाल (Ante-partition Bengal) : हम बंगाल विभाजन की सरकारी उद्देश्यों और उसके परिणामों की समीक्षा करें बल्कि विभाजन पूर्व के बंगाल के स्वरूप पर प्रकाश डाल लेना चाहिए। उस समय बंगाल में केवल बंगलाभाषी ही नहीं बल्कि आज के बिहार में उड़ीसा के क्षेत्र भी सम्मिलित थे। शासन और प्रशासन की दृष्टि से वह बहुत ही बड़ा प्रान्त था, तत्कालीन चटगांव, ढाका और मैमनसिंह उसके मुस्लिम बहुल क्षेत्र थे। राष्ट्रीय चेतना की दृष्टि से यह प्रान्त बहुत ही जाग्रत था। वायसराय होकर आते ही लार्ड कर्जन ने इसमें राष्ट्रीय चेतना एवं एकता की भावना दबा देने का निर्णय किया। इसके लिए उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों को अलग कर देने और उनमें कटुता की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से बंगाल विभाजन की योजना बनायी जो 16 अक्टूबर को कार्यान्वित की गई।

विभाजन के उद्देश्य (Objectives Lying Behind Partition) : यों तो प्रत्यक्ष रूप से लार्ड कर्जन ने बंटवारे की घोषणा की कि सुशासन एवं सुव्यवस्था की स्थापना ही बंगाल के बंटवारे का उद्देश्य है किन्तु उनकी यह घोषणा धूर्तता और दुर्भावना से भरी थी। यदि सचमुच यही उसका लक्ष्य होता तो उन्होंने चटगांव, ढाका और मैमनसिंह जैसे मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को असम में मिलाने के बजाय बिहार और उड़ीसा को बंगाल से अलग करने की कार्रवाही की होती। उस समय चटगांव और ढाका में मुसलमानों की सभाओं में उनके द्वारा किए गए भाषण से भी यह बात साफ हो जाती है कि सुशासन नहीं बल्कि राष्ट्रीय चेतना कुचलने के लिए हिन्दू-मुसलमानों को अलग करना उनका लक्ष्य था। जहां तक बंगाल विभाजन के उद्देश्यों का प्रश्न है, हम उन्हें दो भागों में बांट सकते हैं—(1) प्रत्यक्ष अथवा घोषित (2) अप्रत्यक्ष तथा अघोषित।

प्रत्यक्ष अथवा घोषित उद्देश्य (Tengible or Declared Objectives) : उस समय का बंगाल प्रान्त क्षेत्रफल और जनसंख्या की दृष्टि से बहुत बड़ा था। उसमें आज के पश्चिमी बंगाल (बंगाल) और पूर्वी बंगाल (बंग्लादेश) सहित बिहार और उड़ीसा के क्षेत्र भी सम्मिलित थे। विस्तृत क्षेत्र एवं व्यापक जनसंख्या के कारण उसमें सुव्यवस्थित ढंग से शासन-संचालन में परेशानी अनुभव होना स्वाभाविक था। सुशासन और सुव्यवस्था को ही लार्ड कर्जन ने बंगाल विभाजन का प्रत्यक्ष लक्ष्य घोषित किया किन्तु विवेचना से यह बात स्पष्ट हो जाती

है कि उनकी यह घोषणा मूर्खता, आश्चर्यजनक और अपमानजनक थी। **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** ने इसे आश्चर्यचकित जनता पर बम गिरने की संज्ञा दी। उन्होंने इसे अपमान एवं उपहास तथा बंगलाभाषी जनता की बढ़ती हुई चेतना पर भीषण चोट कहा। **डॉ. जकारिया** ने भी इसकी कटु आलोचना करते हुए इसे नितान्त धूर्ततापूर्ण कहा। सारांश में हम यह कह सकते हैं कि घोषित उद्देश्य मात्र दिखावटी था क्योंकि यदि ऐसा न होता तो **लार्ड कर्जन** ने चटगांव डिवीजन में मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को ही केवल बंगाल से पृथक् न किया होता। यदि उन्होंने सुशासन की दृष्टि से यह पग उठाया होता तो उन्हें बिहार और उड़ीसा को बंगाल से अलग करना चाहिए था। यही उनके शासन और बंगाल की जनता के लिए उपयुक्त एवं न्यायसंगत होता।

अप्रत्यक्ष अथवा अघोषित लक्ष्य (Intengible or the Objectives Not Declared) : सच्चाई तो यह है कि **लार्ड कर्जन** ने सुशासन नहीं बल्कि एकाधिक अप्रत्यक्ष उद्देश्यों के लिए बंगाल विभाजन का कदम उठाया जिनकी उन्होंने प्रत्यक्ष रूप में घोषणा नहीं की। इसके पीछे दो अप्रत्यक्ष उद्देश्य थे—(1) हिन्दू-मुसलमानों में फूट एवं कटुता उत्पन्न करना (2) बंगाल की जनता की राष्ट्रीय चेतना कुचलना। लार्ड कर्जन अनुदारवादी और पूर्णतः भारत विरोधी थे। वह यहां किसी भी प्रकार राष्ट्रीय चेतना की जागृति सहन करने के लिए राजी नहीं थे। अपने पूर्ववर्ती **लार्ड लैंसडाउन और लार्ड एल्गिन (द्वितीय)** से भी आगे बढ़कर वह राष्ट्रीय चेतना को कुचल देने के लिए कृत संकल्प थे। अन्य अनुदारवादी अंग्रेज शासकों की तरह वह भी इस मत के थे कि हिन्दू-मुस्लिम एकता भंग किये बिना भारत में तेजी से बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना दबाई नहीं जा सकती है। हिन्दू-मुसलमानों की एकता भंग तथा उनमें कटुता उत्पन्न करने के लिए ही उन्होंने बंगाल के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को असम में मिलाकर मुस्लिम बहुल प्रान्त की स्थापना करने का प्रयत्न किया। इतना ही नहीं, उन्होंने मुसलमानों की सभाओं में साम्प्रदायिक भाषण देकर बंगाल विभाजन का औचित्य प्रतिपादित किया तथा उनके मन में हिन्दुओं के प्रति अविश्वास, घृणा एवं कटुता की भावना उत्पन्न की। **ए.सी. मजूमदार** के अनुसार उन्होंने मुसलमानों की सभाओं में स्पष्टतः कहा कि केवल प्रशासकीय सुविधा ही नहीं अपितु मुस्लिम प्रान्त बनाना भी बंगाल विभाजन का उद्देश्य है। उन्हें हिन्दुओं से पृथक् करने के लिए ही उन्होंने यह भी कहा कि मैं एक मुस्लिम प्रान्त बनाना चाहता हूँ। जहां इस्लाम के अनुयायियों का बोलबाला हो।

लार्ड कर्जन की नीति (Policy Adopted by Lord Curzon) : हिन्दू-मुसलमानों को अलग करने की उसकी नीति निरुद्देश्य नहीं थी। भारत विशेष रूप से बंगाल में तेजी से बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना को दबा देना तत्कालीन ब्रिटिश शासन की मुख्य नीति थी। ब्रिटिश शासक तो अब उदारवादियों की संवैधानिक कार्रवाइयाँ तक सहन करने को राजी नहीं थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में तेजी से पनप रही उग्रवादी प्रवृति को तो वे किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। भारत और भारतीयों के प्रति घृणा एवं कटुता की भावना रखने वाले अनुदारवादी लार्ड कर्जन राष्ट्रीय चेतना को कुचलकर ब्रिटिश शासन को सुदृढ करने के लक्ष्य से भी यहां वायसराय बनाकर भेजे गए थे। पदभार ग्रहण करते ही उन्होंने इस मुख्य उद्देश्य को पूरा करने की योजना बनानी प्रारम्भ कर दी। इसके लिए उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता को भंग करना सबसे जरूरी समझा और इसीलिए उन्होंने बंगाल को विभक्त कर मुस्लिम बहुल प्रान्त बनाने की योजना बनायी। सारांश में हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय चेतना को कुचल देने के लिए हिन्दू-मुसलमानों को पृथक् करने के लक्ष्य से लार्ड कर्जन ने सुशासन के नाम पर बंग-भंग की अपनी धूर्ततापूर्ण कार्रवाई की जो अंग्रेजी शासन के लिए चुनौती तथा राष्ट्रीय चेतना के लिए वरदान सिद्ध हुई।

बंगाल विभाजन की कार्रवाई और उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया (Actions Taken for Partition of Bengal and Anti-Response Thereof) : 16 अक्टूबर, 1905 को कर्जन ने अपनी इस योजना को मूर्त रूप दिया। चटगांव डिवीजन के दो बड़े जिले ढाका और मैमन सिंह को असम में मिलाकर पूर्वी बंगाल के नाम एक ऐसे मुस्लिम बहुल प्रान्त का निर्माण किया गया जिसमें खुद **लार्ड कर्जन** के अनुसार मुसलमानों को वह एकता प्राप्त होती जो उन्हें मुस्लिम बादशाहों एवं सूबेदारों के राज्य में कभी प्राप्त नहीं थी। इस कार्रवाई के विरुद्ध पूरे देश में के विरुद्ध पूरे देश में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। बंगाल में तो यह तीव्रतम थी। इस कार्रवाई के विरुद्ध पूरे देश में के विरुद्ध पूरे देश में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। बंगाल में तो यह तीव्रतम थी। इस कार्रवाई के विरुद्ध पूरे देश में तीव्र प्रतिक्रिया हुई। बंगाल में तो यह तीव्रतम थी।

इसे आश्चर्यचकित जनता पर बम गिरना कहा।
सर्वाधिक क्षुब्ध, रुष्ट और मर्माहत था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने इसे आश्चर्यचकित जनता पर बम गिरना कहा। उन्होंने इसे बंगलाभाषी जनता
उन्होंने कहा कि हमें अपमानित, हमारा उपहास तथा हमें धोखा दिया गया। उन्होंने इसे बंगलाभाषी जनता
के भविष्य के लिए संकट तथा उसकी बढ़ती हुई चेतना पर भीषण प्रहार की संज्ञा दी। उनका ये मर्मभेदी उद्गार
केवल उनका ही नहीं बल्कि पूरे बंगाल का था। यहां तक कि ब्रिटिश शासन को वरदान मानने वाले उदारवादियों
ने भी इसके विरुद्ध तीखी प्रतिक्रिया जाहिर की। उनके नेता गोखले जी ने कहा कि ऐसे शासन का उदाहरण
खोजने के लिए हमें औरंगजेब का इतिहास पढ़ना होगा।

इस विभाजन के विरुद्ध उभरे रोष के कारण बंगाल में जो तीव्र आन्दोलन शुरू हुआ, वह शीघ्र ही सारे देश मे फैल गया। चारों तरफ सभाओं, हड़तालों और प्रदर्शनों के आयोजन का सिलसिला प्रारंभ हो गया। अकेले बंगाल में एक हजार सभाएं हुई। 70 हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर कर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के पास प्रार्थना पत्र भेज इसका विरोध किया। 15 अक्टूबर, 1905 ई. को राष्ट्रीय शोक दिवस मनाया गया। भारतीयों की इन तीखी प्रतिक्रियाओं का ब्रिटिश शासन पर न तो कोई प्रभाव पड़ा और न इसका कोई नतीजा ही निकाला। लार्ड कर्जन ने तो इसके विरुद्ध चलाए जा रहे आन्दोलन की बनावटी और कुछ स्वार्थी तत्त्वों के दिमाग की उपज कहा। पूरे विरोध की उपेक्षा कर बंगाल विभाजन की योजना कार्यान्वित कर दी गई।

परिणाम (Consequences) : बंगाल विभाजन की कर्जन की कार्रवाई धूर्तता एवं मूर्खतापूर्ण तथा ब्रिटिश शासन के लिए घातक सिद्ध हुई। उन्होंने भारत में तेजी से बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना कुचल देने के लक्ष्य से यह कदम उठाया परन्तु अनुकूल नहीं बल्कि प्रतिकूल परिणाम निकला। इस कदम ने भारतीयों के मन में यह विश्वास दृढ कर दिया कि ब्रिटिश शासन उनके हितों का विरोधी है। इसने भारतीय राजनीति में उदारवादी राष्ट्रीय चेतना का वर्चस्व समाप्त करने तथा उग्रवादी आन्दोलन को सशक्त बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया। स्वयं उदारवादियों के नेता **गोखले जी** ने कहा कि बंगाल विभाजन के फलस्वरूप उत्पन्न जनरोष चिरस्मरणीय रहेगा। इसने उग्रवादी आन्दोलन को बल प्रदान किया जिससे राष्ट्रीय चेतना को नयी दिशा मिली। भारतीय जनता का मन संवैधानिक आन्दोलन से हट कर स्वदेशी और स्वराज्य प्राप्ति की तरफ मुड़ गया।

बंगाल विभाजन ने जहां राष्ट्रीय चेतना को एक नया मोड़ दिया, वहीं दूसरी तरफ उसने हिन्दू-मुसलमानों की एकता भंग एवं उनके बीच कटुता उत्पन्न करने की ब्रिटिश शासन, विशेष रूप से **लार्ड कर्जन** की योजना को सफल बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसने देश में विभाजन की नींव डाल दी।

सारांश में हम यही कह सकते हैं कि बंगाल विभाजन के परिणाम का एक पक्ष उज्ज्वल तथा दूसरा अन्धकारमय था। जहां एक ओर सभी प्रभावकारी चेतना की जागृति हुई, वहीं दूसरी ओर इससे हिन्दू-मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिकता की भावना का बीजारोपण भी हुआ।

बहिष्कार व स्वदेशी
(Boycott and Swadeshi)

इस प्रकार निष्क्रिय विरोध का अर्थ एक प्रकार से अंग्रेजी शासन के साथ असहयोग करना था। इसको उग्रवादियों ने–**स्वदेशी** तथा **बहिष्कार** दो रूपों में कार्य रूप देने के लिए इसमें निष्क्रिय विरोध का प्रयोग किया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि यह बहिष्कार का व्यापक रूप था।

बहिष्कार (Boycott)–सक्रिय प्रतिरोध की दो विधियों में से एक थी–बहिष्कार या बायकाट। बहिष्कार का अर्थ था विदेशी वस्तुओं, सरकारी नौकरियों, संस्थानों तथा उपाधियों का बहिष्कार करना। बहिष्कार रूपी अस्त्र प्रयोग करने के बारे में 1905 ई. में बंगाल के समाचार-पत्रों 'संजीवनी' तथा 'अमृत बाजार पत्रिका' में लिखा गया। तत्पश्चात् बंगभंग विरोधी आन्दोलन में उग्र राष्ट्रवादियों ने इस शस्त्र का खुले रूप से प्रयोग किया। उग्रवादियों का विचार था कि इसका सीधा असर अंग्रेजी सरकार पर पड़ेगा। **लाला लाजपत राय** कहा करते थे कि, **"दुकानदारों की जाति ब्रिटिश राष्ट्र को नैतिकता के ऊपर आश्रित तर्कों की अपेक्षा व्यापार में घाटा होने की बात अधिक प्रभावित कर सकती है।"** उन्होंने बहिष्कार आन्दोलन का महत्त्व बताते हुए कहा है कि **"बहिष्कार का अर्थ यह है कि.... मुख्य बात सरकार की प्रतिष्ठा है और बहिष्कार उस प्रतिष्ठा की जड़ पर प्रहार करता है....हम अपने मुँह सरकारी भवनों से जनता की झोपड़ियों की ओर मोड़ना चाहते हैं। हम जहाँ तक सरकार से निवेदन का संबंध है अपने मुँह बन्द करना चाहते हैं तथा अपने मुँह एक नये निवेदन के साथ अपनी जनता के सम्मुख खोलना चाहते हैं। यही बहिष्कार आन्दोलन का मनोविज्ञान है, यही उसकी नैतिकता है तथा यही उसका आध्यात्मिक महत्त्व है।"** अरविन्द घोष ने लिखा है कि, **"बहिष्कार का अन्तिम उद्देश्य भारत में ब्रिटिश प्रशासन को पंगु बना देना था। वह हर उस वस्तु का बहिष्कार करना चाहते थे जो कि ब्रिटिश हो।"** उग्रवादियों ने बहिष्कार का प्रयोग ब्रिटिश शासन के आर्थिक शोषण के विरुद्ध एक प्रबल शस्त्र के रूप में प्रयोग किया। इससे भारत में अंग्रेजों के हितों को बहुत बड़ी हानि पहुँची तथा भारतीय उद्योगपतियों को लाभ होने लगा जिससे वे लोग कांग्रेस की धन से सहायता करने लगे। बंगाल के विभाजन के पश्चात् कवियों तथा लेखकों ने भी स्वदेशी तथा बहिष्कार पर अनेक गीतों की रचना की। इससे प्रेरित होकर बड़ी संख्या में युवकों ने सरकारी शिक्षण संस्थाओं को छोड़ा, वकीलों ने वकालत करना छोड़ा तथा विदेशी वस्तुओं (वस्त्रों व अन्य पदार्थों) की होली जलाई गई, विदेशी शराब की दुकानों के सामने धरने दिए गए व 'स्वदेशी' स्टोर, शिक्षण संस्थाएँ आदि का गठन हुआ। इस प्रकार उग्रवादियों ने विदेशी शासन को आर्थिक रूप से हानि पहुँचाने तथा जनता में आत्मसम्मान व आत्म-विश्वास पैदा करने के लिए इस शस्त्र का बड़े अच्छे ढंग से प्रयोग किया। **बाल गंगाधर तिलक** ने कहा था कि, **"हमारे पास हथियार नहीं हैं तथा न ही हमें हथियारों की आवश्यकता है। बहिष्कार ही हमारा जबरदस्त राजनीतिक हथियार है।"**

स्वदेशी (Swadeshi)–उग्रवादियों ने सक्रिय विरोध के दूसरे भाग 'स्वदेशी' का भी बहिष्कार के साथ-साथ प्रचार किया। इसका तात्पर्य था विदेशी माल का बहिष्कार करके भारत में बने माल (स्वदेशी) का प्रयोग करना। उग्रवादियों का स्वदेशी रूपी अस्त्र प्रयोग करने का उद्देश्य था कि इससे भारतीयों को आर्थिक लाभ पहुँचेगा तथा भारतीय शिल्प एवं उद्योगों को पुनर्जीवित किया जा सकेगा जिससे आत्मनिर्भरता की भावना पैदा होगी तथा साथ-साथ अंग्रेजों को भारी हानि उठानी पड़ेगी। इस कार्यक्रम के तहत सरकारी न्यायालयों का विरोध करके पंचायतों द्वारा आपसी झगड़ों का निदान करना था। वहीं सरकारी शिक्षण संस्थानों के स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना करना व देशी सामान की दुकानें खोलना आदि शामिल था। **प्रो० सुमीत सरकार ने इसे ग्रामीण उत्थान कार्यक्रम बताया है।** लोकमान्य तिलक ने इस आन्दोलन की व्याख्या **'बहिष्कार का योग'** आत्मदण्ड के एक धार्मिक संस्कार के रूप में की। **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** के अनुसार, **"यह आध्यात्मिक रूप से एक संरक्षणवादी आन्दोलन था जिससे जनसमुदाय के लिए भौतिक समृद्धि के नए युग के आरम्भ होने की संभावना थी। स्वदेशी की अवधारणा आधुनिक व्यापार के विरुद्ध थी।"** स्वदेशी की भावना से प्रेरित होकर जे.आर.डी. टाटा ने जमशेदपुर में **टाटा लौह एण्ड इस्पात कारखाने** की स्थापना की। इस प्रकार अर्थशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों की मान्यता थी कि स्वदेशी तथा बहिष्कार एक गाड़ी के दो पहियों के सदृश पर स्पष्ट एक-दूसरे के पूरक हैं तथा एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्त्व स्वतः ही विलिन हो जाता है। इस प्रकार राष्ट्रवादियों ने स्वदेशी तथा बहिष्कार का उपयोग ब्रिटिश शासन पर दबाव डालने के लिए किया। **लाला लाजपत राय** ने स्वदेशी का महत्त्व बताते हुए कहा था कि, **"स्वदेशी आन्दोलन भारतीयों के आत्म-सम्मान, आत्म-विश्वास, आत्म-निर्भरता तथा पुरुत्व का परिचायक है।"** तिलक ने इस आन्दोलन का महत्त्व स्वावलम्बन, दृढ़ निश्चय तथा त्याग की भावना का विकास करना बतलाया था।

निश्चित रूप से स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलनों के माध्यम से उग्रवादियों ने भारतीयों में आत्म-विश्वास, आत्म-सम्मान व आत्म-निर्भरता की भावना जगाकर राष्ट्रीय आन्दोलन को और आगे बढ़ाया।

6 साम्प्रदायिक राजनीति का उदय (Emergence of Communal Politics)

❑ **भारत में सम्प्रदायवादी राजनीति के उदय का रेखांकन कीजिए।**
(Trace the emergence of communal politics in India.)

अथवा

❑ **हिंदू सांप्रदायिकता के विकास के क्या कारण थे? वर्णन करो।**
(What were the reasons for the growth of Hindu communalism? Describe.)

अथवा

❑ **भारत में सांप्रदायिक राजनीति के उदय में मुस्लिम लीग तथा हिंदू महासभा की भूमिका का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।**
(Critically examine the role of Muslim League and Hindu Mahasabha in the emergence of communal politics in India.)

अथवा

❑ **अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना का रेखांकन कीजिए।**
(Trace the establishment of All India Muslim League.)

अथवा

❑ **साम्प्रदायिकता का अर्थ स्पष्ट कीजिए व उससे जुड़ी विभिन्न अवधारणाओं का वर्णन कीजिए।**
(Explain the meaning of communalism, also discuss the various concepts related with this.)

अथवा

❑ **मुस्लिम लीग पर एक निबंध लिखिए।**
(Write an essay on Muslim League.)

अथवा

❑ **1906 से 1922 ई. तक साम्प्रदायिकता के विकास का विवरण दीजिए।**
(Explain the growth of communalism from 1906 to 1922 A.D.)

उत्तर : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में साम्प्रदायिकता एक प्रमुख समस्या के रूप में उभरी। राष्ट्रीयता तथा साम्प्रदायिकता एक-दूसरे की विरोधी विचारधाराएँ हैं जहाँ राष्ट्रीयता विभिन्न धर्मों, वर्गों एवं जातियों को जोड़ती है वहीं साम्प्रदायिकता इन शक्तियों को आपस में तोड़ती है। राष्ट्रीय आन्दोलन में साम्प्रदायिकता ने नकारात्मक भूमिका निभाई। 1857 की क्रांति के पश्चात् अंग्रेज प्रशासकों ने भारत में बढ़ती हुई राजनैतिक चेतना को कमजोर बनाने के लिए अपनी 'फूट डालो एवं राज करो' की नीति के अन्तर्गत मुस्लिम साम्प्रदायिकता को उभारा। 19वीं सदी के अन्त एवं 20वीं सदी के प्रारम्भ में जहाँ एक तरफ विभिन्न तत्त्वों ने मिलकर भारत में राष्ट्रीयता की जड़ों को विकसित किया वहीं दूसरी तरफ साम्प्रदायिकता ने राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर किया। बढ़ती हुई साम्प्रदायिकता ने ही अन्ततः देश को दो भागों—भारत एवं पाकिस्तान में बाँट दिया। आज भी हमारे देश के लिए साम्प्रदायिकता एक गम्भीर समस्या बनी हुई है। अतः साम्प्रदायिकता के उद्भव एवं विकास को समझना अति आवश्यक है।

साम्प्रदायिकता क्या है? (What is Communalism?)

सामान्यतः साम्प्रदायिकता का अर्थ दो सम्प्रदायों विशेष रूप से धार्मिक सम्प्रदायों के मध्य प्रतिद्वन्दिता तथा सशस्त्र संघर्ष माना जाता है। शब्दकोष में निहित अर्थ के अनुसार साम्प्रदायिकता का अर्थ साम्प्रदायिक संगठन अथवा समाज के सिद्धान्त हैं। शब्दकोष की व्याख्या साम्प्रदायिकता के व्यावहारिक अर्थ से बिल्कुल भिन्न है। साम्प्रदायिकता एक ऐसी धारणा है जिसके द्वारा समान धर्म वाले लोगों के लिए समान सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक हितों का निर्धारण करने का प्रयास किया जाता है। दूसरे शब्दों में साम्प्रदायिकता में धर्म समाज का आधार बनता है तथा समाज के विभाजन की आधारभूत इकाई तैयार करता है तथा अन्य सभी मानवीय हितों का भी प्रतिपादन करता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो एक साथ कई पहचान रखता है। उसकी पहचान उसके देश, क्षेत्र, लिंग, व्यवसाय, परिवार में उसके स्तर, धर्म, जाति के आधार पर होती है। साम्प्रदायिकता इन सभी तत्त्वों में से केवल धार्मिक पहचान को महत्त्व देने का प्रयास करता है। संक्षेप में सभी तत्त्वों को नजरअंदाज करके केवल धर्म को अनावश्यक रूप से महत्त्व देना सम्प्रदायवाद का प्रारम्भ है। साम्प्रदायिक तनाव एवं साम्प्रदायिक राजनीति दो अलग चीजें हैं। के.बी. कृष्ण के अनुसार, "साम्प्रदायिक तनाव एक अस्थायी समस्या है जो अचानक घटित होती है तथा इसकी अभिव्यक्ति हिंसा में होती है तथा जन-साधारण के निम्न वर्ग मुख्य रूप से इसमें शामिल होते हैं। जबकि साम्प्रदायिक राजनीति एक स्थायी समस्या है जिसमें मुख्य रूप से मध्यम वर्ग, जमींदार तथा नौकरशाही तत्त्व शामिल होते हैं।" प्रो. रजनी पाम दत्त ने साम्प्रदायिकता के उद्भव के बारे में लिखा है कि, "यह सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों की देन है। यह समस्या उन देशों में पैदा होती है जहाँ कोई प्रतिक्रियावादी सरकार ने जनता के आन्दोलन के खिलाफ अपने को बनाए रखने की कोशिश करती है।"

प्रो. विपिन चन्द्र ने साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक विचारधारा के तीन तत्त्व बताए हैं। उनके अनुसार ये तत्त्व हैं—

1. एक धर्म मानने वालों के हित समान होते हैं—इस आधार से धर्म पर आधारित सामाजिक, राजनीतिक समुदायों की भावना का जन्म होता है। वर्ग, जाति, क्षेत्र, राष्ट्र के स्थान पर धर्म पर आधारित समुदायों को ही बुनियादी इकाई मान लिया जाता है। ऐसा मान लिया जाता है कि धर्म ही सामाजिक, राजनीतिक जीवन का आधार है।

2. एक धर्म के मानने वालों के हित किसी अन्य धर्म के हितों से भिन्न होते हैं—यह साम्प्रदायिकता का दूसरा तत्त्व है। इसमें माना जाता है कि अलग-अलग धर्मों के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं आर्थिक हित अलग-अलग होते हैं। इस प्रकार की साम्प्रदायिकता को उदारवादी कहा गया है।

3. विभिन्न धर्मों के मानने वालों के हित एक-दूसरे के विरोधी हैं—प्रथम दो तत्त्वों को स्वीकार करने पर इस तत्त्व का आविर्भाव होता है। जब एक धर्म के लोग यह मानने लगते हैं कि उनके हित समान हैं तथा दूसरे धर्म से अलग है अर्थात् दोनों धर्मों के हित एक-दूसरे के विरोधी हैं तब संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है। इसको उग्रवादी या फासीवाद साम्प्रदायिकता कहा जाता है। सन् 1937 के बाद मुस्लिम लीग व हिन्दू महासभा तथा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ उग्रवादी साम्प्रदायिकता की तरफ बढ़ रहे थे।

साम्प्रदायिकता के ये तीनों दौर अलग-अलग समय पर आए परन्तु वे एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे व उनमें निरन्तरता भी बनी रही।

प्रो. विपिन चन्द्र ने साम्प्रदायिक यथार्थ (Reality) को समझने के लिए कुछ अन्य बातों की भी चर्चा की है, ये हैं—

1. साम्प्रदायिकता चीजों को गलत या अवैज्ञानिक दृष्टि से देखने की कोशिश थी।
2. यद्यपि साम्प्रदायिकता प्राचीन एवं मध्ययुगीन विचारधाराओं का इस्तेमाल जरूर करती है परन्तु यह अतीत में विद्यमान नहीं थी। यह एक आधुनिक विचारधारा और आधुनिक पद्धति थी।
3. साम्प्रदायिकता का उदय आधुनिक राजनीति के कारण हुआ। राष्ट्रीयता तथा समाजवाद की तरह

साम्प्रदायिक विचारधारा का उदय भी तभी हुआ जब जनता की भागीदारी, जनजागरण और जनमत के आधार पर चलने वाली राजनीति अपने पैर जमा चुकी थी। जवाहरलाल नेहरू ने 1936 में लिखा था कि, **"यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि भारत में साम्प्रदायिकता एक परवर्ती घटना है, जिसका जन्म हमारी आँखों के सामने ही हुआ है।"**

4. हिन्दू साम्प्रदायिकता, मुस्लिम साम्प्रदायिकता, ईसाई साम्प्रदायिकता, प्रोटेस्टेंट साम्प्रदायिकता, सिक्ख साम्प्रदायिकता, नस्लवाद आदि सभी प्रकार की साम्प्रदायिकता में समानता होती है। इसका विकास केवल भारत में ही नहीं हुआ अपितु पूरे विश्व में भी साम्प्रदायिकता का समान रूप से उद्भव हुआ।

साम्प्रदायिकता के उदय तथा विकास के कारण
(Causes of Rise and Growth of Communalism)

भारत में साम्प्रदायिकता के उद्भव के बारे में यूरोपियन इतिहासकारों एवं भारतीय इतिहासकारों ने अलग-अलग मत व्यक्त किए हैं। कूपलैंड ने लिखा था कि, **"ब्रिटेन ने न तो साम्प्रदायिकता की आग सुलगाई है तथा न ही इसे जलाए रखने का दानवी कार्य किया है।"** दूसरी तरफ **मेहता एवं पटवर्धन** ने इसे अंग्रेजों की देन कहा है। गाँधीजी के विचार सत्य के निकट प्रतीत होते हैं, **"भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या ब्रिटिश शासन की समकालिक है।"** कुछ विद्वानों ने मध्यकाल में साम्प्रदायिकता की जड़ें ढूँढ़ने का प्रयास किया है। इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों की मान्यता है कि भारत में धार्मिक मतभेद हमेशा से ही रहे हैं तथा समाज जैसी कोई व्यवस्था यहाँ नहीं रही। दूसरी तरफ इसका खण्डन करते हुए दूसरे विद्वानों की मान्यता है कि भारतीय समाज में ऐसे तत्त्व मौजूद रहे हैं जिन्होंने विभिन्न जातियों, धर्मों एवं सम्प्रदायों के लोगों को एकीकृत किया है तथा समन्वय भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है।

अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पूर्व मध्यकाल में हिन्दू-मुस्लिम गम्भीर झगड़ों की जानकारी नहीं मिलती। रियासतों के आपसी संघर्ष भी हुए परन्तु उन्हें कभी हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का रूप नहीं लिया। **प्रो० सुमीत सरकार** ने लिखा है कि हिन्दू शासक मुसलमानों को तथा मुस्लिम शासक हिन्दुओं को ऊँचे पदों पर नियुक्त करते रहें। अतः साम्प्रदायिकता को हिन्दू-मुस्लिम धर्मों का विरोध नहीं माना जा सकता। साम्प्रदायिकता की उत्पत्ति अंग्रेजी साम्राज्य के भारत में प्रवेश करने के साथ देखी जानी चाहिए जिसका भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। अतः **साम्प्रदायिक प्रश्न का आधार राजनैतिक अधिक तथा धार्मिक कम है।** अंग्रेजों ने हिन्दुओं व मुस्लिम सम्प्रदायों के बीच अपने आप को स्थापित करके एक साम्प्रदायिक त्रिभुज की स्थापना की। वे न हिन्दुओं के मित्र थे तथा न मुसलमानों के वे तो 'बाँटो और राज करो' में विश्वास करते थे। **लार्ड एल्फिन्स्टन** ने 1859 में लिखा था **"बाँटो और राज करो या प्राचीन रोमन कहावत थी और यह हमारी भी होनी चाहिए।"** जानस्ट्रेची ने भी कहा था—**"भारत में भिन्न धर्मों का एक साथ होना हमारी राजनैतिक स्थिति के लिए बहुत ही अच्छी बात है।"** इस प्रकार यह माना जा सकता है कि **भारत में साम्प्रदायिक भावना का जन्म उपनिवेशवाद के दबाव तथा उसके खिलाफ संघर्ष करने की जरूरत से हुए परिवर्तनों से हुआ।** इसकी उत्पत्ति के विभिन्न कारणों का विवरण इस प्रकार है—

1. आर्थिक दबाव (Economic Pressure)–ब्रिटिश साम्राज्यवाद के उदय के कारण उच्चवर्गीय मुसलमानों का जो सेना, प्रशासन एवं न्याय के बड़े पदों पर विराजमान थे पतन हो गया। 1793 ई. के स्थायी बन्दोबस्त एवं 1835 में अंग्रेजी के राजभाषा बनने के कारण भी मुसलमानों की शक्ति, सम्पत्ति एवं प्रभाव में कमी आयी। 19वीं सदी के प्रारम्भ में मुसलमानों में अंग्रेजी के प्रति घोर अविश्वास था क्योंकि इन लोगों ने उनकी शक्ति एवं सत्ता छीन ली थी। साम्राज्यवादी शासन के अन्तर्गत हुए आर्थिक विकास ने मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं को लाभ पहुँचाया। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में विभिन्न मध्यवर्गीय तत्त्वों के बीच सरकारी सेवाओं के लिए टकराव होने लगा तथा इससे साम्प्रदायिकता की शुरुआत हुई।

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् भारत में कृषि, उद्योग एवं व्यापार का तेजी से पतन हुआ जिससे रोजगार के अवसर समाप्त हो गए तथा बेकारी बढ़ने लगी। शिक्षित मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग तो विशेष रूप से प्रभावित हुआ क्योंकि उनके लिए तो कृषि ही सहारा था। **प्रो. विपिन चन्द्र** ने लिखा है कि, **"शिक्षित मध्यवर्ग**

के लोगों ने सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करने हेतु व्यक्तिगत गुणों के साथ-साथ भाई-भतीजावाद ने जाति, प्रान्त और धर्म जैसी सामूहिक पहचानों का सहारा लेने लगे। इस प्रकार औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के संकट ने मध्यवर्ग में दो प्रवृत्तियाँ पैदा कीं। अतः साम्प्रदायिकता का सवाल हर तरह से मध्यवर्ग का सवाल था तथा यह इसी वर्ग को आकर्षित करती थी। यही उसका सामाजिक आधार भी था।" इस प्रकार साम्प्रदायिकता भारत में विभिन्न समुदायों के बीच शैक्षिक, राजनैतिक एवं आर्थिक रूप से रोजगार के लिए संघर्ष थी।

2. 1857 की क्रांति का प्रभाव (The Impact of Revolt of 1857 A.D.)–साम्प्रदायिकता का आरम्भ 1857 ई. की क्रांति से माना जाता है। इस क्रांति में हिन्दुओं व मुसलमानों ने मिलकर ब्रिटिश शासन को समाप्त करने का पूरा प्रयास किया था। अंग्रेजों ने सोचा कि इसके लिए मुसलमान जिम्मेवार हैं क्योंकि उन्होंने भारत में सत्ता मुसलमानों से छीनी थी। कई घटनाओं ने इस सोच को मजबूती प्रदान की। जैसे दिल्ली में क्रांतिकारियों ने अकबर व औरंगजेब की परम्परा का अनुसरण करते हुए बहादुर शाह जफर को 21 तोपों की सलामी देकर भारत का सम्राट् घोषित किया था। अवध में क्रांति का नेतृत्व नवाब वाजिद अली शाह की बेगम हजरत महल व पुत्र बिजरिस कादिर के हाथों में था। यही कारण था कि क्रांति के दमन से अंग्रेजों के अत्याचारों का शिकार अधिकतर मुसलमान बने थे। ऐसी स्थिति में अंग्रेजों ने हिन्दुओं का पक्ष लेना शुरू कर दिया। लार्ड एलिनबरो ने कहा था **"मुसलमान हमारे शत्रु हैं। इसलिए हमारी सच्ची नीति हिन्दुओं से मेल रखने की होनी चाहिए।"**

3. मुसलमानों का पिछड़ापन (Backwardness among Muslims)–राजनीतिक सत्ता छीन जाने के पश्चात् मुसलमान सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भी पिछड़ गए। मुसलमानों का रूढ़िवादी, ब्रिटिश विरोधी तथा आधुनिक शिक्षा विरोधी होना भी उनके पिछड़ेपन का कारण बना। अंग्रेजों द्वारा हिन्दुओं के प्रति दिखाई गई सहानुभूति से हिन्दू शिक्षा, वाणिज्य तथा व्यापार एवं उद्योग के क्षेत्र में मुसलमानों से आगे निकल गए। बाद में सर सैय्यद अहमद खाँ, बदरुद्दीन तैयबजी आदि के प्रभावों से मुसलमानों ने आधुनिक शिक्षा ग्रहण की परन्तु हिन्दुओं, पारसियों व ईसाइयों की तुलना में उनकी संख्या कम रही। नवोदित मुस्लिम मध्यवर्ग ने देखा कि वे सरकारी नौकरियों में अन्य वर्गों से पीछे रह गए हैं तो उन्होंने सरकार से मिलकर अपने हितों की माँग आरम्भ कर दी। मुसलमानों ने अनुभव किया कि हिन्दुओं से अलग रहकर ही उनके राजनीतिक एवं आर्थिक हित सुरक्षित रह सकते हैं। डॉ० रघुवंशी के शब्दों में, **"अपनी पराजय तथा अपने गौरव के विनष्ट हो जाने से उत्पन्न निराशा तथा हिन्दुओं के राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ जाने के कारण मुसलमानों में साम्प्रदायिकता की भावना ने घर कर लिया।"**

4. अंग्रेजों की फूट डालो तथा शासन करो की नीति (British Policy of Divide and Rule)–अधिकांश इतिहासकारों ने भारत में साम्प्रदायिकता के विकास के लिए सरकार की साम्राज्यवादी नीति को जिम्मेवार माना है। जब अंग्रेजों ने अनुभव किया कि मुलसमानों से उन्हें कोई खतरा नहीं है तथा हिन्दू अधिक शिक्षित हैं व उनमें राष्ट्रीय चेतना भी अधिक है तो सरकार ने एक निश्चित योजनाबद्ध तरीके से हिन्दू व मुसलमानों में परस्पर फूट डालने वाली नीति को अपनाया तथा मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रखने का प्रयास किया। **एच.वी. हडसन** ने लिखा है, **"फूट डालना व राज्य करना तब तक सम्भव नहीं है जब तक शासित लोग फूट की बातों में आने को तैयार न हो।"** 1871 में अंग्रेज मुस्लिम मित्रता को बढ़ावा देने के लिए **सर विलियम हन्टर** ने एक पुस्तक **'भारतीय मुसलमान'** प्रकाशित की। 1870 के दशक में जब भारतीयों में चेतना आने लगी तो अंग्रेजों ने मुसलमानों का पक्ष लेना शुरू कर दिया। उन्हें रियायतें दी गईं। नौकरियाँ दी गईं व अनेक माँगें स्वीकार की गईं।

प्रो० विपिन चन्द्र ने लिखा है कि, **"औपनिवेशिक शासन ने साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल राष्ट्रीय आन्दोलन के विस्तार को रोकने, उसे कमजोर करने तथा भारतीय जनता को एक राष्ट्र के रूप में न उभरने देने के लिए किया। जैसे-जैसे उनकी पिछड़ों के उत्थान की गोरी जाति की जिम्मेवारी, जनकल्याण जैसी प्रतिष्ठा समाप्त होने लगी, हिन्दू-मुस्लिम भेद व बहुसंख्यकों के वर्चस्व तथा दमन से अल्पसंख्यकों की रक्षा का सिद्धान्त बढ़ा चढ़ाकर प्रतिपादित किया जाने लगा।"** साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने निम्न तरीके अपनाए—

1. 1857 में सरकार ने सिक्खों व गोरखों को अन्य वर्गों के विरुद्ध प्रयोग किया था। इस नीति को गंभीरता से लागू करते हुए सरकार ने 1857 के बाद सेना को ऊपर से नीचे तक जाति, सम्प्रदाय एवं क्षेत्र के आधार पर संगठित किया।
2. हिन्दुओं, मुसलमानों तथा सिक्खों को ऐसे अलग-अलग समुदायों का दर्जा दिया जिनकी सामाजिक, राजनीतिक पहचान समान न थी।
3. भारत को एक राष्ट्र न मानकर विभिन्न जातियों, भाषाओं, सम्प्रदायों का समुच्चय कहा।
4. साम्प्रदायिक अखबारों तथा व्यक्तियों के प्रति राष्ट्रीय समाचार-पत्रों एवं व्यक्तियों की तुलना में असाधारण सहनशीलता का रवैया अपनाया गया।
5. साम्प्रदायिक माँगों एवं संगठनों को प्रोत्साहित किया।
6. एक ओर मुसलमानों को कांग्रेस से दूर रखने का प्रयास किया, दूसरी ओर कांग्रेस के दावों को यह कहकर नकारा गया कि कांग्रेस मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं करती।
7. पृथक् निर्वाचन प्रणाली को मान्यता दी गई।

इस प्रकार अंग्रेजी सरकार की फूट डालो व राज करो की नीति के कारण ही मुख्य रूप से साम्प्रदायिकता का उद्‌भव हुआ।

5. उग्र राष्ट्रवादियों एवं क्रांतिकारियों द्वारा हिन्दू संस्कृति एवं धर्म से प्रेरणा (Inspiration of Extremists and Revolutionaries from Hindu culture and Religion)–जैसा कि हमने पूर्व के अध्यायों में पढ़ा उग्र राष्ट्रवादियों एवं क्रांतिकारियों ने नवजागरण लाने के लिए तथा नवयुवकों ने आत्म-विश्वास एवं आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत करने के लिए हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का प्रयोग किया। इस तथ्य ने साम्प्रदायिकता के विकास में काफी योगदान दिया। हिन्दू समाज-सुधारकों ने भी मध्यकाल के शासकों की बर्बरता पूर्ण कार्यों की आलोचना की एवं भारत के प्राचीन युग के गौरव को उजागर किया। इसका अनुसरण करते हुए मुसलमानों ने भी अपने गौरव और महानता को अरब में ढूँढ़ने का प्रयास किया।'शिवाजी हिन्दुओं के लिए प्रेरणा के स्रोत थे जिनका औरंगजेब से सीधा विरोध था जबकि मुसलमानों के लिए यह तथ्य एकदम विपरीत था। राणा प्रताप जैसे राजा हिन्दुओं के आदर्श थे किन्तु मुसलमानों के शत्रु तिलक द्वारा 'शिवाजी उत्सव' एवं 'गणेश उत्सव' का प्रचार, अरविन्द घोष की अर्द्ध रहस्यवादी धारणाएँ, क्रांतिकारियों द्वारा काली की पूजा, बंगभंग आन्दोलन से पहले गंगा स्नान आदि तथ्यों को मुसलमानों ने हिन्दूवाद की स्थापना का प्रयास जाना। अंग्रेजों तथा मुस्लिम साम्प्रदायिक ताकतों ने उग्रवादियों द्वारा हिन्दूवाद के प्रयोग को भारत में हिन्दू राज्य की स्थापना के प्रयत्न बताकर मुसलमानों को हिन्दुओं से अलग करने का प्रयास किया। 1882 में स्वामी दयानन्द द्वारा **गौरक्षणी सभा** की स्थापना के फलस्वरूप लाहौर, अम्बाला व फिरोजपुर में गोहत्या के विरुद्ध दंगे हो गए। इस प्रकार हिन्दू धार्मिक नेताओं एवं उग्र राष्ट्रवादियों के कार्यों से साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला।

6. भारतीय इतिहास की साम्प्रदायिक व्याख्या (Communal Interpretation of Indian History)–अंग्रेज इतिहासकारों ने इतिहास के अध्ययन में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अपनाया। अनेक अंग्रेज लेखकों ने भारतीय इतिहास को हिन्दू तथा मुस्लिम दृष्टिकोण से पढ़ने तथा लिखने का प्रयास किया तथा इसे हिन्दू काल व मुस्लिम काल के रूप में विभाजित किया। कविताओं, नाटकों, ऐतिहासिक उपन्यासों, कहानियों तथा समाचार-पत्रों तथा लोकप्रिय पत्रिकाओं तथा पर्चों का इस्तेमाल भी साम्प्रदायिक व्याख्याओं के लिए किया। सार्वजनिक मंचों से किए गए व्याख्यानों, कक्षा की पढ़ाई, पारिवारिक व निजी चर्चाओं तथा बातचीत के माध्यम से भी यह जहर फैलाया गया।

प्रो. विपिन चन्द्र ने भी लिखा है कि, **"पीढ़ियों से बल्कि आधुनिक स्कूल व्यवस्था की शुरुआत से पहले साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा तथा बाद में अन्य लेखकों द्वारा इतिहास की विकृत व्याख्याएँ पेश की गई। इसका इतना गहरा असर पड़ा कि कुछ कट्टर राष्ट्रवादियों ने इनमें से कुछ व्याख्याओं को स्वीकार कर लिया।"** इस बारे में गाँधीजी ने भी लिखा था कि, **"हमारे देश में साम्प्रदायिक सौहार्द तब तक स्थायी रूप से नहीं लाया जा सकता जब तक हमारे स्कूल कॉलेजों में इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों के जरिए इतिहास की बेहद विकृत व्याख्याएँ**

पढ़ाई जाती रहेगी।" इस प्रकार साम्राज्यवादी लेखकों द्वारा धर्म के आधार पर इतिहास के काल विभाजन ने साम्प्रदायिकता में बढ़ावा दिया।

7. सर सैय्यद अहमद खाँ द्वारा साम्प्रदायिक प्रचार (Communal Teachings of Sir Syed Ahmed Khan)–मुस्लिम साम्प्रदायिकता के विकास में सबसे अधिक योगदान सर सैय्यद अहमद खाँ ने दिया। दिल्ली के एक उच्च वर्गीय परिवार में जन्मे सर सैय्यद को अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् 1838 में अदालत में क्लर्क की नौकरी प्राप्त हुई। वे एक महान् शिक्षा शास्त्री एवं समाज-सुधारक थे। प्रारम्भ में वे राष्ट्रवादी थे तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास रखते थे। समाज-सुधारक के नाते वे भारतीयों के पिछड़ेपन को दूर करना चाहते थे। उनका विचार था कि भारतीय मुसलमानों के पिछड़ेपन का कारण रूढ़िवादिता एवं विचारों की संकीर्णता है तथा इन कमियों को शिक्षा के द्वारा दूर किया जा सकता है। इसी उद्देश्य के लिए उन्होंने **अलीगढ़ में मोहम्मडन एंग्लो ओरिएण्टल कॉलेज** की स्थापना की जो बाद में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित हुआ। 1857 ई. की क्रांति को विफल बनाने में उन्होंने कंपनी की सहायता की थी। अतः कंपनी ने खुश होकर उसे सब जज के पद पर नियुक्त कर दिया था। उसने अंग्रेजों को खुश करने एवं उनके मन से मुसलमानों के राजद्रोह का कंलक मिटाने के उद्देश्य से **'भारतीय विद्रोह के कारण'** नामक पुस्तक भी लिखी थी। सरकार ने उन्हें **सितारे हिन्द** की उपाधि प्रदान की थी।

उन्होंने अपने जीवन के दो उद्देश्य निर्धारित किए। प्रथम अंग्रेजों व मुसलमानों के संबंध ठीक करना व दूसरा मुसलमानों की शिक्षा का प्रचार करना। 1885 से पहले वे राष्ट्रवादी थे एवं हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर समर्थक थे। 1884 में पंजाब दौरे के अवसर पर उन्होंने कहा था, **"हिन्दू व मुसलमान भारत की दो आँखें हैं।"** केन्द्रीय विधानपरिषद् में भाषण देते हुए उन्होंने यहाँ तक कहा था कि, **"हिन्दू शब्द में हिन्दू व मुसलमान दोनों ही आ जाते हैं क्योंकि दोनों ही हिन्दुस्तान के निवासी हैं।"** परन्तु अलीगढ़ कॉलेज के प्राचार्य बैक की कूटनीति ने उन्हें साम्प्रदायिक बना दिया। उन्होंने सर सैय्यद को समझाया कि कांग्रेस में मुसलमानों का भविष्य आंग्ल मुसलमान सहयोग पर ही निर्भर है, अन्यथा भारतीय मुसलमान को हिन्दुओं की दया पर रहने के लिए विवश होना पड़ेगा। बैक के प्रभाव से सर सैय्यद ने कांग्रेस से मुसलमानों को दूर रखने के प्रयास शुरू कर दिए। उन्होंने कांग्रेस को **'हिन्दू संख्या'** कहा तथा इसका उद्देश्य मुसलमानों के विरुद्ध बताया। उन्होंने **लायल मोहम्मडन्स ऑफ इण्डिया** नामक प्रकाशन भी मुसलमानों की अंग्रेजों के प्रति वफादारी प्रकट करने के उद्देश्य से किया। 1887 में उन्होंने **'मुस्लिम शिक्षा सम्मेलन'** आयोजित किया तथा ऐसा सम्मेलन बाद में प्रतिवर्ष होने लगा। 1888 ई. में उन्होंने 'यूनाइटेड पेट्रियाटिक एसोसिएशन' (संयुक्त राजभक्त सभा) की स्थापना की। 1893 में उन्होंने **मोहम्मडन एंग्लो ओरियण्टल डिफेंस एसोसिएशन ऑफ नार्दन इण्डिया** की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य राजनीति में मुसलमानों का अलग अस्तित्त्व बनाना था। व मुसलमानों में राजनीतिक आन्दोलन फैलने से रोकना था।

इस प्रकार सर सैय्यद खाँ ने मुसलमानों के मन में अंग्रेजी के प्रति भक्तिभाव पैदा करने का प्रयास किया। मुसलमानों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए उन्हें अधिक सरकारी नौकरियाँ देने व रियायतें देने की माँग कीं। अंग्रेजों ने भी सर सैय्यद के विचारों को फैलाने में मदद की। **गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है कि "इस प्रकार सर सैय्यद ने भारतीय मुसलमानों में राजभक्ति की भावना भरने के लिए तथा साथ ही उनके लिए अंग्रेजों की कृपा प्राप्त करने के लिए यथा सम्भव प्रयास किए।"**

8. प्रिंसीपल बैक का योगदान (Role of Principal Beck)–सर सैय्यद के साम्प्रदायिक विचारों पर अलीगढ़ के मोहम्मडन एंग्लो ओरियन्टल (M.A.O.) कॉलेज के प्राचार्य बैक का अत्यधिक प्रभाव था। बैक ने छात्रों में साम्प्रदायिकता का जहर घोलने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने छात्रावासों में जाकर छात्रों को यह कहकर कांग्रेस से दूर करने का प्रयास किया कि कांग्रेस भारत में एक हिन्दू राज्य की स्थापना करना चाहती है। उन्होंने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहित करने के लिए **अलीगढ़ इन्स्टीट्यूट गजट** का प्रकाशन करवाया, **सैन्ट्रल मोहम्मडन नैशनल एसोसिएशन, यूनाइटेड इंडिया पैट्रियोटिक एसोसिएशन, मोहम्मडन लिटरेरी सोसाइटी** आदि संस्थाओं का निर्माण करवाया। इस प्रकार प्रिंसीपल बैक ने राष्ट्रीय संगठन के विरोध में मुसलमानों को

उभारने का सफल प्रयास किया। बैक के इस कार्य के कारण एक साम्राज्य निर्माता के रूप में उसकी पहचान बढ़ गई। 1899 में उसकी मृत्यु पर लन्दन टाइम्स ने लिखा, **"यह एक ऐसे अंग्रेज का देहावसान है जो एक दूर देश के साम्राज्य निर्माण में संलग्न था। उसकी मृत्यु अपने कर्तव्य पथ पर खड़े हुए एक सैनिक की भाँति हुई है।"**

9. वहाबी आन्दोलन (Wahabi Movement)–18वीं सदी में अरब में मुसलमानों के उत्थान के लिए एक आन्दोलन प्रारम्भ हुआ इसे **वहाबी आन्दोलन** कहते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य इस्लाम का शुद्धिकरण करके मुसलमानों में धार्मिक कट्टरता की भावना उत्पन्न करना था। धीरे-धीरे भारत में भी इस आन्दोलन का प्रचार हुआ। 1820 में **सईद अहमद बरेलवी** ने मक्का से लौटने पर इस आन्दोलन का सूत्रपात किया। अंग्रेजी शासन की नीतियों से उन दिनों मुसलमानों में भारी असंतोष व्याप्त था। इन नेताओं ने मजदूर वर्ग एवं दलित मुसलमानों को इकट्ठा किया। उन्होंने बंगाल में कई कृषक विद्रोह किए। अंग्रेजी सरकार वहाबी आन्दोलन को रोकने में विफल रही तथा वहाबियों ने इस प्रकार मुसलमानों की आर्थिक दशा सुधारने के प्रयत्न किए। इस प्रकार इस आन्दोलन के कारण मुसलमानों में अपने अधिकारों के प्रति जागृति पैदा हो गई।

10. राष्ट्रीय आन्दोलन की कमजोरियाँ (Weaknessess of National Movement)–साम्प्रदायिकता के बढ़ते हुए प्रवाह को राष्ट्रीय आन्दोलन रोक सकता था परन्तु एक राष्ट्रवादी विचारधारा एवं शक्ति के प्रतिनिधि के रूप में राष्ट्रीय कांग्रेस जनसाधारण में साम्प्रदायिकता के प्रचार को रोकने में असफल रही। यद्यपि कांग्रेस राष्ट्रवाद एवं धर्म-निरपेक्षता के प्रति कटिबद्ध थी तथा भारतीयों में एकता लाना चाहती थी, उसने साम्प्रदायिक शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष भी किया परन्तु असफल रही। इसके कुछ कारण थे। इनका विवरण इस प्रकार है–

1. राष्ट्रवादियों ने जाने-अनजाने में कुछ ऐसी भाषा, उपमा और लक्षणों का प्रयोग किया जो हिन्दू थे, जिनके कारण कांग्रेस को मुसलमानों का विश्वास प्राप्त करने एवं एक साथ लेकर चलने में बाधा हुई। जैसे एक आदर्श राज्य के लिए महात्मा गाँधी द्वारा 'रामराज्य' प्रतीक का इस्तेमाल। यद्यपि राष्ट्रवादियों ने इनका प्रयोग जनसाधारण को प्रेरित करने के लिए किया था परन्तु अंग्रेजों ने इनका प्रयोग साम्प्रदायिकता को उभारने के लिए किया।
2. कांग्रेस ने साम्प्रदायिकता के स्वरूप का पूरी तरह आँकलन नहीं किया तथा वह साम्प्रदायिकता से लड़ने के लिए एक समग्र नीति नहीं बन सकी।
3. कांग्रेस ने साम्प्रदायिक शक्तियों के साथ तुष्टिकरण की नीति अपनाई और उनके साथ समझौता किया परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक समूह को राजनैतिक प्रतिष्ठा मिलने लगी।
4. कुछ अवसरों पर कांग्रेस ने साम्प्रदायिक शक्तियों से समझौता न करने की भूल की जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन की गति भी अवरुद्ध हुई।

प्रो० विपिन चन्द्र ने लिखा है कि, "गाँधीजी, सी.आर. दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, एम.ए. अन्सारी, सरदार पटेल, सुभाष चन्द्र बोस जैसे नेताओं के हाथ में पहुँचकर धर्म-निरपेक्षता और सुदृढ़ हो गई तथा सच तो यह है कि हिन्दू रंगत साम्प्रदायिकता के उदय का उतना कारण नहीं था, जितना वह उसके विकास को रोकने में राष्ट्रवादियों की विफलता का कारण बनी। इसके कारण मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में ले आना कठिन हो गया। सरकार तथा मुस्लिम साम्प्रदायवादियों ने इस हिन्दूत्व का उपयोग मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रखने में किया।"

साम्प्रदायिक राजनीति का विकास, 1905–1922 ई.
(Growth of Communal Politics 1905-1922 A.D.)

1857 ई. की क्रांति से पहले भारत में साम्प्रदायिक विचारधारा विद्यमान नहीं थी। 1857 की क्रांति में हिन्दुओं व मुसलमानों ने मिलकर ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ने का प्रयास किया था। परन्तु 1857 के पश्चात् अंग्रेजों ने 'फूट डालो एवं राज करो' की नीति का पालन किया तथा हिन्दुओं को अपने पक्ष में करने का प्रयत्न किया। मुसलमानों की रूढ़िवादिता एवं आधुनिक शिक्षा के प्रति अरुचि के कारण आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में वे पिछड़ने लगे व उनकी हालत दयनीय होने लगी। वे पूर्णतः निराश एवं निरुत्साहित हो गए थे। अतः अंग्रेजों ने महसूस किया कि **वे इतने कमजोर हो गए थे कि अब विद्रोह के काबिल नहीं रह गए थे।** पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित हिन्दू मध्यवर्ग के उद्भव से जब राष्ट्रवादी आन्दोलन विकसित होने लगा तो उन्होंने इस खतरे से निपटने के लिए मुसलमानों को अपने पक्ष में करने (मुस्लिम मित्रता स्थापित करने) पर बल दिया। **विलियम हन्टर** ने **'दी इण्डियन मुसलमान'** नामक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें एंग्लो-मुस्लिम मित्रता की आवश्यकता पर बल दिया गया। मुसलमानों ने भी इस मित्रता का सकारात्मक उत्तर दिया। सर सैय्यद अहमद खाँ से मिलकर अंग्रेजों ने मुसलमानों के प्रति सहानुभूति तथा हिन्दुओं के प्रति विरोधी रुख अपनाया। 1870 के पश्चात् आंग्ल मुस्लिम मित्रता बढ़ने लगी व भारतीय राजनीति में 'साम्प्रदायिकता' उभरने लगी। कांग्रेस की स्थापना के बाद बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना को रोकने के लिए उन्होंने भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का जहर घोल दिया। उधर कुछ हिन्दू संगठनों (आर्यसमाज) ने गौ-रक्षा समिति बनाकर हिन्दू साम्प्रदायिकता को उभारा व इस प्रकार धीरे-धीरे मुसलमान राष्ट्रीय आन्दोलन से दूर हटने लगे। अन्ततः 20वीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता अपनी जड़ें जमाने लगीं। साम्प्रदायिक राजनीति के विकास का विवरण इस प्रकार है–

1. बंगाल का विभाजन 1905 ई. (Partition of Bengal 1905 A.D.)–भारत में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता की भावना को कुचलने के लिए लार्ड कर्जन ने 1905 में बंगाल को विभाजित कर दिया। यद्यपि इस विभाजन का उद्देश्य उसने प्रशासनिक कारण बताया था। बंगाल के विभाजन ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता की ज्वाला को और अधिक भड़काया। पूर्वी बंगाल (बांग्लादेश, असम) में मुसलमानों की संख्या अधिक थी तथा पश्चिमी बंगाल (बंगाल, बिहार, उड़ीसा) में हिन्दुओं की संख्या अधिक थी। लार्ड कर्जन ने पूर्वी बंगाल में जाकर प्रचार किया कि **"बंगाल विभाजन में मेरा उद्देश्य प्रशासकीय सुविधा भर देखना नहीं है मैं एक मुस्लिम प्रान्त बनाना चाहता हूँ जहाँ इस्लाम के अनुयायियों का बोल-बाला होगा। मुसलमान सुख से रह सकेंगे तथा समृद्धशाली बन सकेंगे। विभाजन से मुसलमानों को वह एकता प्राप्त होगी जो मुसलमान बादशाहों एवं सूबेदारों के राज के बाद उन्हें कभी नसीब नहीं हुई थी।"** यद्यपि प्रारम्भ में स्वदेशी आन्दोलन में कुछ मुस्लिम नेताओं ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। परन्तु अधिकांश मुस्लिम समुदाय राष्ट्रवाद की मुख्यधारा से अलग ही रहा। ढाका का नवाब **सलीम उल्ला खाँ** लार्ड कर्जन की बातों से बहक गया तथा धीरे-धीरे उसने मुसलमानों को विभाजन का समर्थक बना लिया। अलीगढ़ आन्दोलन भी उनका समर्थन करने लगा व इस प्रकार मुसलमानों में राजनीतिक चेतना फूटने लगी। दिसम्बर, 1906 ई. में आयोजित वार्षिक मुस्लिम शैक्षणिक अधिवेशन में बंगाल विभाजन का स्वागत तथा अनुमोदन किया गया व बहिष्कार आन्दोलन के विरोध में प्रस्ताव पास किए गए। इस प्रकार बंगाल के विभाजन ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन दिया।

2. साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व 1906 (Communal Representation 1906 A.D.)–भारत सचिव लार्ड मार्ले ने भारत में संवैधानिक सुधारों की एक शासन-प्रणाली के विस्तार संबंधी बातें कही गई थीं। इस घोषणा से मुसलमानों को कोई विशेष प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हुआ था। क्योंकि 1893-1907 के बीच केन्द्रीय विधानसभा में मुसलमानों को केवल 12 प्रतिशत स्थान मिले थे जबकि उनकी जनसंख्या 23 प्रतिशत थी। सरकारी नौकरियों में भी 75 रुपये या इससे अधिक वेतन पाने वाले मुसलमान कर्मचारियों की संख्या 213 तथा हिन्दुओं की 1427 थी। अतः अलीगढ़ कॉलेज के प्रिंसीपल आर्कबोल्ड ने मुसलमानों को वायसराय के सामने पेश होकर नए सुधारों में उचित स्थान प्राप्त करने एवं मुसलमानों के लिए विधानमण्डलों में आरक्षण की बात रखने के लिए प्रोत्साहित किया। कॉलेज के सेक्रटरी मोहसिन उल मुल्क ने 14 अगस्त, 1906 को आर्कबोल्ड को लिखे एक पत्र में सुधारों में मुसलमानों के पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए वायसराय को एक स्मृति-पत्र प्रस्तुत करने एवं प्रमुख मुसलमानों के एक शिष्टमण्डल द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करने की सलाह माँगी। 18 अगस्त को लार्ड मार्ले को लिखे एक पत्र में लार्ड मिन्टो ने मोहसिन उल मुल्क के पत्र का जिसमें मुसलमानों के लिए पृथक् चुनाव-प्रणाली की माँग की गई थी का उल्लेख किया। अतः 1 अक्टूबर, 1906 को आगा खाँ के नेतृत्व में मुसलमानों का एक 35 सदस्यों का शिष्टमण्डल शिमला में वायसराय से मिला। उन्होंने ब्रिटिश ताज के प्रति अपनी राजभक्ति की भावना व्यक्त करते हुए कुछ माँगें रखीं। इसमें मुसलमानों के लिए

पृथक् निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था, विधानमण्डलों में मुसलमानों को उनकी जनसंख्या के अनुसार स्थान दिया जाना, सरकारी नौकरियाँ देना, सरकारी विश्वविद्यालयों की स्थापना करना, गवर्नर-जनरल की कौंसिल में मुसलमानों को स्थान देना चाहते थे। लार्ड मिन्टो ने इन माँगों को सहर्ष स्वीकार कर लिया। साथ ही यह आश्वासन दिया कि सरकार मुसलमानों का आकलन उनकी सम्राट् के प्रति की गई सेवाओं के आधार पर करेगी न कि उनकी जनसंख्या के आधार पर। इस आश्वासन के अनुरूप 1909 के अधिनियम में ये सभी माँगें स्वीकार की गईं। एक सरकारी अधिकारी ने श्रीमती मिन्टो को पत्र लिखकर इसे भारत के इतिहास को प्रभावित करने वाली बड़ी घटना बताया। आर.एन. अग्रवाल ने लिखा है कि, **"यह कहना भी उचित न होगा कि 1906 में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को मानकर लार्ड मिन्टो ने पाकिस्तान की नींव रखी।"** इस प्रकार लार्ड मिन्टो भारत में **'मुस्लिम साम्प्रदायिकता'** का जनक बन गया।

3. मुस्लिम लीग की स्थापना (Foundation of Muslim League)–शिमला प्रतिनिधि मण्डल की सफलता के बाद मुस्लिम नेताओं का उत्साह बढ़ा तथा उन्होंने कांग्रेस के समान एक राजनैतिक संगठन बनाने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य के लिए अंग्रेजों के समर्थक ढाका के नवाब सलीम उल्ला खाँ ने **'मोहम्मडन एजूकेशनल कान्फ्रेंस'** के समय ढाका में मुसलमानों के एक अलग राजनीतिक संगठन बनाने का प्रस्ताव रखा जिसका उद्देश्य ब्रिटिश सरकार का समर्थन करना तथा मुसलमानों के स्वार्थों की रक्षा करना हो। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इसके द्वारा कांग्रेस के निरन्तर बढ़ते प्रभाव को रोकना तथा मुसलमान नौजवानों को राजनीति में प्रवेश करने के लिए आधार तैयार किया जाएगा। अतः नवाब **सलीम उल्ला खाँ** के निमंत्रण पर कुलीन तथा उच्च कोटि के मुसलमानों का एक सम्मेलन 30 दिसम्बर, 1906 ई. को ढाका में आयोजित हुआ। नवाब **वकारुल मुल्क** इसके अध्यक्ष थे। इस सम्मेलन में मुसलमानों की **अखिल भारतीय मुस्लिम लीग** नाम की एक राजनैतिक संस्था की स्थापना की गई। अगले वर्ष लीग का वार्षिक अधिवेशन कराची में बुलाया गया। इसमें लीग का संविधान बनाया गया तथा इसके निम्नलिखित उद्देश्य निश्चित किए गए–

1. भारतीय मुसलमानों में अंग्रेजी राज्य के प्रति वफादारी की भावना विकसित करना तथा ब्रिटिश सरकार की नीति के बारे में उनकी गलत धारणाओं को दूर करना।
2. भारतीय मुसलमानों के राजनैतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना और नम्रतापूर्वक उनकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को सरकार के सामने पेश करना।
3. उपर्युक्त उद्देश्यों को बिना कोई हानि पहुँचाए यथा सम्भव मुसलमानों व दूसरी जातियों के बीच मित्रता स्थापित करना।
4. पढ़े-लिखे मुसलमानों को जनता के जीवन में भाग लेने की प्रेरणा देना।

मुस्लिम लीग का इसके संविधान के अनुसार **प्रथम अधिवेशन 1908 में अमृतसर में हुआ।** सर सुलतान मुहम्मद शाह जो **आगा खाँ** के नाम से जाने जाते हैं को लीग का स्थायी प्रधान नियुक्त किया गया, परन्तु लीग के सिद्धान्तों में परिवर्तन किए जाने के कारण 1913 में उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया।

लीग के उद्देश्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक साम्प्रदायिक संस्था थी तथा अंग्रेजी सरकार के प्रति वफादार रहते हुए मुसलमानों के हितों की रक्षा करना इसका उद्देश्य था। इनका उद्देश्य सरकार के प्रति राजभक्ति में वृद्धि करना तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रवाह को रोकना था। अपने **प्रथम अधिवेशन** (अमृतसर 1908) में विधानमण्डलों में मुसलमानों को आबादी से अधिक स्थान दिए जाने की माँग की तथा प्रिवी कौंसिल में एक हिन्दू व एक मुसलमान शामिल करने की माँग की। **प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता सर अली इमाम** ने की थी। लीग ने मुसलमानों को सरकारी नौकरियों में भी अधिक स्थान देने की माँग की थी। 1909 एवं 1910 के अधिवेशनों में भी लीग ने इन्हीं माँगों को दोहराया। ये सभी माँगें कांग्रेस की माँगों से एक दम विपरीत थीं अतः इससे कुछ राष्ट्रवादी मुसलमानों को बहुत दुःख हुआ। **नवाब सादिक अली खाँ** ने लीग की नीति का विरोध करते हुए कहा था कि, **"मुसलमानों को यह शिक्षा देना कि उनके राजनीतिक हित हिन्दुओं से अलग है–अच्छा नहीं।"** मुसलमानों को अपने हितों के लिए भी यह सिद्धान्त अपनाना हानिकारक है।

4. हिन्दू साम्प्रदायिकता का विकास (Growth of Hindu Communalism)–न केवल मुसलमानों बल्कि हिन्दुओं में भी कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान थीं जिन्होंने साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया। 1870 के दशक में कुछ हिन्दू जमींदारों, साहूकारों तथा मध्यवर्गीय व्यापारियों ने मुसलमान विरोधी नारे लगाने शुरू कर दिए थे। हिन्दू धार्मिक आन्दोलनों की आक्रामक प्रवृत्ति महाराष्ट्र में दिखाई पड़ी जिनका नेतृत्व तिलक ने किया। यद्यपि वे स्वयं साम्प्रदायवादी नहीं थे परन्तु विदेशी सत्ता के विरुद्ध जनमत तैयार करने के लिए उन्होंने जिन राजनैतिक प्रतीकों का प्रयोग किया उससे हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष बढ़ा जैसे 'शिवाजी महोत्सव'। अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से तिलक ने मुस्लिम सुलतानों व मुगल शासकों के विरुद्ध शिवाजी के कारनामों को अतिरंजित रूप से पेश किया जो मुसलमानों की नाराजगी का कारण बना। दूसरे हिन्दुओं ने भी भारतीय इतिहास की उपनिवेशिक व्याख्या को पूरी तरह स्वीकार करते हुए 'मध्यकाल' में मुसलमानों के 'अत्याचारी शासन' तथा 'मुस्लिम दमन' से हिन्दुओं का बचाव करते थे अंग्रेजों की भूमिका को स्वीकार कर लिया। अतः हिन्दुओं ने भी मुसलमानों की तर्ज पर विधायिकाओं में साम्प्रदायिक आधार पर हिन्दू सीटों की माँग की। उत्तर प्रदेश व बिहार में उन्होंने 'हिन्दी' के प्रश्न को उठाया तथा हिन्दी को हिन्दुओं व उर्दू को मुसलमानों की भाषा बताकर इस प्रश्न को साम्प्रदायिक मोड़ दे दिया। उन्होंने उर्दू की बजाय न्यायालयों एवं अन्य शासकीय कार्यों में देवनागरी लिपि में हिन्दी भाषा के रूप में प्रयोग की माँग की। 1900 में लेफ्टिनेंट गवर्नर ने हिन्दी को न्यायालयों की वैकल्पिक भाषा स्वीकार कर लिया जो हिन्दू-मुस्लिम संबंधों में दूरी का एक और कारण बनी। स्वामी दयानन्द द्वारा गठित **'गौ-रक्षा समिति'** के गो-वध विरोधी प्रचार से भी मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति शंका की भावना उभरी। 1907 में पंजाब में **'हिन्दू महासभा'** की स्थापना हुई। लालचन्द एवं यू.एन. मुखर्जी जैसे प्रारम्भिक हिन्दू साम्प्रदायिक नेताओं ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित करने के कांग्रेस के प्रयासों की आलोचना की। उन्होंने कांग्रेस पर मुसलमानों को खुश करने का आरोप लगाया। 1917 में अखिल भारतीय हिन्दू महासभा का गठन हुआ। कांग्रेस की सदस्यता में मुसलमानों की घटती संख्या इस बात का सूचक है कि कांग्रेस साम्प्रदायिकता पर नियंत्रण स्थापित नहीं कर पाई।

5. साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की स्वीकृति (Acceptance of Communal Representation)–अंग्रेजी सरकार ने भी साम्प्रदायिक भावना को बढ़ावा देने में अपना सहयोग दिया। सरकार ने 1909 ई. के एक्ट में (मिन्टो मार्ले एक्ट) मुसलमानों को अनेक रियायतें देकर साम्प्रदायिकता के विष रूपी वृक्ष को बो दिया। 1906 ई. में शिमला प्रतिनिधिमण्डल को दिए गए आश्वासन को पूरा करते हुए सरकार ने 1909 के अधिनियम में मुसलमानों के लिए पृथक् चुनाव-प्रणाली की व्यवस्था की गई जिसके अनुसार मुसलमानों को केन्द्रीय तथा प्रान्तीय विधानमण्डलों में अपने प्रतिनिधि अलग से चुनने का अधिकार दिया गया। इसके अलावा ये सामान्य चुनाव में भी भाग ले सकते थे। अर्थात् मुसलमान उम्मीदवारों को वोट केवल मुसलमान मतदाता ही दे सकते थे। इस प्रकार अंग्रेजी सरकार ने चुनाव-प्रणाली को धार्मिक आधार पर बाँट दिया। इस प्रकार 1909 के अधिनियम ने हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच की दूरियाँ बढ़ाईं। भारत सचिव लार्ड मार्ले ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की आलोचना करते हुए कहा था कि, **"साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की चुनाव-प्रणाली को स्वीकृत करके हम राक्षस के दाँत बीज रहे हैं जिससे उत्पन्न होने वाली फसल बहुत कड़वी होगी।"** सरकार की इस नीति ने प्रत्येक जनवादी चुनाव-प्रणाली पर आघात किया। साम्प्रदायिक विरोधों को बढ़ावा देने का इससे अच्छा कोई साधन नहीं हो सकता था। इस अधिनियम की आलोचना करते हुए डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है कि, **"पाकिस्तान के वास्तविक संस्थापक जिन्ना अथवा रहीम तुल्ला नहीं वरन् लार्ड मिन्टो थे।"** गाँधीजी ने भी इस बारे में कहा कि, **"मिन्टो मार्ले सुधारों ने हमारा सर्वनाश कर दिया।"**

6. लीग की नीति में परिवर्तन (Change in the Policy of League)–1911 ई. तक मुस्लिम लीग साम्प्रदायिक नीति पर चलते हुए कांग्रेस का विरोध करती रही परन्तु यह तथ्य उल्लेखनीय है कि मुस्लिम लीग को सारे मुसलमानों का समर्थन कभी प्राप्त नहीं हुआ। राष्ट्रवादी मुसलमान सदैव कांग्रेस के समर्थक रहे। इन्होंने 1909 के अधिनियम की कड़ी आलोचना की। जिन्ना सहित अब्दुल कलाम आजाद, नवाब सैय्यद मुहम्मद मौलाना नौमानी, हसन इमाम, हकीम अजमल खाँ आदि मुस्लिम लीग के विरोधी थे।

1911 के बाद धीरे-धीरे लीग की नीतियों में परिवर्तन होने लगा तथा 1913 में लीग ने घोषणा की कि

उसका उद्देश्य **'साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य'** प्राप्त करना है। इस परिवर्तन के कुछ कारण निम्न थे–

(i) 1911 में सरकार ने बंगाल के विभाजन को रद्द कर दिया अतः मुस्लिम लीग उससे नाराज हो गई।

(ii) 1912-13 के बालकान युद्ध में इंग्लैण्ड की टर्की विरोधी नीति ने भी मुसलमानों के मन में अंग्रेजों के प्रति शंका उत्पन्न कर दी।

(iii) 1913 में जिन्ना ने लीग को संवैधानिक साधन अपनाने के लिए दबाव डाला।

(iv) प्रथम महायुद्ध में टर्की के विरुद्ध इंग्लैण्ड के रुख से मुस्लिमों का झुकाव कांग्रेस की ओर होने लगा। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने 'मुस्लिम लीग' को अपनी नीतियों में परिवर्तन के लिए बाध्य किया।

7. लखनऊ समझौता 1916 ई. (Lacknow Pact–1916 A.D.)–1913 ई. में जब लीग ने 'साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य' को अपना उद्देश्य घोषित किया तो आगा खाँ ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया व अब मुस्लिम लीग की बागडोर राष्ट्रवादी मुसलमानों के युवा वर्ग के नेताओं–मोहम्मद अली जिन्ना, मौलाना मोहम्मद अली, शौकत अली, अब्दुल कलाम आजाद, डॉ० अन्सारी, हकीम अजमल खाँ आदि के हाथों में आ गई। मौलाना मोहम्मद अली ने अंग्रेजी में **कामरेड** तथा उर्दू में **हमदर्द** नामक पत्र निकालकर लीग की नीतियों की कड़ी आलोचना की थी। मौलाना आजाद ने **अलहिलाल** पत्र निकालकर साम्राज्यवाद को भारतीयों के लिए अभिशाप बताया। इस प्रकार लीग धीरे-धीरे कांग्रेस के नजदीक आने लगी। कांग्रेस ने भी लीग के नीति परिवर्तन का स्वागत करते हुए 1913 के अधिवेशन में प्रस्ताव पास करके तुर्की के प्रति अपनी सद्भावना व्यक्त की। 1915 में कांग्रेस व लीग एक-दूसरे के काफी नजदीक आ गई। मुस्लिम लीग ने 1915 के बम्बई अधिवेशन में महात्मा गाँधी, सरोजनी नायडू, पंडित मदन मोहन मालवीय आदि ने लीग के सम्मेलन में भाग लिया व हिन्दू-मुस्लिम एकता के संबंध में जोशीले भाषण दिए। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग ने एक समिति बनाई। समिति ने एक योजना जिसे **'कांग्रेस लीग योजना'** कहते हैं, बनाई जिसे दोनों ने स्वीकार कर लिया। 1916 ई. में लखनऊ में कांग्रेस व मुस्लिम लीग की संयुक्त बैठक हुई जिसमें कांग्रेस लीग योजना को स्वीकार कर लिया गया। इसे **लखनऊ समझौता** कहा जाता है। इस समझौते में कांग्रेस ने पृथक् निर्वाचन मण्डल की बात को स्वीकार कर लिया तथा लीग ने भी स्वशासन को अपना उद्देश्य घोषित किया। पंजाब व बंगाल के प्रान्तीय विधानमण्डलों में मुसलमानों की सीटें 10.7 प्रतिशत व 25 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत व 50 प्रतिशत कर दीं। अर्थात् कांग्रेस ने मुसलमानों को खुश करने के लिए अनेक रियायतें दीं। यद्यपि इस समझौते से हिन्दू व मुस्लिम पुनः एकता के सूत्र में बँध गए, परन्तु कांग्रेस ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को स्वीकार कर लिया जो कांग्रेस के घोषित संकल्पों एवं सिद्धान्तों के विपरीत था। यद्यपि तत्कालिक परिस्थितियों में यह भारतीय राष्ट्रवाद की एक बहुत बड़ी जीत मानी गई परन्तु इस समझौते के दूरगामी परिणाम निकले। कांग्रेस ने एक प्रकार से पृथक् प्रतिनिधित्व की माँग को स्वीकार करके **मिन्टो मार्ले सुधारों को स्वीकार** कर लिया अर्थात् कांग्रेस ने सरकार को इस तर्क की पुष्टि कर दी कि भारत अलग-अलग धर्मों वाला देश है जिनके हित अलग-अलग हैं। अप्रत्यक्ष रूप से माना जा सकता है कि समझौते ने साम्प्रदायिकता की गति को और तेज कर दिया।

8. खिलाफत और असहयोग आन्दोलन (Khilafat and Non-cooperation Movement)–आगामी कुछ वर्षों तक दोनों दलों में एकता बनी रही तथा दोनों में मिलकर अनेक आन्दोलन चलाए। होमरूल आन्दोलन, जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड एवं रोल्ट एक्ट आन्दोलनों में मुस्लिम लीग ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् टर्की के भविष्य के प्रश्न को लेकर भारत के मुसलमानों में घोर असंतोष फैला क्योंकि टर्की युद्ध में हार गया था। युद्ध के उपरान्त इंग्लैण्ड ने टर्की के विरुद्ध जो कड़ी नीति अपनायी उससे भारतीय मुसलमान इंग्लैण्ड के विरोधी हो गए तथा उन्होंने 'खलीफा' की रक्षा (टर्की के सुलतान) के लिए एक आन्दोलन चलाया इसे 'खिलाफत आन्दोलन' कहते हैं। इस आन्दोलन का नेतृत्व सुप्रसिद्ध मुस्लिम नेता मौलाना मोहम्मद अली, मौलाना शौकत अली व अब्दुल कलाम आजाद, डॉ० अन्सारी ने किया। गाँधीजी ने इसे हिन्दू-मुस्लिम एकता का एक स्वर्ण अवसर माना तथा उन्होंने खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों का सहयोग करने का निश्चय किया। 24 नवम्बर, 1919 को गाँधीजी की अध्यक्षता में दिल्ली में **'अखिल भारतीय खिलाफत कांफ्रेंस'** का आयोजन किया गया। इसमें हिन्दुओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया व बहुत-से हिन्दू खिलाफत कमेटियों के सदस्य बन गए। इस दौरान गठित कमेटियों, जुलूसों, प्रदर्शनों आदि में कांग्रेस व हिन्दुओं के प्रतिनिधियों ने बढ़-चढ़कर भाग लिया। खिलाफत आन्दोलन के दौरान कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन में 'असहयोग का प्रस्ताव' पास हुआ तथा खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया गया। 1920-22 के बीच अनेक मुसलमानों ने असहयोग आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लिया। यह हिन्दू-मुस्लिम सहयोग का सबसे महत्त्वपूर्ण समय था। हर वर्ग में राजनैतिक चेतना का विकास हुआ। परन्तु 5 फरवरी, 1922 ई. को गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन को स्थगित कर दिया इससे मुसलमान बड़े निराश हुए। उन्होंने अनुभव किया कि कांग्रेस ने समझौता करके मुस्लिम लीग को नीचा दिखाया है। इससे देश के अनेक भागों में हिन्दू-मुस्लिम दंगे हो गए। इस प्रकार धर्म को राजनीति में लाने से राष्ट्रीय आन्दोलन पर बुरा प्रभाव पड़ा व साम्प्रदायिकता का जहर और अधिक फैल गया।

निष्कर्ष (Conclusion)–उपर्युक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि 1870 के दशक के बाद भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता का उद्भव हुआ। अंग्रेज शासकों ने अपनी 'फूट डालो एवं राज करो' की नीति के अन्तर्गत बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना को कमजोर करने के लिए मुसलमानों को अपनी तरफ मिलाकर उन्हें हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काना आरम्भ किया। मुसलमानों के सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में पिछड़ जाने के कारण भी उनमें हीनता की भावना का प्रवेश हुआ तथा अलगाव की भावना पनपी। प्रिंसीपल बैक एवं आर्कबोल्ड जैसे साम्राज्यवादी अंग्रेजों ने बड़ी सूझबूझ से सर सैय्यद अहमद खाँ जैसे मुसलमान को अपने पक्ष में करके मुसलमानों को प्रोत्साहित किया। लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन करके साम्प्रदायिक जहर को फैलाया परिणामस्वरूप नवाब सलीम उल्ला खाँ एवं बुहरान उल मुल्क जैसे नेताओं द्वारा बंगभंग का समर्थन एवं बहिष्कार का विरोध करके अलगाव का परिचय दिया। 1909 में साम्प्रदायिक चुनाव-प्रणाली को स्वीकार करके लार्ड मिन्टो ने साम्प्रदायिकता के विष वृक्ष को फिर सींचा। यद्यपि प्रथम विश्वयुद्ध के काल में मुस्लिम लीग पर राष्ट्रवादी युवा नेताओं का प्रभाव बढ़ जाने से हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित हुई जो दोनों ने लखनऊ समझौता के रूप में प्राप्त की। खिलाफत एवं असहयोग आन्दोलन में भी दोनों वर्गों ने एक-दूसरे का साथ दिया। परन्तु खिलाफत के प्रश्न ने धर्म का राजनीति से गठजोड़ करके साम्प्रदायिक विचारधारा को पुनः पनपने का मौका दे दिया।

❑ **मुस्लिम लीग तथा हिन्दू महासभा के उदय तथा विकास का वर्णन करो।**
(Describe the rise and growth of the Muslim League and Hindu Mahasabha.)

अथवा

❑ **हिन्दू महासभा के निर्माण का रेखांकन कीजिए।**
(Trace the formation of Hindu Mahasabha.)

मुस्लिम लीग
(Muslim League)

भारत में मुस्लिम साम्प्रदायिकता की महत्त्वपूर्ण परिणति 1906 ई. में **मुस्लिम लीग** की स्थापना हुई। **वायसराय लार्ड मिण्टो** द्वारा 1906 ई. में किए गए वैधानिक सुधार में अलग निर्वाचन की व्यवस्था से प्रोत्साहित होकर मुस्लिम नेताओं ने, जिनमें अधिकतर नवाब सम्पन्न व्यक्ति थे तथा जो भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के बने रहने में अपना हित समझते और मानते थे, मुसलमानों के हितों की रक्षा के लिए उनके लिए एक अखिल भारतीय संगठन की स्थापना का प्रयत्न शुरू किया। इस सिलसिले में ढाका के नवाब **सलीमुल्ला खाँ** ने **'ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग'** के रूप में एक राजनीतिक संगठन बनाने का प्रस्ताव किया तथा उसे मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने **नवाब वकारुल मुल्क** की अध्यक्षता में 30 दिसम्बर, 1906 ई. को मुस्लिम नेताओं की बैठक आयोजित की जिसमें विचार-विमर्श के पश्चात् **ऑल इण्डिया मुस्लिम लीग** की स्थापना की गई। **हिज हाइनेस सर आगा खाँ** इसके स्थायी अध्यक्ष बनाए गए। वे इस पद पर 1912 ई. तक बने रहे तथा दलीय रूपरेखा में कुछ परिवर्तन के मामले में मतभेद के कारण उन्होंने इससे 1913 ई. में त्याग-पत्र दे दिया। शुरू में इसका एक कामचलाऊ संविधान बनाया गया जिसकी 1908 ई. के मुस्लिम लीग के लखनऊ सम्मेलन में पुष्टि की गई। इसका नियमित संविधान 1908 ई. के अमृतसर सम्मेलन में स्वीकृत एवं पुष्ट किया गया। केन्द्रीय स्तर

- होमरूल आन्दोलन पर एक नोट लिखिए।
  (Write a note on Home Rule Movement.)

अथवा

- होमरूल आन्दोलन के लिए उत्तरदायी कारकों की विवेचना कीजिए।
  (Analyse the factors responsible for the Home Rule Movement.)

अथवा

- भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में होमरूल आन्दोलन के योगदान का परीक्षण कीजिए।
  (Evaluate the contribution of Home Rule Movement to India's National Movement.)

अथवा

- होमरूल आन्दोलन के विकास में ऐनी बेसेन्ट और तिलक के योगदान का वर्णन कीजिए।
  (Describe the contribution of Annie Besant and Tilak in the Growth of Home Rule Movement.)

अथवा

- होमरूल आन्दोलन के लिए जिम्मेदार तत्त्वों की विवेचना कीजिए।
  (Analyse the factors responsible for the Home Rule Movement.)

उत्तर : गृह शासन या स्वशासन को अंग्रेजी भाषा में होमरूल कहा जाता है। भारत में प्रथम विश्व युद्ध के दौरान इस आन्दोलन की शुरुआत श्रीमती ऐनी बेसेन्ट तथा बाल गंगाधर तिलक द्वारा की गई थी। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक 16 जून, 1914 को छः वर्ष बाद अंग्रेजों की माण्डले (बर्मा) जेल से रिहा किए गए। जेल से रिहा होते ही उन्होंने प्रथम विश्व में अंग्रेजों को सहयोग करने के विषय में 27 अगस्त, 1914 को स्पष्ट कहा था कि, "ऐसे संकट के समय प्रत्येक भारतीय का यह परम कर्तव्य है, चाहे वह बड़ा हो अथवा छोटा; धनवान हो अथवा निर्धन, कि वह ब्रिटिश सरकार को अपना समर्थन तथा सहायता अपनी अधिकतम योग्यता के अनुसार दे।" परंतु जल्द ही तिलक की यह शुरुआती प्रतिक्रिया बदल गई। उन्होंने अनुभव किया कि अंग्रेजी सरकार युद्ध में सहायता प्राप्त करके सिर्फ अपने स्वार्थों की पूर्ति करना चाहती है। वह भारत को कोई राजनीतिक सुविधा देने का इरादा नहीं रखती है।

उन्होंने अंग्रेजी सरकार को कहा कि वह भारतीय मदद के बदले स्वशासन देने का आश्वासन भारतीयों को दे। उन्होंने इस विषय में कहा कि, "हम ब्रिटिश सरकार से यह पूछना चाहते हैं कि वह भारतीयों के लिए वास्तव में न्याय करना चाहती है या अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमें केवल सैनिक ही बनाना चाहती है। हम भर्ती के लिए सरकार की पुकार को कहां तक सुनेंगे, यह हमारे प्रश्नों के उत्तर पर निर्भर करता है।" इस समय भारत में भी राष्ट्रीय राजनीति में कुछ बदलाव हो रहे थे। अरविन्द घोष जैसे क्रांतिकारी नेता राजनीति से संन्यास ले चुके थे तथा लाला लाजपतराय भी विदेश दौरे पर अमेरिका में थे। बंगाल विभाजन तथा 1909

के मार्ले-मिण्टो की पृथक् चुनाव पद्धति के कारण उदारवादी भी जनता से अपना विश्वास खो बैठे थे। महात्मा गांधी भी राजनीतिक देशभ्रमण पर थे। इसलिए राष्ट्रीय आन्दोलन अपनी धार तथा रफ्तार खो रहा था। इसलिए उदारवादी नेताओं का समूह तथा ऐनी बेसेन्ट तिलक से कांग्रेस में आने तथा नेतृत्व संभालने के लिए लगातार कह रहे थे। ऐसी परिस्थितियों में तिलक तथा ऐनी बेसेन्ट ने मिलकर 'होमरूल आन्दोलन' चलाने का निर्णय लिया। जिससे युद्ध का सामना कर रही अंग्रेजी सरकार पर कुछ दबाव डाला जा सके तथा राष्ट्रीय आन्दोलन की धार को तेज किया जा सके।

तिलक द्वारा होमरूल लीग की स्थापना :

28 अप्रैल, 1916 को मैसूर के बेलगाँव में होमरूल लीग की स्थापना की गई। इसका मुख्य उद्देश्य था कि यह भारत के लिए अंग्रेजी साम्राज्य के अन्तर्गत सभी संवैधानिक उपायों का प्रयोग स्वशासन को प्राप्त करने के लिए करेगी, स्वशासन की प्राप्ति के लिए भारत में जनता को संगठित तथा शिक्षित करेगी। तिलक जिस स्थान पर भी जाते थे, वहीं उनका भव्य स्वागत होता। अंग्रेजी सरकार भी उनकी गतिविधियों पर पैनी नजर रखे हुई थी। वह युद्ध के समय किसी तरह का राजनीतिक बवाल नहीं चाहती थी। तिलक को जनता से अपार सफलता मिलने के कुछ कारण थे जो इस प्रकार हैं–

1. मुसलमान अंग्रेजों से नाराज थे क्योंकि उनका धार्मिक नेता कमाल पाशा (टर्की का शासक, जो संसार के सभी मुसलमानों का धार्मिक मुखिया था) प्रथम विश्व युद्ध में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। इसलिए मुसलमान अंग्रेज विरोधी हर गतिविधि पर तिलक का समर्थन कर रहे थे।
2. क्रांतिकारी सोच वाले युवा उदारवादियों की नकारात्मक राजनीति से तंग आ चुके थे। वे तिलक की इस बात का समर्थन कर रहे थे कि स्वशासन की शर्त पर ही युद्ध में अंग्रेजों की सहायता की जा सकती है। जबकि उदारवादी अंग्रेजों को बिना शर्त समर्थन देने की अपील कर रहे थे।
3. कांग्रेस की युवा फौज भी तिलक में ही अपने स्वतन्त्र देश का भविष्य देखने लगी थी। इस शक्ति ने तिलक को वापस कांग्रेस में लाने के लिए उनकी बातों का खुलकर समर्थन किया था। वे अब राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर तिलक को देना चाहते थे।

होमरूल आन्दोलन
(Home Rule Movement)

होमरूल आन्दोलन की शुरुआत का श्रेय श्रीमती ऐनी बेसेन्ट तथा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को प्राप्त है। ऐनी बेसेन्ट मूल रूप से एक आयरिश महिला थीं तथा 1893 ई. से ही वे भारत में रह रही थीं। 1913 ई. में वे जब आयरलैंड गईं तो वहां की होमरूल लीग ने उनको सुझाव दिया कि भारत में भी इसी प्रकार का आन्दोलन उनके द्वारा शुरू किया जाना चाहिए।

ऐनी बेसेन्ट थियोसोफिकल सोसायटी की सबसे बड़ी कार्यकर्ता थीं। वे भारत की सभ्यता तथा संस्कृति को दिल से चाहती थी इसलिए वह सदा के लिए भारत में ही बस गई थीं। वे भारत को किसी भी तरह से खुशहाल देखना चाहती थीं। वे अंग्रेजों की इस बात को स्वीकार करने को तैयार नहीं थीं कि भारतीयों को शासन चलाने का अभी ज्ञान नहीं है। वे भारत को उसी तरह स्वराज्य दिलाना चाहती थीं जैसा ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों में था। उनका सोचना था कि एक पराधीन राष्ट्र की अपेक्षा एक स्वतन्त्र भारत अंग्रेजों के लिए इस युद्ध में अधिक लाभदायक हो सकता है। वे अपने-आपको टॉम-टॉम कहती थीं जिसका उद्देश्य सोते हुए हिन्दुस्तानियों को राष्ट्रीय संग्राम के लिए जगाना था। उनका कहना था कि बुद्धि और दूरदर्शिता का यह तकाजा है कि अंग्रेज भारतीयों को होमरूल देकर शांत कर दें।

गठन : कांग्रेस के दिसम्बर, 1915 के अधिवेशन में ऐनी बेसेन्ट ने तिलक तथा उनके सहयोगियों को कांग्रेस में शामिल कराने में सफलता प्राप्त कर ली थी। इस समय को सही समझते हुए उन्होंने कांग्रेस के सामने होमरूल का प्रस्ताव रखा परंतु उन्हें सफलता न मिल सकी। इसके साथ ऐनी बेसेन्ट ने घोषणा कर दी कि यदि उन्हें सितम्बर, 1916 तक स्वीकृति नहीं मिली तो वे स्वयं अपना संगठन स्थापित करके इस आन्दोलन को चलाने के लिए विवश होंगी। लोकमान्य तिलक पहले ही होमरूल लीग की स्थापना मैसूर के बेलगांव में

कर चुके थे। इससे ऐनी बेसेन्ट तथा सहयोगियों का हौंसला बढ़ा तथा श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने भी सितम्बर, 1916 में मद्रास में होमरूल लीग की स्थापना की घोषणा कर दी। इस लीग का अध्यक्ष मि. जोजफ को तथा मंत्री श्री एन.सी. केलकर को बनाया गया। तिलक तथा ऐनी बेसेन्ट ने होमरूल आन्दोलन के प्रचार के लिए अपने-अपने क्षेत्र बांट लिए। कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रान्त तथा बरार के प्रदेशों की जिम्मेदारी तिलक को सौंपी गई तथा शेष क्षेत्र ऐनी बेसेन्ट के अधीन रखा गया।

उद्देश्य : डॉक्टर जकारिया के अनुसार, "उनकी योजना उग्रवादी राष्ट्रीय व्यक्तियों को क्रांतिकारियों के साथ इकट्ठा होने से रोकने की थी। वे भारतीयों को ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर स्वराज्य दिलाकर संतुष्ट रखना चाहती थीं और वे कांग्रेस के उग्रवादियों को उदारवादियों के साथ दोबारा लाना चाहती थीं।" जकारिया के विचार होमरूल आन्दोलन तथा श्रीमती ऐनी बेसेन्ट को लेकर थे। होमरूल के कुछ उद्देश्य अध्ययन से स्पष्ट होते हैं जिनका वर्णन निम्न है–

1. श्रीमती ऐनी बेसेन्ट प्रथम महायुद्ध के समय अंग्रेजों को तंग नहीं करना चाहती थी। इसलिए उन्होंने एक शांतिप्रिय आन्दोलन चलाया था।
2. कांग्रेस इस समय नेतृत्वहीन दिशा में थी। राष्ट्रवादियों का झुकाव क्रांतिकारियों की ओर बढ़ रहा था। इसलिए वे राष्ट्रवादियों को पुनः कांग्रेस में वापस लाना चाहती थीं।
3. वह दिल से भारत से प्रेम करती थी इसलिए वे अपने इस आन्दोलन के माध्यम से भारतीय जनता को राजनीतिक रूप से जागरूक करना चाहती थी।
4. उन्होंने स्वयं कहा था कि यह आन्दोलन अंग्रेजों की भलाई के लिए ही है क्योंकि भारतीयों को स्वशासन देकर काफी समय तक खुश रखा जा सकता था।

विकास : होमरूल आन्दोलन के प्रचार के लिए बाल गंगाधर तिलक ने पूरा जोर लगा दिया तथा उन्होंने सारे भारत में घूमकर इस आन्दोलन का प्रचार किया। उनके प्रभावशाली भाषणों से प्रभावित होकर हजारों युवा इस लीग से जुड़ने लगे। तिलक ने होमरूल के प्रचार के लिए प्रेस का जमकर इस्तेमाल किया। उन्होंने अखबारों (6 मराठी, 2 अंग्रेजी) के माध्यम से अपनी बात को आम जनता तक पहुंचाया। लगभग 47000 प्रतियां जनता के बीच बांटी गईं। मध्य महाराष्ट्र, बम्बई, कर्नाटक, मध्य प्रान्त में भी होमरूल की शाखाएं स्थापित की। तिलक की बढ़ती लोकप्रियता को देखकर अंग्रेजी सरकार भी सावधान हो गई। तिलक पर फिर से मुकदमा बनाया गया। मोहम्मद अली जिन्ना तथा उनके सहयोगियों ने उनका यह मुकदमा लड़ा। उच्च न्यायालय में तिलक को निर्दोष घोषित किया गया जिससे तिलक की लोकप्रियता और भी ज्यादा बढ़ गई। तिलक तथा उनके सहयोगियों ने होमरूल लीग की सदस्य संख्या को 14000 तक पहुंचा दिया था।

दूसरी तरफ ऐनी बेसेन्ट ने गांवों से लेकर नगरों तक होमरूल लीग की शाखाओं का जाल बिछा दिया था। उन्होंने लगभग 200 शाखाओं को स्थापित किया। होमरूल आन्दोलन का नेतृत्व स्वयं ऐनी बेसेन्ट के हाथों में था तथा वह दिन रात इसके प्रचार के लिए कार्य करती थीं। वे **न्यू इंडिया** नामक समाचार पत्र के माध्यम से अपनी बातों को अपने सदस्यों तक पहुंचाती थीं। उनकी लीग के सदस्यों में जवाहरलाल नेहरू, बी. चक्रवर्ती और जे. बनर्जी जैसे लोग भी शामिल थे। उनके दूसरे अखबार **कॉमन वील** ने इस आन्दोलन को लोकप्रिय बनाने में जमकर सहयोग किया। तिलक और ऐनी बेसेन्ट ने मिलकर होमरूल आन्दोलनों को गांवों की गलियों तक पहुंचा दिया था। 20 अगस्त, 1917 में माण्टेग्यू ने घोषणा की कि, "ब्रिटिश सरकार की नीति, जिससे भारत सरकार पूर्ण रूप से सहमत है, यह है कि प्रशासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों के सहयोग को बढ़ाए तथा स्वशासन करने वाली संस्थाओं का क्रमिक विकास इस दृष्टि से करे कि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग रहते हुए उत्तरदायी शासन की प्रगतिपूर्ण प्राप्ति हो जाए।" इस घोषणा के समय श्रीमती ऐनी बेसेन्ट जेल में थीं उन्हें अब रिहा कर दिया गया। बेसेन्ट ने उपरोक्त घोषणा के आधार पर आन्दोलन बंद कर दिया। 1917 ई. में उनकी लोकप्रियता के कारण उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया।

महत्त्व : भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के इतिहास में इस आन्दोलन के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता है। इसके महत्त्व को स्पष्ट करने वाले तथ्यों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. तिलक और ऐनी बेसेन्ट ने ऐसे समय में यह आन्दोलन चलाया था जब कांग्रेस मृतप्राय थी। कांग्रेस जनता से विश्वास खो रही थी। उसके पास अगुवाई करने वाला कोई नेता नहीं था।
2. नरम दल और गरम दल को एक करना श्रीमती ऐनी बेसेन्ट की महत्त्वपूर्ण सफलता थी। कांग्रेस एक बार फिर से एकजुट होकर अंग्रेजों के विरुद्ध खड़ी हुई।
3. होमरूल आन्दोलन के माध्यम से पहली बार भारत में स्वशासन की गूंज गांवों तक सुनाई देने लगी थी। गांव के लोगों को राष्ट्रीय राजनीति से जोड़ने का कार्य इसी आन्दोलन ने किया था।
4. सरकार इस आन्दोलन की लोकप्रियता तथा सफलता से इतनी भयभीत हो गई थी कि उसने विशाल स्तर पर गिरफ्तारियां शुरू कर दी थीं। इसने इस आन्दोलन को और भी ज्यादा लोकप्रिय बना दिया। लोग बन्दियों की रिहाई के लिए सड़कों पर आकर विरोध जताने लगे।
5. इस आन्दोलन से प्रभावित होकर अमेरिका और इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञों ने भी भारत में स्वशासन की मांग का समर्थन किया।
6. गांधी जी को जन आन्दोलन चलाने तथा उसे सफल करने की प्रेरणा इसी आन्दोलन से मिली थी। पहले जन-आन्दोलन का श्रेय हम होमरूल आन्दोलन को ही दे सकते हैं।
7. हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के लिए जो लखनऊ समझौता 1916 में किया गया, उसमें भी ऐनी बेसेन्ट की भूमिका काफी सराहनीय थी।

निष्कर्ष (Conclusion) : भारत में स्वराज्य की लहर को जुबान-जुबान तक पहुंचाने का श्रेय होमरूल आन्दोलन को प्राप्त है। तिलक का कथन 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है, इसे मैं लेकर रहूंगा।" को युवा लोगों ने उस समय अपना आदर्श वाक्य बना लिया था। इस आन्दोलन की लोकप्रियता के कारण ही 20 अगस्त, 1917 को माण्टेग्यू को घोषणा करनी पड़ी, जिसमें स्वशासन की जरूरत को स्वीकारा गया।

❑ लखनऊ समझौता या कांग्रेस लीग समझौता 1916 ई. की विवेचना कीजिए। (Describe the Lucknow Pact or Congress-League Settlement in 1916 A.D.)

उत्तर : ब्रिटिश शासन की नीतियों तथा मुस्लिम लीग में प्रगतिशील और राष्ट्रवादी मुस्लिम युवकों के बढ़ते प्रभाव के कारण उसके दृष्टिकोणों और उसकी नीतियों में जो क्रान्तिकारी बदलाव हुआ, उसने उसे तथा कांग्रेस को नजदीक लाने का कार्य किया। उसके इस बदलते रुख के कारण उसके प्रति कांग्रेस के दृष्टिकोण में भी बदलाव हुआ। 1913 ई. के कांग्रेस अधिवेशन में तुर्की और फारस तथा मुस्लिम लोग के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। 1915 ई. में मुस्लिम लीग के सम्मेलन में **महात्मा गांधी, पं. मदन मोहन मालवीय** तथा **श्रीमती सरोजनी नायडू** आदि ने आमन्त्रित व्यक्तियों के रूप में भाग लिया। उसमें **मोहम्मद अली जिन्ना** ने राजनीतिक सुधारों के लिए कांग्रेस से मिलकर कार्य करने की योजना पेश की जिसके अन्तर्गत संयुक्त समिति के गठन का प्रस्ताव था। सन् 1913 में कांग्रेस अधिवेशन में ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही स्वायत्त शासन की प्राप्ति के विषय में जो प्रस्ताव स्वीकृत किया गया, उसका **मुस्लिम लीग** ने स्वागत और समर्थन किया।

1915 ई. के कांग्रेस के **बम्बई अधिवेशन** में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी इस बात के लिए अधिकृत की गई कि वह मुस्लिम लीग द्वारा गठित समिति की सलाह से ही शासन सुधार की योजना तैयार करे। उस अधिवेशन में स्वीकार किए प्रस्ताव में सरकार से मांग की गई कि वह दोनों दलों द्वारा संयुक्त रूप से तैयार योजना प्रस्ताव स्वीकार कर ले। इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् 1913 से 1915 तक के दोनों दलों ने एक-दूसरे के मध्य उल्लेखनीय निकटता का रास्ता साफ किया। 1916 ई. के कांग्रेस लीग समझौते ने तो इस दिशा में और आर्थिक उल्लेखनीय और ऐतिहासिक योगदान दिया। 1915 ई. में मुस्लिम लीग अधिवेशन में मोहम्मद अली जिन्ना ने राजनीतिक सुधारों के लिए कांग्रेस से मिलकर कार्य करने के विषय में एक समिति के गठन की योजना प्रस्तुत की जो स्वीकार कर ली गई। इस समिति ने इस दिशा में कांग्रेस और लीग के संयुक्त रूप से कार्य एवं प्रयत्न करने की एक योजना प्रस्तुत की जिसे दोनों दलों ने एक ही साथ आयोजित अपने लखनऊ अधिवेशनों में स्वीकार कर लिया। इसे ही कांग्रेस लीग समझौता अथवा लखनऊ समझौता कहा जाता है।

❑ रौलट एक्ट के स्वरूप की व्याख्या कीजिए।
(Discuss the nature of Rowlatt Act.)

अथवा

❑ रौलट एक्ट पर निबन्ध लिखिए।
(Write a essay on Rowlatt Act.)

अथवा

❑ रौलट सत्याग्रह के विषय में आप क्या जानते हो? व्याख्या कीजिए।
(What do you know about Rowlatt Satyagrah? Discuss.)

अथवा

❑ रौलट सत्याग्रह की प्रगति का वर्णन कीजिए।
(Describe the progress of Rowlatt Satyagrah.)

उत्तर : महात्मा गांधी पर गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों का बहुत प्रभाव था। वे उसी की तरह राजनीति में नरम थे। वे गोखले के समान संवैधानिक सुधारों में विश्वास करते थे, और इसलिए सरकार को पूरा सहयोग देने के पक्ष में थे। "गांधीजी अंग्रेजी साम्राज्य की नागरिकता में विश्वास रखते थे और उसमें गर्व भी अनुभव करते थे, इसलिए उन्होंने हिंदुस्तान सरकार को रंगरूटों की भर्ती तथा घायल व्यक्तियों की देख रेख

के लिए भी अपनी सेवाएँ अर्पित की। पहले विश्वयुद्ध में की गई सेवाओं के कारण सरकार ने उन्हें सम्मानपूर्वक पदक भी दिया।" इससे यह पता चलता है कि महात्मा गांधी ने प्रथम विश्वयुद्ध में अंग्रेजी सरकार को सभी तरह से अपना पूरा सहयोग दिया। इतने सहयोग के बावजूद प्रथम विश्वयुद्ध के बाद जब अंग्रेजी सरकार ने हिंदुस्तान को पूर्ण स्वराज्य नहीं दिया, तो सभी राष्ट्रवादियां बहुत निराश हुई और लोग अंग्रेजी सरकार के मंसूबों पर शक करने लगे। तथापि महात्मा गांधी को भी काफी निराशा हुई यद्यपि उन्होंने अपनी सहयोगी नीति को नहीं छोड़ा। सन् 1919 के सुधारों को देशबंधु चितरंजन दास, विपिन चन्द्रपाल तथा अन्य राष्ट्रवादी पूर्णरूप से अपर्याप्त और असन्तोषजनक समझते थे, किंतु गांधी जी इस परीक्षण को कार्यान्वित करने के पक्ष में थे। उन्होंने अपने पत्र 'यंग इंडिया' के 31 दिसंबर, 1919 के अंक में लिखा : "सुधार कानून तथा उसके साथ की गई घोषणा अंग्रेजी जनता की इस नीयत की द्योतक है कि अब वह हिंदुस्तानियों के साथ न्याय करना चाहती है और अब हिंदुस्तानियों के सब शक दूर कर देने चाहिए। हमारा यह कर्तव्य नहीं कि हम इन सुधारों की आलोचना करें, तो हमें इन्हें कामयाब बनाने के लिए इन पर गौर करना चाहिए।"

इसके बाद हम उन घटनाओं पर रोशनी डालेंगे जिन वजहों से महात्मा गांधी एक सहयोगी से असहयोगी बन गए। उनमें रौल्ट एक्ट, अमृतसर के जलियाँवाला बाग का हत्याकांड तथा खिलाफत के प्रश्न प्रमुख हैं, इसलिए अब हम क्रमबद्ध तरीके से उनका वर्णन करते हैं।

रौल्ट एक्ट
(Rowlatt Act)

20वीं शताब्दी के प्रारंभ में आतंकवादी और क्रांतिकारी दलों का उदय हो गया, क्योंकि अंग्रेजी सरकार की नीति भारतीय जनता के लिए अत्यन्त अहितकारी थी। बंगाल के बंटवारे, पंजाब में कृषि सम्बन्धी अत्याचारी कानून और महाराष्ट्र के अकाल तथा प्लेग ने जनता में अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध अनेक असन्तोष तथा उग्र भावनाएं उत्पन्न कर दी थीं। प्रथम विश्वयुद्ध में क्रांतिकारी दल बहुत अधिक सक्रिय हो गये थे और वे देश में क्रांति लाना चाहते थे। इनको कुचलने के लिए अंग्रेजी सरकार ने एक अधिनियम पास किया था, जिसे भारतीय प्रतिरक्षा अधिनियम कहा जाता था। प्रथम विश्वयुद्ध खत्म हो चुका था और इस कानून की सीमा भी खत्म होने वाली थी, परन्तु दबाने का बहाना लेकर इस कानून को किसी-न-किसी रूप में जीवित रखना चाहती थी। यह उन कानूनों द्वारा राष्ट्रवादी शक्तियों और विशेष रूप से 1919 के सुधारों का विरोध करने वालों को दबाना चाहती थी। अंग्रेजी सरकार को अफगानिस्तान में अशांति का डर था। उसको भारतीय सीमा पर भी अफगानिस्तान में अशान्ति का भय था। रूस से भी भारतीय सीमा पर भी गड़बड़ी का भय था। औपनिवेशिक सरकार ने मांटेग्यू की आज्ञा से रौलट की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की थी, जिसने हिंदुस्तान में क्रांतिकारियों की हलचलों और उनसे संबंधित अपराधों के बारे में अपनी रिपोर्ट दी। इस रिपोर्ट के आधार पर भारत सरकार ने केन्द्रीय विधानमण्डल में फरवरी 1919 ई. में दो बिल रखें, जिनको रौल्ट एक्ट या काला कानून कहा गया। इन कानूनों के अनुसार सरकार किसी को भी गिरफ्तार करके बिना मुकदमा चलाए जेल में डाल सकती थी और उसको चाहे जितने समय तक जेल में रख सकती थी। राष्ट्रवादी डरते थे कि इन कानूनों के अधीन सरकार किसी भी व्यक्ति को असीमित काल के लिए जेलों में डाल देगी और ये राष्ट्रवाद की बढ़ती हुई लहरों को रोकने से जनता पर बेलगाम अत्याचार करने के लिए प्रयोग किए जाएंगे। प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था और उस समय देश में कोई क्रांतिकारी आंदोलन नहीं चल रहा था। हिंदुस्तानियों ने ब्रिटिश सरकार की भी युद्ध में हद से बढ़कर हर तरह की मदद की थी। इसलिए ऐसे कानूनों की कोई जरूरत नहीं थी। महात्मा गांधी ने यह पहले ही घोषणा कर दी थी कि यदि ये कानून पास कर दिए गए तो इन कानूनों का विरोध करने के लिए मैं सत्याग्रह करने पर मजबूर हो जाऊँगा। अंग्रेजी सरकार जीतने के बाद भला अपनी तानाशाही क्यों छोड़ने वाली थी? इसने केन्द्रीय विधानमंडल और जनता के कड़े विरोध के बावजूद दो बिलों में से एक को आतंकवादी और क्रांतिकारी अपराध अधिनियम के नाम से कानून बना दिया गया।

रौलट एक्ट विरोध तथा गांधी को कारावास : महात्मा गांधी ने अपनी पहली घोषणा के अनुसार इस

रौलट एक्ट का विरोध करने का निश्चय किया। महात्मा गांधी ने लोगों को 6 अप्रैल, 1919 को देशव्यापी हड़ताल मनाने के लिए कहा। पहले 30 मार्च, 1919 हड़ताल की दिनांक निश्चित की गई थी जो बाद में 6 अप्रैल कर दी गई थी। पूरे देश में हड़ताल की गई और कानूनों का विरोध करने के लिए जुलूस-जलसे निकाले गए। दिल्ली में उस जुलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानंद ने किया। कुछ यूरोपियन सिपाहियों ने स्वामी श्रद्धानंद पर गोली चलाने की धमकी दी। श्रद्धानंद ने अपनी नंगी छाती उनके सामने कर दी। उस समय जुलूस पर गोली नहीं चलाई गई परन्तु जुलूस जब दिल्ली के रेलवे स्टेशन के पास पहुंचा तो उस पर गोली चला दी गई। इससे पांच व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और कुछ अन्य व्यक्तियों को गहरी चोटें आईं। लाहौर में भी गोली चली तथा कलकत्ता में भी अनेक दुर्घटनाएँ हुई। पंजाब में उपद्रव के समाचार को सुनकर तथा स्वामी श्रद्धानंद और डॉक्टर सत्यपाल से निमंत्रण पाकर गांधी जी 8 अप्रैल को दिल्ली की ओर रवाना हुए। गांधी जी को रास्ते में सरकार की ओर से नोटिस मिल गया कि वे दिल्ली और पंजाब में प्रविष्ट न हों। चूंकि गांधी जी ने इस नोटिस को मानने से मना कर दिया था, इसलिए पलवल में गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया व उनको वापिस बम्बई भेज दिया गया।

गांधी की गिरफ्तारी पर विरोध प्रदर्शन : महात्मा गांधी की गिरफ्तारी का समाचार पूरे भारत में फैल गया। अनेक स्थानों पर गिरफ्तारी का विरोध करने के लिए जुलूस निकाले गए। अहमदाबाद, विरामगाम, नदियागाम में झगड़े फैल गये। पंजाब में गुजराँवाला, लाहौर तथा कसूर में उपद्रव फैल गये। 10 अप्रैल, 1919 को पंजाब के प्रसिद्ध नेता डॉ. सत्यपाल तथा डॉ. किचलू गिरफ्तार करके किसी अज्ञात स्थान पर भेज दिए गए। इन दोनों को अमृतसर के जिला मजिस्ट्रेट द्वारा गिरफ्तार करवाया गया। इससे अमृतसर में बहुत उत्तेजना फैल गई और भीड़ ने अपने नेताओं के बारे में जानकारी ग्रहण करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट की कोठी की तरफ बढ़ना शुरू किया। सैनिक अधिकारियों ने भीड़ को वहाँ जाने से रोका और उसपर गोली चला दी, जिससे दो व्यक्ति मारे गए तथा कुछ को गहरी चोटें आई। लोग उन मरे हुए लोगों को अपने कंधों पर ले गए तथा उनका जुलूस निकाला। रास्ते में भीड़ ने नेशनल बैंक के भवन को आग लगा दी। उसके यूरोपियन मैनेजर को जान से मार दिया तथा कुछ अन्य मकानों को आग लगा दी। 10 अप्रैल, 1919 को अमृतसर का शासन सैनिक अधिकारियों को सौंप दिया गया।

रौलट एक्ट विरोध का परिणाम : 13 अप्रैल, 1919 को बैसाखी के दिन अमृतसर के जलियाँवाला बाग में बहुत बड़ी सभा हुई। जनरल डायर ने सभा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया था, परन्तु सभा पर रोक लगाने का नोटिस नगर में अच्छी तरह नहीं घुमाया गया और हजारों लोगों को एकत्रित होने दिया गया। जब लोग वहाँ पर एकत्रित हो गए तो जनरल डायर 100 भारतीयों और 50 अंग्रेज सैनिकों को लेकर जलियाँवाला बाग में पहुंच गया। वह अपने साथ मशीनगन भी ले गया था, परन्तु इसको वह भीतर नहीं ले जा सका क्योंकि जलियाँवाला बाग में बाहर या भीतर जाने के लिए एक ही रास्ता था जो इतना संकीर्ण था कि उसके अंदर मशीनगन नहीं ले जाई जा सकती थी। यह सभा बहुत शांतिपूर्वक हो रही थी और इसमें केवल डॉ. सत्यपाल, किचलू तथा गांधी की रिहाई की मांग हो रही थी। इसमें रौल्ट बिल का भी विरोध किया जा रहा था। जनरल डायर ने लोगों को चेतावनी दिये बिना उन पर 303 नं, की 1650 गोलियां चलाई और उसने गोलियाँ चलाना उसी समय बंद किया जब उसकी गोलियां खत्म हो गई। बाद में डायर ने हण्टर कमेटी के सामने स्वीकार किया कि उसने लोगों को सभा से बाहर जाने का आदेश दिया, परन्तु उस आदेश को देने के बाद दो या तीन मिनट में गोली चला दी। स्पष्ट है कि 20,000 लोग दो-तीन मिनट में वहां से बाहर नहीं जा सकते थे। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार 400 लोग मारे गए और एक या दो हजार के बीच में लोग घायल हुए। इसमें शक नहीं है कि घायल और मरे हुए व्यक्तियों की संख्या निश्चित रूप से अधिक थी और सरकार ने हत्याकांड के बाद खबरों को अखबारों में छापने या किसी दूसरे तरीके से यहाँ-वहाँ पहुंचाना बंद कर दिया था। जनरल डायर ने यह हत्याकांड बदला लेने की भावना से किया, शांति स्थापना की दृष्टि से नहीं। इसका सबूत है कि बाद में जब वह हण्टर कमेटी के सामने पेश हुआ तो उस समय हण्टर कमेटी के एक सदस्य न्यायाधीश रैकिंन ने उससे पूछा, "जनरल माफ करना, क्या यह आतंक का एक रूप नहीं था?" डायर ने उत्तर दिया, "नहीं"! यह

बड़ा भयानक कर्तव्य था जो मुझे पूरा करना पड़ा। मैंने सोचा कि मुझे गोलियों अच्छी तरह और खूब चलानी चाहिए तथा मुझे तथा और किसी व्यक्ति को दुबारा गोली चलाने की आवश्यकता न पड़े। मैं समझता हूँ कि यह संभव है कि मैं भीड़ को बिना गोली चलाए तितर-बितर भी कर सकता था, परन्तु वह दुबारा वापस आ जाती और मेरे ऊपर हंसती और मैं अपने आपको स्वयं बेवकूफ बना लेता।" सर माइकल ओडवायर (पंजाब गवर्नर) ने उसको डाक तार द्वारा सूचित कर दिया—"तुम्हारी कार्यवाही ठीक है, गवर्नर इसको स्वीकार करता है।"

रौलट एक्ट विरोध पर पंजाब में दमन का दौर : जलियाँवाला बाग से निकलने के लिए एक ही रास्ता था और वह भी बहुत तंग था और वहीं रास्ता जनरल डायर ने रोक लिया था। इसलिए लोग कहीं से भाग नहीं पाये। जलियाँवाला बाग में जनरल डायर ने अंग्रेजी सरकार की स्वीकृति से जो अत्याचार किए, वे हमेशा अंग्रेजी शासन के नाम पर एक काला धब्बा रहेगा। ब्रिटिश सरकार के ये अत्याचार अमृतसर नगर तक ही सीमित नहीं थे। डॉ. पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है, 'लाहौर, गुजरांवाला, कसूर तथा अन्य स्थानों पर भी कर्नल जॉनसन, बोसवर्थ स्मिथ, कर्नल जो ब्राइन तथा अन्य सैनिक-असैनिक अधिकारियों ने भी ऐसे अत्याचार किए कि वे खून को जमाने वाले हैं। इसके बाद पंजाब में मार्शल लॉ (फौजी कानून) लागू कर दिया गया और आतंकी राज्य स्थापित कर दिया गया।' **पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है, "कर्नल ओ ब्राइन गुजरांवाला का मार्शन लॉ अधिकारी था।" उसने हण्टर कमेटी के आगे प्रतिवेदन देते हुए कहा कि जहां भी उसने भीड़ को देखा उस पर वहीं गोली चला दी। लेफ्टिनेंट डोडकिन ने खेत में जमा हुए कुछ किसानों को मशीनगन से भून दिया। उसने देखा कि कुछ लोग एक स्थान पर इकट्ठे हैं और उनके सामने एक व्यक्ति भाषण दे रहा है, इसलिए उसने उन पर हवाई जहाज से बम डाल दिये। मेजर कर्वे ने भी नगर में आते-जाते हुए लोगों पर बम डाले। हण्टर कमेटी के समक्ष मेजर कर्वे ने कहा : "भीड़ भाग रही थी और उसे तितर-बितर करने के लिए मैंने गोली चला दी। जब भीड़ तितर-बितर हो रही थी तो मैंने गांव की तरफ मशीनगन चला दी। कुछ गोले मकानों को लगे। मैं निर्दोष और अपराधियों में कोई भेद नहीं कर सकता था। मैं 200 फुट ऊंचे स्थान पर खड़ा था और पूर्णतया यह देख सकता था कि मैं क्या कर रहा हूँ। केवल बमों के डालने से मेरा काम नहीं चला। इसके बाद मैं नगर की तरफ गया और जो लोग जान बचाकर भाग रहे थे उन पर बम बरसाए और गोलियां चलाई। इतना ही नहीं बल्कि जनता को कसूर (पंजाब) में कैप्टन डोवीटन ने कोड़े लगवाए और उनको देखने के लिए वेश्याएं बुलाई गई। लाहौर में भी कर्नल जॉनसन ने बारात को कोड़े लगवाए।"**

ब्रिटिश सरकार को पंजाब में इतने अत्याचार करने के बाद तसल्ली नहीं हुई। उन्होंने कुछ स्थानों पर लोगों को पेट के बल लेटकर घिसटते हुए चलने का आदेश दिया। इसका कारण यह बताया जाता है कि अमृतसर की एक गली में एक मिशनरी डॉक्टर शेरवुड पर कुछ व्यक्तियों ने आक्रमण कर दिया था। यद्यपि उसी गली में शरीफ आदमियों ने मिस शेरवुड की बाद में रक्षा की थी परन्तु फिर भी अंग्रेज अधिकारी इतने नाराज हो गए कि उन्होंने उस गली के लोगों को पेट के बल लेटकर आगे जाने का हुक्म दिया। लोगों को बाहर जाने के लिए तीसरे दर्जे के टिकट देने समाप्त कर दिए गए। जिन लोगों ने अपनी दुकानें बन्द कर दी थीं, उनको जबरदस्ती दुकानें खोलने को मजबूर किया गया। लोगों को कोड़े लगवाने के लिए एक प्लेटफार्म बनवाया गया। मार्शल लॉ के कानूनों के उल्लंघन के आरोप पर 298 व्यक्तियों को मार्शल लॉ कमीशन के सम्मुख पेश किया गया। इनमें 218 को दण्ड दिया गया, 51 व्यक्तियों को मृत्यु दण्ड, 46 को जीवन भर का देश-निष्कासन और कैद, 2 को 10 वर्ष की कैद, 79 व्यक्तियों को 7 साल की कैद 10 लोगों को 5 वर्ष की कैद, 13 व्यक्तियों को 3 वर्ष की कैद और 11 व्यक्तियों को कुछ थोड़ी सजा दी गयी। इसके अलावा कुछ अन्य व्यक्तियों को भी अन्य अधिकारियों द्वारा इसी तरह की सजा दी गयी।

हण्टर रिपोर्ट और उस पर कांग्रेस की प्रतिक्रिया : पंजाब की खबरों पर रोक लगा दी गई थी, इसलिए कम समय के लिए शेष भारत के लोगों को इन सब अत्याचारों के बारे में कुछ पता नहीं चला। इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने अंग्रेजी सरकार से पंजाब के अत्याचारों की जांच करने के लिए मांग की। दूसरी ओर कांग्रेस ने अपनी एक कमेटी इन अत्याचारों की जांच करने के लिए नियुक्त की, जिसमें मोतीलाल नेहरू, महात्मा गांधी,

मदनमोहन मालवीय इत्यादि सदस्य शामिल थे। श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने पंजाब के अत्याचारों का विरोध करते हुए अपनी 'सर' (Sir) की उपाधि लौटा दी। इसी कारण से सर शंकरन नायर ने वायसराय की कार्यकारिणी से अपना त्यागपत्र दे दिया। तब अंग्रेजी सरकार की आखें खुल गई और उसने मजबूर होकर पंजाब के अत्याचारों की जांच के लिए अक्टूबर, 1919 ई. में हण्टर कमेटी का गठन किया। हण्टर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट मार्च, 1920 में दी और मई, 1920 में इस पर भारत-सचिव के आदेश जारी हुए। इसके बीच में अंग्रेजी सरकार ने क्षतिपूर्ति अधिनियम पास कर दिया था, जिसमें पंजाब के अत्याचारों से सम्बन्धित सभी अधिकारियों को मुक्त कर दिया गया था। हण्टर रिपोर्ट में भी पंजाब के अत्याचारों की मात्र सफाई पेश की गई थी और सरकारी अधिकारियों का दृष्टिकोण ठीक सिद्ध किया गया था। पंजाब के गवर्नर सर माइकल ओडवायर को निरपराध समझा गया था। जनरल डायर को केवल इतनी सजा दी जाए कि उसको नौकरी से हटा दिया जाए, परन्तु इंग्लैंड के समाचार पत्रों ने उसे अंग्रेजी साम्राज्य का रक्षक घोषित किया। ब्रिटिश संसद में उनकी स्तुति के पुल बांध दिए गए और वहां की जनता ने उसके गुजारे के लिए काफी चन्दा इकट्ठा किया। सरकार ने अंग्रेजी साम्राज्य की सुरक्षा के लिए की गई सेवाओं के लिए जनरल डायर को सम्मान की तलवार तथा 2,000 पौंड भेंट किए। इन सब बातों ने महात्मा गांधी तथा अन्य देशवासियों के जले हुए हृदयों पर तेल छिड़कने का काम किया। इस कारण से महात्मा गांधी अंग्रेजों के सहयोगी से असहयोगी बन गए।

❑ प्रथम विश्व युद्ध के भारत पर पड़े प्रभावों का वर्णन कीजिए।
(Describe the impact of first World War on India.)

उत्तर : इस युद्ध में ब्रिटेन भी शामिल था और उन दिनों भारत पर ब्रिटेन का शासन था। अतः इस कारण हमारे सैनिकों को इस युद्ध में निराश होना पड़ा। इसके अतिरिक्त उस समय भारतीय राष्ट्रवाद के प्रभुत्व का दौर था, ये राष्ट्रवादी यह मानते थे कि युद्ध में ब्रिटेन को योगदान देने के फलस्वरूप अंग्रेजों द्वारा भारतीय ... अधिक संवैधानिक अधिकार प्राप्त होंगे। इस युद्ध के बाद

- 1861 के अधिनियम की मुख्य धाराओं तथा महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
(Throw light on the provisions and importance of the Act 1861.)

अथवा

- 1861 का भारतीय परिषद् अधिनियम किन परिस्थितियों में पास हुआ? इस अधिनियम के महत्त्व तथा दोषों का वर्णन कीजिए।
(What were the circumstances leading to the passing of the Indian Council Act of 1861? Describe the importance and defects of this act.)

अथवा

- 1861 के इण्डियन कौन्सिल एक्ट की धाराओं का आलोचनात्मक परीक्षण करें।
(Examine critically the provisions of Indian Council Act of 1861.)

अथवा

- 1861 के काउंसिल्स एक्ट के प्रावधानों की चर्चा करें।
(Discuss the provisions of the Councils Act of 1861.)

उत्तर :

भारतीय परिषद् अधिनियम, 1861 ई.
(Indian Council Act, 1861A.D.)

शासक वर्ग व शासित वर्ग में वास्तविक सम्पर्क स्थापित करने के उद्देश्य से सरकार ने 1861 ई. का भारतीय परिषद् अधिनियम पास किया। भारत के संवैधानिक विकास के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इस अधिनियम द्वारा सरकार ने भारतीय जनता के साथ 'सहयोग की नीति' का श्रीगणेश किया। इस अधिनियम के द्वारा पहली बार भारतीयों को शासन में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया।

अधिनियम के पारित होने के कारण
(Circumstances Led to the Enactment of the Act)

1861 के अधिनियम के पारित होने के निम्नलिखित कारण थे :

1. **अंग्रेज सरकार की नीति में परिवर्तन (Change in the Policy of the British Government) :** 1857 ई. की क्रांति के पश्चात् अंग्रेजी सरकार ने महसूस किया कि भारतीयों के सहयोग के बिना भारत में लम्बे समय तक शासन करना संभव नहीं है। सर बर्टाल फेयर के शब्दों में—**"मेरे विचार में भारतीयों का परिषद् में लिया जाना आवश्यक हो गया क्योंकि यह जानने के लिए कि भारतीय हमारे कानूनों के विषय में क्या सोचते हैं और उनका भारतीय समुदाय पर क्या प्रभाव पड़ेगा, इसे जानने के अवसर बहुत कम हो गए हैं।"** यह समझकर अंग्रेजों ने भारतीयों के प्रति अविश्वास की नीति में परिवर्तन किया तथा उन्हें (भारतीयों) कानून बनाने वाली संस्थाओं में प्रतिनिधित्व देने का निर्णय किया। इस प्रकार शासक व शासित के बीच

संबंधों के अभाव को दूर करने के लिए 1861 ई. का अधिनियम पास किया।

2. **स्वामीभक्त भारतीयों की माँग (Demand of Indian Loyalist)** : अंग्रेजी सरकार के प्रति स्वामीभक्ति (वफादारी) रखने वाले भारतीयों ने भी भारतीयों को कानून बनाने वाली संस्थाओं में स्थान देने की माँग की। **सर सैय्यद अहमद खाँ ने एक बार कहा था कि "यदि विधायिका परिषद् में एक भी भारतीय होता तो भारतवासी विद्रोह करने की गलती नहीं करते। जनता के पास सरकार तक अपनी आवाज पहुँचाने का कोई भी साधन नहीं था। इसलिए भारतीयों ने अंग्रेज सरकार से मांग की थी कि शासन में स्वदेशियों को अवश्य शामिल किया जाना चाहिए ताकि शासक व शासित के बीच की दूरी कम की जाए।"**

3. **1853 के अधिनियम के दोष (Defects in the Act of 1853)** : 1853 ई. में चार्टर एक्ट से कानून बनाने की व्यवस्था का केन्द्रीयकरण कर दिया गया था। सारे देश के लिए कानून बनाने का अधिकार केवल केन्द्रीय विधानपरिषद् को ही था। सभी छोटे-बड़े कानून वहीं बनते थे। परन्तु इस परिषद को देश के विभिन्न स्थानों की आवश्यकताओं का पूरा ज्ञान जान पाना संभव नहीं था।

4. **परिषद् में दोष (Defects in the Councils)** : तत्कालीन विधानपरिषद् का संगठन भी सन्तोष जनक नहीं था। समूचे देश के लिए कानून बनाने के लिए केवल एक ही परिषद् थी। इंग्लैण्ड जैसे एकात्मक राज्य के लिए इस प्रकार की परिषद् का होना उचित था परन्तु भारत जैसे व्यापक विभिन्नताओं वाले राष्ट्र के लिए यह अनुपयुक्त एवं अपर्याप्त था। अतः वर्तमान परिषद् के गठन एवं कार्यविधि में सुधार करने का अंग्रेज सरकार ने निश्चय कर लिया था।

5. **प्रान्तीय सरकारों को प्रतिनिधित्व नहीं मिलना (No Representation of the Provincial Governments)** : प्रान्तीय सरकारों को विधायिका परिषद में कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। अतः उनके क्षेत्रों के लिए बनाए गए कानूनों में उनका कोई हाथ नहीं होता था। यद्यपि 1853 ई. के चार्टर एक्ट में इस कमी को दूर करने का प्रयास किया गया था परन्तु यह पर्याप्त नहीं था। अतः उनके प्रतिनिधित्व को बढ़ाना आवश्यक था।

6. **विधायिका परिषद् का विवादस्पद कार्यक्रम (Controversial Programme of Councils)** : तत्कालीन विधायिका परिषद् का गठन एक परामर्शदात्री संस्था के रूप में हुआ था परन्तु इसने अपने आप को एक लघु संसद का रूप देने का प्रयास आरम्भ कर दिया था जिसके परिणामस्वरूप यह एक विवादास्पद संस्था बन गई थी। परिषद् ने अपने अधिकार क्षेत्र को व्यापक कर लिया था तथा इसने सरकार से गुप्त मामलों की जानकारी प्राप्त करने के प्रयास आरम्भ कर दिए थे। यह भारत सचिव की उपेक्षा करके स्वतन्त्र रूप से कानून बनाने का अधिकार प्राप्त करने का प्रयास करने लगी थी। अतः भारत सरकार ने इसकी शक्तियों को नियन्त्रित करना जरूरी समझा।

7. **गवर्नर-जनरल के अनावश्यक अधिकार (Unlimited Powers of the Governor-General)** : वर्तमान विधायिका के गवर्नर-जनरल को अविनियमित प्रान्तों के लिए कानून बनाने का अधिकार था। (या वह कानूनों के बारे में आदेश जारी कर सकता था)। इस संवैधानिक त्रुटि को दूर करना आवश्यक था।

8. **भारतीयों की इच्छा पूर्ति के लिए (For the pleasure of Indians)** : भारतीयों की शासन में सुधार करने की माँग दिन प्रतिदिन तेज होती जा रही थी। भारतीय जनता काफी समय से शासन में भाग लेने की माँग कर रही थी। अतः भारतीयों की इच्छा को पूरी करने के लिए अधिनियम पारित करना आवश्यक हो गया था।

उपरोक्त विविध कारणों से विवश होकर अंग्रेजी सरकार ने 1861 ई. का अधिनियम पारित करने का निश्चय किया।

अधिनियम की मुख्य धाराएँ
(Main Provisions of the Act)

1861 ई. में भारतीय परिषद् अधिनियम की मुख्य धाराएँ निम्नलिखित थीं–

1. इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर की कार्यकारिणी का विस्तार किया गया। इसके सदस्यों की संख्या चार से बढ़ाकर पाँच कर दी गई। इसके अतिरिक्त सदस्य (पाँचवें सदस्य) के लिए वित्त संबंधी ज्ञान आवश्यक था। प्रधान सेनापति (कमांडर इन चीफ) को पहले की भाँति कौंसिल का असाधारण सदस्य बनाने की व्यवस्था की गई।
2. कार्यपालिका की कार्यवाही को सुचारू रूप से संचालन करने के लिए गवर्नर-जनरल को नियम व उपनियम बनाने का अधिकार दिया गया। गवर्नर-जनरल को कौंसिल के सदस्यों में कार्य वितरण करने का अधिकार दिया गया। महत्त्वपूर्ण मामलों गवर्नर-जनरल की कौंसिल के समक्ष रखे जाते थे जहाँ बहुमत के आधार पर निर्णय होते थे परन्तु अन्तिम फैसला लेने का अधिकार गवर्नर-जनरल के पास ही था।
3. गवर्नर-जनरल को कानून बनाने में सहयोग करने के लिए अपनी कौंसिल में 6 से 12 तक सदस्यों की वृद्धि करने का अधिकार दिया गया। इनमें से कम-से-कम आधे सदस्य गैर-सरकारी रखे गए तथा इनका कार्यकाल 2 वर्ष तक रखा गया। इन सदस्यों को कार्यपालिका पर नियन्त्रण रखने का कोई अधिकार नहीं था। गवर्नर-जनरल इनकी सलाह को पूरी तरह ठुकरा सकता था।
4. विधानपरिषद् द्वारा पारित विधेयक पर गवर्नर-जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी। इसके पश्चात् ही वह विधेयक ब्रिटिश भारत के समस्त क्षेत्रों में लागू होता था। भारत सचिव गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत अधिनियमों को रद्द कर सकता था।
5. आवश्यकता पड़ने पर गवर्नर-जनरल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया गया था। इस प्रकार जारी अध्यादेश छः महीने तक ही लागू रह सकते थे परन्तु छः महीने से पहले ही भारत सचिव तथा उसकी कौंसिल और गवर्नर-जनरल की विधानपरिषद् उसे रद्द कर सकती थी।
6. इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों को स्थानीय या प्रान्तीय विषयों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार दिया गया था। प्रान्तीय गवर्नरों को एक प्रान्तीय महा अधिवक्ता तथा 4 से 8 तक अतिरिक्त सदस्य मनोनीत करने का अधिकार दिया गया था। इन अतिरिक्त सदस्यों में से कम-से-कम आधे सदस्यों का गैर-सरकारी होना आवश्यक था। इन सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष निर्धारित किया गया था। प्रान्तों द्वारा पारित प्रत्येक कानून पर गवर्नर-जनरल की स्वीकृति आवश्यक थी।
7. इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों की सीमाओं के परिवर्तन करने का अधिकार भी गवर्नर-जनरल को दिया गया था।

अधिनियम की समीक्षा
(Evaluation of the Act)

1861 के भारत परिषद् अधिनियम के गुण दोषों का विवरण इस प्रकार है–

अधिनियम के दोष (Defects of the Act) :

1. **अनिर्वाचित गैर-सरकारी सदस्य (Non-elected Non-official Members) :** इस अधिनियम के द्वारा गैर-सरकारी नामांकित (अनिर्वाचित) भारतीय सदस्यों को देश के लिए कानून बनाने वाली विधायिका में लिया गया था जो एक प्रगतिशील कदम था परन्तु ये लोग (मनोनीत सदस्य) जनता के प्रतिनिधियों की अपेक्षा उन्हें मनोनीत करवाने वाली प्रतिक्रियावादी शक्तियों के हितों के लिए काम करते थे। मनोनीत किए जाने वाले अधिकांश सदस्यों में देशी नरेश, जमींदार, बड़े पूँजीपति तथा अवकाश प्राप्त उच्च अधिकारी होते थे, जिनकी निष्ठा अंग्रेजों के प्रति थी न कि भारतीय जनता के प्रति। इस प्रकार परिषद् केवल सरकारी आदेशों को स्वीकृति प्रदान करने वाली संस्थाएँ मात्र रह गई थीं।

2. **नाममात्र की विधायिका सभाएँ (Nominal Legislature) :** इस अधिनियम के द्वारा बनने वाली विधानसभाएँ केवल नाममात्र के लिए ही कानून बनाने वाली संस्थाएँ थीं। ये विधायिका न होकर केवल उसकी एक समिति मात्र थी। इनकी विधायिका शक्ति अत्यन्त सीमित थी। इन्हें प्रस्ताव पेश करने तथा प्रश्न पूछने का अधिकार नहीं था। ये परिषदें कानून बनाने में केवल परामर्श एवं सहायता का ही कार्य करती थी। इन विधानपरिषदों में बने कानून केवल सरकारी आदेश ही थे। कूपलैण्ड ने इन परिषदों की तुलना भारतीय नरेशों के दरबार से की है।

3. **गवर्नर-जनरल की शक्ति में वृद्धि (Increase in the Power of Governor General) :** 1861 ई. के अधिनियम द्वारा गवर्नर-जनरल की शक्तियों को बढ़ा दिया गया था। उसे प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधानमण्डलों द्वारा पास किए गए विधेयकों को वीटो करने का अधिकार दिया गया था। गवर्नर-जनरल के पास शांति स्थापित करने तथा सरकार को आदेश जारी करने का अधिकार भी दिया गया था। गवर्नर-जनरल की इन असाधारण शक्तियों से विधानपरिषदों के नामांकित सदस्यों की सदस्यता निरर्थक रह गयी थी। वे केवल उदार अधिनायकवादी गवर्नर को सहायता देने मात्र बने रह गए थे।

4. **भारतीयों की आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं (It could not Fulfil the Demands of Indians) :** इस अधिनियम से भारतीयों को विधानपरिषदों में वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं मिला था क्योंकि सदस्यों को नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर को तथा वह ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करता था जो ब्रिटिश सरकार के भक्त थे तथा हाँ में हाँ मिलाते थे। डॉ. एस. आर. शर्मा ने लिखा है कि–**"सरकार का यह विचार नहीं था कि वे कानून निर्माण में कोई कारगर भाग लें। वे तो कानून निर्माण की प्रक्रिया के साक्षीकार ही थे।"** कृपाराम वम्बवाल ने इस संबंध में लिखा है कि–**"इस अधिनियम की सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि विधानपरिषदें कार्यपालिका पर कोई नियंत्रण नहीं रखती थी। उन पर इतने प्रतिबंध लगे हुए थे कि उनका सारा महत्त्व दिखावटी मालूम पड़ता था।"**

अधिनियम का महत्त्व (Importance of the Act) : 1861 ई. का अधिनियम भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। इस अधिनियम के द्वारा विकेन्द्रीकरण की नीति आरम्भ हुई। अधिनियम के द्वारा भारतीयों को कानून बनाने वाली संस्थाओं में स्थान दिया गया। गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है कि–**"इस अधिनियम से उस नीति का आरम्भ हुआ जिसके कारण 1937 में, 1935 के अधिनियम के अनुसार प्रान्तों को आन्तरिक मामलों में स्वराज्य दे दिया गया।"**

वीरकेश्वर प्रसाद सिंह ने अधिनियम के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि–**"इसके प्रवर्तन भारत में उत्तरदायी संस्था का सूत्रपात हुआ और जनता को अपने कष्ट सरकार के समक्ष रखने को अधिकार मिला। इसमें अतिशयोक्ति नहीं कि अधिनियम ने उस शासन-व्यवस्था की नींव डाली जो ब्रिटिश राज्य के अन्त तक कायम रही। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ तो आज भी पाई जाती हैं, जैसे विभागों का वितरण, अध्यादेश की शक्ति तथा विधानपरिषदों में सदस्यों का नामांकन।"**

- ❑ **1892 के भारतीय परिषद अधिनियम की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।**
  (Describe the main features of India Council Act of 1892.)

  अथवा

- ❑ **1892 का अधिनियम किन परिस्थितियों में पास हुआ? इस अधिनियम की धाराओं का आलोचनात्मक विवेचन कीजिए।**
  (What circumstances led to the passing of the Indian Council Act of 1892? Discuss the provisions of this act critically.)

  अथवा

- ❑ **उन कारणों की चर्चा करें जो 1892 के भारतीय कौंसिल अधिनियम के पास होने के जिम्मेदार थे?**
  (Discuss the causes that led to passing of Indian Councils Act of 1892.)

  अथवा

अथवा

- 1919 के अधिनियम में निहित गवर्नर जनरल की शक्तियों की व्याख्या कीजिए।
  (Describe the powers of governor General as laid in the Act of 1919.)

अथवा

- भारत सरकार ने 1919 के इण्डिया एक्ट द्वारा शुरू किए गए द्वैध शासन की विफलता के क्या कारण थे?
  (What were the causes of failures of dyarchy as introduced by the government of India Act of 1919?)

अथवा

- केन्द्रीय विधानमण्डल की संरचना और शक्ति में 1919 अधिनियम द्वारा क्या परिवर्तन किए गए थे?
  (What changes were introduced by the Act of 1919 in the composition and powers of central legislature?)

उत्तर :

1919 ई. के अधिनियम की विशेषताएँ
(Features of the Act 1919 A.D.)

1919 ई. का भारत सरकार अधिनियम भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण कदम था। यह 20 अगस्त, 1917 ई. की मांटेग्यू की घोषणा को कार्यरूप देने की दिशा में पहला कदम था। इसने बहुत

महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए तथा इससे भारत में प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं का विकास आरम्भ हुआ। श्री एन. श्रीनिवास के अनुसार–**"यह नौकरशाही शासन की पद्धति का प्रथम उल्लंघन तथा प्रतिनिध्यात्मक शासन का वास्तविक प्रारंभ था।"** अधिनियम की मुख्य धाराओं का विवरण इस प्रकार है–

प्रस्तावना (Preamble) : 1917 की मांटेग्यू की घोषणा को अक्षरशः प्रस्तावना का रूप दिया गया। प्रस्तावना में अधिनियम के उद्देश्य तथा सिद्धांत स्पष्ट किए गए हैं। **सर तेज बहादुर सप्रु** ने अधिनियम की प्रस्तावना का विश्लेषण इस प्रकार किया है–(i) भारत ब्रिटिश साम्राज्य का अभिन्न अंग रहेगा। (ii) प्रशासन में भारतीयों का सहयोग बढ़ाया जाएगा। (iii) स्वशासन की संस्थाओं का विकास किया जाएगा। (iv) भारत में ब्रिटिश नीति का लक्ष्य उत्तरदायी शासन की स्थापना होगा। (v) उत्तरदायी शासन तथा स्वशासन संस्थाओं का विकास धीरे-धीरे तथा क्रमिक ढंग से किया जाएगा। (vi) कब कितनी प्रगति हुई है इस बात का निर्णय ब्रिटिश संसद के हाथों में ही रहेगा। इन बातों के अतिरिक्त प्रस्तावना में प्रान्तों में स्वशासन की संस्थाओं के क्रमिक विकास के साथ-साथ आंशिक उत्तरदायित्व की स्थापना करने तथा यथासम्भव प्रान्तीय मामलों में प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय नियन्त्रण से मुक्त करने के प्रयास करने का भी वर्णन था।

गृह सरकार से संबंधित धाराएँ
(Provisions Relating to Home Government)

1919 ई. के अधिनियम से भारत के शासन को दो भागों में बांट दिया गया। इसका एक भाग इंग्लैण्ड से कार्य करता था तथा इसे गृह सरकार के नाम से जाना जाता था। गृह सरकार के पांच अंग थे-सम्राट, मंत्रिमण्डल, संसद, भारत सचिव तथा इण्डिया कौंसिल । इनमें भारत सचिव तथा इण्डिया कौंसिल सबसे महत्त्वपूर्ण भाग थे।

1. **भारत सचिव (Secretary of India) :** भारत सचिव का वेतन भारत के राज्यकोष से दिया जाता था, जिसके विरुद्ध भारतीयों ने आवाज उठाई थी। अतः इस अधिनियम के द्वारा भारत सचिव का वेतन इंग्लैण्ड से दिए जाने की व्यवस्था की गई। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश संसद भारत के कार्यों की भी आवश्यक जाँच-पड़ताल करने लगी।

इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तों व केन्द्र में भारत सचिव का नियन्त्रण पहले की तुलना में कम कर दिया गया। हस्तान्तरित विषयों में भारत सचिव का हस्तक्षेप निम्नलिखित बातों तक सीमित कर दिया गया–

(i) ब्रिटिश साम्राज्य के हितों की रक्षा।
(ii) प्रान्तों द्वारा न सुलझाए जा सकने वाले प्रश्नों का निर्णय।
(iii) गवर्नर-जनरल व उसकी परिषद् के कार्यों की देखभाल।
(iv) केन्द्रीय विषयों के शासनों की देखभाल।
(v) भारतीय हाई कमिशनर, भारतीय नौकरियों और अपने ऋण लेने के अधिकारों की रक्षा करना।

केन्द्र तथा प्रान्तों के रक्षित विषयों पर भारत सचिव के नियन्त्रण में कुछ कमी रह गई। अधिनियम के पहले केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय विधानसभाओं में विधेयक प्रस्तुत करने से पहले भारत सचिव की स्वीकृति लेना आवश्यक था। इस अधिनियम में व्यवस्था की गई कि कुछ मामलों से संविधान विधेयक जैसे विदेशी मामलों, सीमा-शुल्क, सैनिक मामले, नोट एवं सार्वजनिक ऋण आदि को छोड़कर शेष मामलों में भारत सचिव की पूर्व स्वीकृति आवश्यक नहीं होगी। प्रान्तों के संबंध में भी यह निश्चित किया गया कि किसी भी विधेयक को भारत सचिव के पास तब तक नहीं भेजा जाएगा जब तक कि गवर्नर-जनरल उसकी स्वीकृति के बारे में कोई बाधा उत्पन्न न करें।

2. **इण्डिया कौंसिल (India Council) :** इस अधिनियम के द्वारा भारत सचिव, अवर सचिव (Under Secretary) तथा उसके विभाग का सारा खर्च इंग्लैण्ड के राजकोष से देने का प्रावधान किया गया। अधिनियम के द्वारा इण्डिया कौंसिल के सदस्यों की संख्या 8 से 12 निश्चित की गई। इनमें से तीन सदस्यों का भारतीय होना आवश्यक था तथा कुल सदस्यों में से आधे सदस्य ऐसे होंगे, जिन्हें भारत में सेवा करने का कम-से-कम 10 वर्ष का अनुभव हो। इन सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्ष का रखा गया तथा उनका

वेतन 1,000 पौण्ड से बढ़ाकर, 1200 पौण्ड कर दिया गया। इसके अतिरिक्त भारत में रहने वाले सदस्यों को 600 पौंड सालाना भत्ता भी देना निश्चित हुआ।

3. **हाई कमिश्नर (High Commissioner) :** भारतीयों का सम्भावना बढ़ाने के लिए इस अधिनियम द्वारा पहली बार भारत के लिए हाई कमिश्नर का पद कायम किया गया। इसकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा की जानी थी तथा यह इसका भारतीय मूल का होना आवश्यक था। यह भी निश्चित किया गया कि भारत सचिव की बजाय हाई कमिश्नर भारत सरकार की सभी आवश्यक वस्तुएँ लन्दन से खरीदेगा। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड में पढ़ने वाले भारतीय विद्यार्थियों की सुविधाओं तथा आवश्यकताओं का ध्यान भी रखेगा। हाई कमिश्नर का कार्यकाल 5 वर्ष का था तथा उसकी वेतन भारतीय कोष से दिया जाना था। यद्यपि इस अधिनियम द्वारा उपर्युक्त परिवर्तन किए गए परन्तु गृह सरकार की वैधानिक सर्वोच्चता ज्यों की त्यों बनी रही। गवर्नर-जनरल व उसकी सरकार के सभी सदस्य गृह सरकार के आदेश को मानने के लिए विवश थे।

4. **केन्द्रीय सरकार (Central Government)–**

गवर्नर-जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद् (Governor General and his Executive Council) : इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर-जनरल व उसकी कार्यकारिणी की शक्तियों में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं किया गया। गवर्नर-जनरल की शक्तियाँ पहले की भांति असीमित, निरंकुश एवं अनुत्तरदायी रही। गवर्नर-जनरल कार्यकारिणी का अध्यक्ष होता था इस नाते वह भारतीय प्रशासन का सबसे बड़ा प्रशासनिक अधिकारी था। उसकी नियुक्ति ब्रिटिश प्रधानमंत्री की सिफारिश पर ब्रिटिश सम्राट के द्वारा पांच वर्ष के लिए की जाती थी तथा आवश्यकता पड़ने पर इस कार्यकाल में वृद्धि की जा सकती थी। उसका वार्षिक वेतन 2 लाख 57 हजार रुपये और वार्षिक भत्ते 1,72,000 रुपये थे। उसे सरकारी आवास स्थान भी दिया जाता था। कार्यपालिका से संबंधित सर्वोच्च शक्तियाँ गवर्नर-जनरल तथा उसकी कार्यकारिणी परिषद् को प्राप्त थीं। गवर्नर-जनरल का पद संसार के अधिकतम गौरवशाली, प्रतिष्ठित एवं शोभनीय पदों में कदाचित सर्वोच्च था। इस पद के गौरव का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि **बिस्मार्क जैसे व्यक्ति भी इस पद के प्रति आकर्षक अनुभव करते थे।** संसार के किसी अन्य राजनैतिक पदाधिकारी के पास इतनी शक्तियाँ तथा विशेषाधिकार नहीं थे। **लावैल** ने गवर्नर-जनरल की शक्तियों के बारे में लिखा है कि–**"रूस के जार तथा भारत के गवर्नर-जनरल अथवा वायसराय कभी-कभी विश्व के महान् तानाशाह कहे गए हैं।"** गवर्नर-जनरल की शक्तियों का अध्ययन निम्न तीन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

(i) सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में
(ii) गृह सरकार के प्रतिनिधि के रूप में
(iii) भारतीय शासन के अध्यक्ष के रूप में

(i) **सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में (As a Nominee of Emperor) :** गवर्नर-जनरल भारत में ब्रिटिश सम्राट का सर्वोच्च अधिकारी था। उसे न्याय, दया तथा अनुग्रह की अनेक शक्तियाँ प्राप्त थीं। उसे क्षमा प्रदान करने तथा उपाधियाँ देने का विशेष अधिकार था। देशी रियासतों के नरेशों पर भी वह अंग्रेजी अधिसत्ता का प्रयोग करता था।

(ii) **गृह सरकार के प्रतिनिधि के रूप में (As a Nominee of Home Govt.) :** गृह सरकार के प्रतिनिधि के रूप में गवर्नर-जनरल को अंग्रेजी मंत्रिमण्डल की नीतियों को लागू करने की सभी शक्तियाँ प्राप्त थीं। यद्यपि उसे युद्ध की घोषणा करने की शक्ति प्राप्त नहीं थी परन्तु वह ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर सकता था जिनमें युद्ध करना जरूरी हो जाए।

(iii) **भारतीय शासन के अध्यक्ष के रूप में (As President of Indian Govt.) :** गवर्नर-जनरल के पास सबसे महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ भारतीय शासन के अध्यक्ष के रूप में थीं। इनका विवरण इस प्रकार हैं–

(a) **कार्यकारिणी शक्तियाँ (Executive Powers) :** कार्यकारिणी परिषद् के अध्यक्ष के रूप

में गवर्नर-जनरल को अनेक शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह कार्यकारिणी परिषद् के उप-प्रधान, सचिव, उप-गवर्नरों एवं राज्यपरिषद् के प्रधान की नियुक्त करता था। दोनों सदनों के कुछ सदस्यों को नामजद करने का अधिकार भी गवर्नर-जनरल के पास था।

(b) **विधायिका शक्तियाँ (Parliamentary Powers)** : गवर्नर-जनरल के विधायी क्षेत्र में भी अनेक शक्तियाँ प्राप्त थीं। व्यवस्थापिका सभाओं के अधिवेशन बुलाना, स्थगित करना तथा उन्हें भंग करना गवर्नर-जनरल के हाथों में ही था। वह विधानपरिषदों की समय अवधि निश्चित करता था तथा इसे बढ़ा भी सकता था। वह दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को भी संबोधित करता था। वह किसी भी विधाराधीन प्रस्ताव को रोक सकता था यदि उसे वह प्रस्ताव देश की भांति भंग करने वाला लगे। सेना, सार्वजनिक ऋण, विदेशी मामले एवं प्रान्तीय विषयों से संबंधित विधेयकों पर गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति लेनी आवश्यक थी तथा वह विशिष्ट प्रकार के प्रश्नों व प्रस्तावों को रोक सकता था। गवर्नर-जनरल को विधायी क्षेत्र में **निषेधाधिकार एवं प्रमाणित** करने की शक्ति प्राप्त थी अर्थात् वह किसी भी विधेयक को खत्म कर सकता था तथा किसी भी विधेयक को जो देश के हित में हो तथा जिसे केन्द्रीय विधानमण्डल के दोनों सदन अस्वीकार कर दें उसे पास करके कानून का रूप दे सकता था। आपातकाल में उसे अध्यादेश जारी करने की शक्ति भी प्राप्त थी जो 6 मास तक कार्यशील रह सकता था।

(c) **वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers)** : गवर्नर-जनरल की वित्तीय शक्तियाँ भी काफी व्यापक थी। वह केन्द्रीय बजट का निर्माण करता था तथा बजट उसकी अनुमति से ही राज्यपरिषद् तथा व्यवस्थापिका सभा में रखा जाता था। वह बजट की बहुत बड़ी राशि (लगभग 80%) को व्यवस्थापिका से पास हुए बिना ही स्वेच्छा से खर्च कर सकता था। बजट के शेष भाग में भी उसका काफी हस्तक्षेप था। वह लगभग पूरे भारतीय राजकोष का स्वामी था।

इस प्रकार गवर्नर-जनरल को व्यापक शक्तियाँ प्राप्त थीं। वह भारत में वैधानिक शासक की तरह नहीं बल्कि स्वेच्छाधारी शासक की तरह कार्य करता था। **"साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में कहा था कि–"वह अत्यन्त उत्तरदायी, ऐश्वर्यवान तथा उल्लेखनीय पद सुशोभित करता था तथा शासन का भारत वहन करने में प्रत्यक्ष एवं व्यक्तिगत रूप से उस पर ऐसा भार था, जैसा कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य किसी प्रतिनिधि पर नहीं।"**

कार्यकारिणी परिषद् (Executive Council) : 1919 ई. के अधिनियम के द्वारा कार्यकारिणी के सदस्यों की अधिकतम सीमा हटा दी गई तथा उनकी योग्यता में कुछ परिवर्तन किया गया। 1919 से 1941 ई. तक परिषद् के सदस्यों की संख्या 6 बनी रही। जिस व्यक्ति ने भारत के उच्च न्यायालय में कम-से-कम 10 वर्ष तक सेवा की हो उनकी नियुक्ति भारत मंत्री के परामर्श से सम्राट द्वारा की जाती थी। सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष का होता था तथा उनकी पुनः नियुक्ति भी हो सकती थी। सदस्यों को वेतन भारतीय राजस्व से दिया जाता था। मुख्य सेनापति के अतिरिक्त कार्यकारिणी के सदस्य का वेतन 80,000 रुपये प्रतिवर्ष था। कार्यकारिणी का काम देश में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखना तथा सुशासन स्थापित करना था। परिषद् के सदस्य अलग-अलग विभागों के प्रमुख होते थे। भारतीय सदस्यों को शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम आदि विषय मिलते थे। कार्यकारिणी विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। यह गवर्नर-जनरल के प्रति उत्तरदायी थी जो भारत सचिव के प्रति तथा भारत सचिव ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थीं। इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से कार्यकारिणी ब्रिटिश संसद के प्रति उत्तरदायी थीं।

केन्द्रीय विधानमण्डल का पुनर्गठन
(Reconstruction of Central Legislature)

1919 ई. के अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा में अनेक परिवर्तन किए गए। इस

अधिनियम द्वारा भारत में पहली बार द्विसदनात्मक विधानमण्डल की स्थापना की गई। ये दो सदन राज्यपरिषद् तथा विधानसभा थे। प्रत्येक सदन में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रखा गया। केन्द्रीय विधानमण्डल की संख्या 205 थी जिनमें विधानसभा के 145 तथा राज्य परिषद् के 60 सदस्य थे।

1. **राज्य परिषद् (Council of State)** : राज्य परिषद् (राज्यसभा) केन्द्रीय व्यवस्थापिका का उच्च सदन था। इसकी रचना, कार्य, अवधि आदि का विवरण इस प्रकार है–

(i) **रचना (Composition)** : 1919 के अधिनियम के अनुसार इस सदन की सदस्य संख्या 60 निश्चित की गई। इनमें से 34 सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा साम्प्रदायिक आधार पर चुने जाने थे तथा शेष 26 सदस्य मनोनीत किए जाने थे। निर्वाचित किए जाने वाले 34 सदस्यों में से 20 साधारण निर्वाचन क्षेत्र से, 10 मुस्लिम क्षेत्रों से, 1 सिक्ख तथा 3 यूरोपियन सदस्यों में से होते थे। शेष सदस्यों में से 19 मनोनीत सरकारी, एक की नियुक्ति गवर्नर-जनरल सभापति के रूप में करता था तथा 6 मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य होते थे।

(ii) **अवधि (Tenure)** : राज्य परिषद् की अवधि 5 वर्ष की होती थी परन्तु गवर्नर-जनरल इनमें परिवर्तन कर सकता था।

(iii) **मताधिकार (Right to Vote)** : राज्य परिषद् की स्थापना का उद्देश्य उच्च सदन के रूप में कुलीन तन्त्रीय सदन की स्थापना करना था इसलिए इस परिषद् के लिए मताधिकार अत्यन्त संकुचित रखा गया। इस सदन का मताधिकार संपत्ति संबंधी योग्यताओं पर निर्भर था। केवल उन व्यक्तियों को मत का अधिकार दिया गया जो 10 हजार से 20 हजार रुपये वार्षिक आयकर देते हों अथवा 750 से लेकर 5000 रुपये तक भूमिकर देते हों। इसके अतिरिक्त उन व्यक्तियों को भी मत का अधिकार दिया गया जो नगरपालिकाओं, जिला बोर्डों या केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष रह चुके हों। वे व्यक्ति जो भारत की किसी व्यवस्थापिका के सदस्य रह चुके हों। जिन्हें सरकार की तरफ से 'महामहोपाध्याय' अथवा 'शम्शुलउलेमा' आदि विद्वत उपाधियाँ दी गई हों को मत का अधिकार दिया गया। स्त्रियों को इस सदन के मताधिकार से वंचित रखा गया था। संकुचित मताधिकार की इस व्यवस्था के कारण राज्य परिषद् निहित स्वार्थों वाले वर्ग का ही प्रतिनिधित्व कर रही थीं। श्री निवास आयंगर ने ठीक ही लिखा है कि–**"राज्य परिषद् की स्थापना विधानपरिषद् के प्रति भार के रूप में की गई थी और यह सरकार के अजेय दुर्ग के समान थी।"** भारत की 28 करोड़ की जनसंख्या में से केवल 17364 व्यक्तियों को ही राज्य परिषद् के लिए मत का अधिकार दिया गया था।

(iv) **राज्य परिषद् की शक्तियाँ तथा कार्य (Powers and Functions of the Council of the State)** : राज्य परिषद् के पास कानून बनाने, कानूनों में संशोधन करने तथा बजट पर बहस करने का अधिकार था। राज्य परिषद् द्वारा पारित किए बगैर कोई भी विधेयक कानून नहीं बन सकता था। बजट राज्यसभा व विधानसभा में एक ही दिन रखा जाता था। धन विधेयक पहले विधानसभा में पारित किए जाते थे तत्पश्चात् इन्हें राज्यसभा में रखा जाता था। राज्यसभा धन विधेयक में संशोधन का सुझाव दे सकती थी तथा उसे रद्द भी कर सकती थीं। यदि राज्य परिषद् किसी वित्त विधेयक में संशोधन करती या उसे रद्द करती व विधानपरिषद् इससे सहमत नहीं होती तो इस स्थिति में गवर्नर-जनरल ही अपने विशेष शक्तियों से उस धन विधेयक को पास कर सकता था। इस परिषद् के सदस्यों को प्रश्न पूछने तथा निन्दा व काम रोको प्रस्ताव पेश करने का अधिकार था।

2. **विधानसभा (Legislative Assembly)** : विधानसभा केन्द्रीय व्यवस्थापिका का निम्न सदन था। इसकी सदस्य संख्या 145 थी। इसकी रचना, अवधि व शक्तियों का विवरण इस प्रकार है–

(i) **रचना (Composition)** : विधानसभा के 145 सदस्यों में से 104 सदस्य निर्वाचित तथा शेष 41 सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत किए जाते थे। 104 निर्वाचित सदस्यों में से 52 सदस्य

सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से, 30 मुस्लिम, 2 सिक्ख, 9 यूरोपियन, 7 जमींदार तथा 4 भारतीय वाणिज्य वर्ग के हितों का प्रतिनिधत्व करते थे। 41 मनोनीत सदस्यों में से 26 सदस्य सरकारी अधिकारी, शेष 15 सदस्य गैर-सरकारी अधिकारी होते थे।

(ii) **अवधि (Tenure) :** विधानसभा का कार्यकाल 3 वर्ष का निधारित किया गया परन्तु गवर्नर-जनरल इसको घटा-बढ़ा सकता था जिस प्रकार 1936 में चुनी गई विधानसभा का कार्यकाल 10 वर्ष तक चला था।

(iii) **मताधिकार (Right to Vote) :** राज्य परिषद् की तुलना में विधानसभा के लिए मताधिकार व्यापक था, परन्तु इसमें भी मताधिकार संपत्ति संबंधी योग्यता पर ही आधारित था। विधानसभा का मताधिकार उन लोगों को दिया गया था जो कम-से-कम 2 हजार रुपये से लेकर 5 हजार रुपये तक वार्षिक आयकर देता था, 50 से 150 रुपये तक वार्षिक भूमि कर देता हो, कम-से-कम 15 रुपये से 20 रुपये तक वार्षिक नगरपालिका कर देता हो, 150 रुपये से अधिक किराए के मूल्य वाले मकान का मालिक हो या किराएदार हो। संपत्ति संबंधी योग्यताओं के कारण विधानसभा के मतदाताओं की संख्या 1920 में नौ लाख नौ हजार आठ सौ चौहत्तर 9,09,874) थीं।

(iv) **पदाधिकार (Officials) :** विधानसभा का अध्यक्ष प्रथम चार वर्षों के लिए तो गवर्नर-जनरल द्वारा मनोनीत होना निश्चित हुआ था तथा उसके बाद वह विधानसभा द्वारा निर्वाचित होना था।

(v) **विधानसभा की शक्तियाँ एवं कार्य (Powers and Functions of the Legislative Assembly) :** 1919 के अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय विधानसभा की शक्तियों में वृद्धि की गई थी। विधानसभा की शक्तियाँ इस प्रकार थीं :

(a) **विधायिनी शक्तियाँ (Exceutive Powers) :** केन्द्रीय विधानसभा केन्द्रीय सूची में किए सभी विषयों के लिए कानून बनाती थी। परन्तु इसे ब्रिटिश संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून को रद्द करने व संशोधन करने का अधिकार नहीं था। इसे कुछ विषयों पर गवर्नर-जनरल की पूर्व अनुमति लेनी आवश्यक थी जैसे सार्वजनिक ऋण, राजस्व कर अथवा राजस्व कर पर अतिरिक्त कर, धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं से संबंधित कानून, सेना के अनुशासन के संबंध में, देशी राज्यों व विदेशों से सरकारी संबंधों के विषय में, प्रान्तीय विधानसभा के किसी कानून को रद्द करने या संशोधन करने व प्रान्तीय विषय पर विचार करने आदि में गवर्नर-जनरल की पूर्व अनुमति आवश्यक थीं।

(b) **वित्तीय शक्तियाँ (Financial Powers) :** केन्द्रीय बजट सबसे पहले विधानसभा में प्रस्तुत किया जाता था उसके बाद राज्यसभा में भेजा जाता था। परन्तु बजट के लगभग 85 प्रतिशत भाग को गवर्नर-जनरल व्यवस्थापिका की बिना स्वीकृति अथवा अनुमोदन के खर्च कर सकता था। विधानसभा इस पर बहस तो कर सकती थी, लेकिन मतदान नहीं कर सकती थी। शेष 15 प्रतिशत भाग के बारे में विधानसभा किसी खर्च में कटौती कर सकती थी, परन्तु उसे किसी भी मद की राशि में वृद्धि करने का अधिकार नहीं था। इस प्रकार विधानपरिषद् का भारतीय राजकोष पर आंशिक स्वामित्व था।

(c) **कार्यकारिणी को प्रभावित करने का अधिकार (Right to Affect Executive Council)** : विधानसभा को कार्यकारिणी को प्रभावित करने का अधिकार था। वह कार्यकारिणी के सदस्यों से प्रश्न पूछ सकती थी, सरकार की नीतियों की आलोचना कर सकती थी और कार्य स्थगन प्रस्ताव भी रख सकती थी। वह सरकार की नीतियों में परिवर्तन हेतु सुझाव भी रख सकती थी परन्तु व्यवस्थापिका के पास कार्यकारिणी को नियन्त्रित करने की शक्ति नहीं थी। विधानमण्डल या व्यवस्थापिका गवर्नर-जनरल व उसकी कार्यकारिणी के खिलाफ अविश्वास का प्रस्ताव पारित नहीं कर सकती थी। सरकार का कोई भी विभाग विधानमण्डल के नियन्त्रण में नहीं था। गवर्नर-जनरल विधानमण्डल द्वारा पारित किसी भी

विधेयक को अस्वीकृत कर सकता था। वह अपनी इच्छानुसार किसी भी विधेयक में संशोधन भी कर सकता था।

भारतीय व्यवस्थापिका की शक्तियों पर लगे इन प्रतिबंधों के आधार पर गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है कि—"इस प्रकार भारतीय विधानमण्डल केवल एक प्रभुता रहित, विधायक निकाय ही नहीं था, वरन् वह कार्यकारिणी के समक्ष असशक्त भी था। प्रशासकीय, विधायी एवं वित्तीय सभी क्षेत्रों में सपरिषद् गवर्नर-जनरल को पूरा अधिकार था। कार्यकारिणी विधानमण्डल से स्वतन्त्र ही नहीं थी, वरन् इसको लगभग सभी विषयों में उसका उल्लंघन करने का अधिकार था।"

तालिका : 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत राज्य परिषद् की रचना

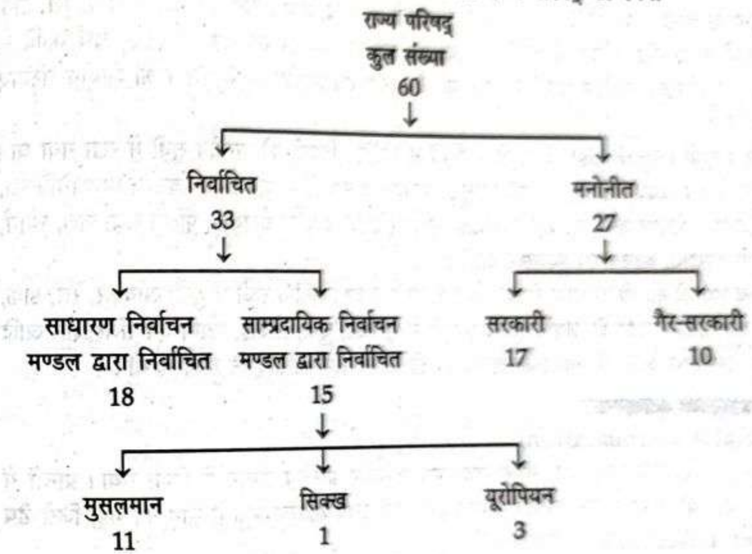

तालिका : 1919 के अधिनियम के अन्तर्गत विधानसभा की रचना

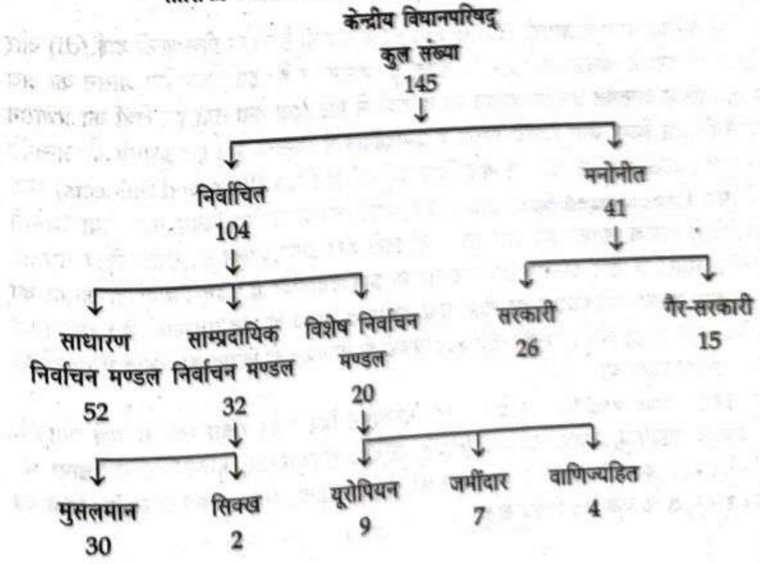

केन्द्र तथा प्रान्तों में विषयों का बंटवारा
(Division of Subjects into Central and Provinces)

कूपलैण्ड ने लिखा है कि–"1919 के अधिनियम की सबसे प्रमुख विशेषता प्रान्तीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र का परिसीमन था जो भारत में संघात्मक व्यवस्था के निर्माण की दिशा में प्रथम चरण था।" उस अधिनियम के केन्द्रीय सरकार व प्रान्तीय सरकार के बीच प्रशासन के समस्त विषयों को दो सूचियों में विभाजित किया गया। केन्द्रीय सूची तथा प्रान्तीय सूची।

केन्द्रीय सूची (Central List) : जो विषय समस्त भारत के हित में थे अथवा जिनमें एक से अधिक प्रान्तों के हितों की प्रधानता थी उन्हें केन्द्रीय सूची में रखा गया। केन्द्रीय सूची में 47 विषय थे। इनमें प्रमुख थे-रक्षा (सेना के तीनों अंग), विदेशी संबंध, देशी रियासतों में संबंध, सार्वजनिक ऋण, शुल्क, चुंगी, रेल, डाक व तार, सिक्के तथा नोट, फौजदारी व दीवानी कानून, रूई पर उत्पादन एवं बड़े बन्दरगाह, चर्च आदि से संबंधित धार्मिक व्याख्या, अखिल भारतीय नौकरियाँ, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान की केन्द्रीय संस्थाएँ आदि प्रमुख थे।

प्रान्तीय सूची (State List) : प्रान्तों के हितों से संबंधित विषयों को प्रान्तीय सूची में रखा गया था। प्रान्तीय सूची में 50 विषय रखे गए थे। इनमें प्रमुख थे-स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा चिकित्सा, शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण कार्य, कृषि एवं सिंचाई, भूमिकर प्रबंध, अकाल सहायता, पुलिस तथा जेल, न्याय, वन, सहकारी संस्थाएँ, कानून एवं व्यवस्था आदि।

राजस्व साधनों को भी दो भागों में विभाजित किया गया था। केन्द्रीय सूची में चुंगी, आयकर, रेल, डाक, तार, नमक एवं अफीम आदि थे, जबकि प्रान्तीय सूची में भूमिकर, चुंगी, सिंचाई, स्टाम्प एवं रजिस्ट्रेशन आदि रखे गए थे। अवशिष्ट शक्तियाँ गवर्नर-जनरल व उसकी कार्यकारिणी परिषद् के हाथों में थी।

प्रान्तीय शासन व्यवस्था
(Provincial Administration)

1919 ई. के अधिनियम द्वारा सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्रान्तीय शासन में किया गया। प्रान्तों में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के अन्तर्गत एक विचित्र एवं अव्यावहारिक प्रणाली लागू की गई, जिसे **द्वैध शासन प्रणाली** (Dyarchy) कहा जाता है।

द्वैध शासन-प्रणाली
(Dyarchy)

द्वैध शासन अंग्रेजी भाषा के **डायर्की** (Dyarchy) का पर्यायवाची है जो दो ग्रीक शब्दों **डाई** (di) और आर्की (archie) से बना है जिनका अर्थ क्रमशः **'दोहरे'** व **'शासन'** से है। इस प्रकार द्वैध शासन का अर्थ **दोहराशासन था। इसके अन्तर्गत प्रान्तीय शासन को दो क्षेत्रों में बांट दिया गया तथा इन क्षेत्रों का प्रशासन ऐसे पदाधिकारियों द्वारा किया जाए जिनके स्वरूप व उत्तरदायित्व में भिन्नता हो।** इस प्रणाली के अन्तर्गत प्रान्तीय विषयों को पहली बार दो भागों में बांट दिया गया–**रक्षित विषय** (Reserved Subjects) तथा **हस्तान्तरित विषय (Transferred Subjects)।** उन विषयों को हस्तांतरित विषय कहा गया जिनको भारतीयों को देने से अंग्रेजी सरकार को कोई हानि नहीं होती थी। इनके शासन का उत्तरदायित्व भारतीय मंत्रियों को सौंपा गया। ये मंत्री प्रान्तीय विधानपरिषद् के प्रति उत्तरदायी थे। **इन विषयों के शासन का** दायित्व गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी को सौंपा गया जो भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी थे। **इन विषयों** पर प्रान्तीय विधानपरिषद् का कोई नियन्त्रण नहीं था। विषयों के विभाजन के विवाद की स्थिति में गवर्नर का निर्णय अन्तिम समझा जाता था।

रक्षित विषय (Reserved Subjects) : अति महत्त्वपूर्ण विषयों को रक्षित सूची में रखा गया। ये थे-भूमिकर, अकाल सहायता, न्याय, खनिज संसाधन, पुलिस, समाचार-पत्र, पुस्तकों व छापेखानों का नियन्त्रण, प्रान्तीय वित्त, देश की एकता व अखण्डता को सुरक्षित रखना, वर्गों, श्रेणियों व जातीय हितों की सुरक्षा आदि। इस सूची में कुल 28 विषय थे।

हस्तांतरित विषय (Transferred Subjects) : इस सूची में 22 विषय थे जैसे-स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सफाई, चिकित्सा, शिक्षा (यूरोपियन एवं ऐंग्लो इंडियन छोड़कर) सार्वजनिक कार्य, कृषि, सहकारी समितियाँ, मछली क्षेत्र, उद्योग धन्धे, खाद्य वस्तुओं में मिलावट, जन्म तथा मृत्यु के आँकड़े, माप, मोल आदि। इन विषयों का भार भारतीय मंत्रियों के पास था। मंत्रियों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा की जाती थी। मंत्री विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होते थे। मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव लाया जा सकता था तथा अविश्वास प्रस्ताव पास होने की स्थिति में मंत्रियों को त्याग-पत्र देना पड़ता था। गवर्नर किसी भी व्यक्ति को 6 मास तक के लिए मंत्री बना सकता था परन्तु अवधि पूरी होने के पश्चात् ऐसे व्यक्ति को विधानपरिषद् की सदस्यता ग्रहण करनी पड़ती थी।

द्वैध शासन का क्रियान्वयन
(Working of Dyarchy)

वैध शासन-प्रणाली 1 अप्रैल, 1921 से देश के आठ प्रान्तों-बंगाल, बिहार, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, मुम्बई, चेन्नई, उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त में लागू की गई थी। इस प्रणाली को प्रारम्भ से ही विरोध का सामना करना पड़ा। बंगाल व मध्य प्रान्त में विशेषतः संवैधानिक गतिरोध उत्पन्न हो गया था तथा अन्य प्रान्तों में गवर्नर व विधानपरिषद् के सदस्यों के बीच मतभेद रहते थे। यह प्रणाली ठीक ढंग से कार्य नहीं कर पायी। अतः 1935 ई. के अधिनियम द्वारा इसे हटा लिया गया।

द्वैध शासन-प्रणाली की असफलता के कारण
(Factors Leading to Failure of Dyarchy System)

यह प्रणाली भारतीयों को खुश नहीं कर सकी क्योंकि इनमें अनेक दोष थे जो इसकी असफलता का कारण बने। इनका विवरण इस प्रकार है–

1. **सैद्धान्तिक दृष्टि से दोषपूर्ण (Theoretically Defective) :** यह शासन-प्रणाली सैद्धान्तिक दृष्टि से दोषपूर्ण थी। इस प्रणाली द्वारा प्रान्तों में आंशिक उत्तरदायी सरकार की स्थापना की गई तथा भारतीय मंत्रियों को साधारण अधिकार दिए गए परन्तु वास्तविक शक्ति अंग्रेजों ने अपने हाथों में रखी। इस बात से यह सिद्ध होता है कि अंग्रेज अभी भारतीयों को शासन के योग्य नहीं समझते थे। प्रान्तीय शासन का विभाजन भी दोषपूर्ण था क्योंकि इसका एक भाग विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी था व दूसरा उत्तरदायित्व गवर्नर के प्रति था जो भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी था। यह व्यवस्था भी सैद्धान्तिक दृष्टि से गलत थी। "रेजीनाल्ड क्राडक ने लिखा है कि–**"द्वैध शासन एक प्रकार की वर्णसंकर व्यवस्था है जो कभी सफल नहीं हो सकती, क्योंकि किसी देश अथवा प्रान्त के शासन का संचालन दो अलग-अलग एवं स्वतन्त्र मंत्रिमण्डलों द्वारा स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं किया जा सकता।"**

2. **विषयों का अव्यावहारिक विभाजन (Defective Distribution of Subjects) :** अधिनियम द्वारा प्रान्तीय विषयों का रक्षित एवं हस्तांतरित विषयों में विभाजन अत्यन्त दोषपूर्ण था। हस्तांतरित विषय के उत्तरदायी मंत्रियों का किसी भी विभाग पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं था। जैसे कृषि एवं सिंचाई का अभिन्न संबंध है परन्तु कृषि को हस्तांतरित विषय में रखा गया था तथा सिंचाई को रक्षित विषयों में। इसमें प्रतिदिन नई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती थीं। शिक्षा हस्तांतरित विषय था परन्तु एंग्लो-इंडियन व यूरोपियन शिक्षा रक्षित विषय। मद्रास के एक मंत्री के.वी. रेड्डी ने कहा था कि–**"मैं कृषि मंत्री था परन्तु सिंचाई से मेरा कोई संबंध नहीं था। कृषि मंत्री होते हुए भी मेरा मद्रास कृषक ऋण अधिनियम और मद्रास भूमि विकास ऋण अधिनियम से कोई सरोकार नहीं था। सिंचाई, कृषि ऋण, भूमि विकास ऋण और अकाल रक्षा के बिना कृषि मंत्री की कार्यक्षमता एवं प्रभाव की केवल कल्पना ही की जा सकती थी। मैं मंत्री था उद्योग का परन्तु कारखाने, भाप यन्त्र, जलविद्युत् तथा श्रमविभाग मेरे पास नहीं थे, क्योंकि ये सभी रक्षित विषय थे।"** उपरोक्त वक्तव्य से स्पष्ट है कि द्वैध शासन-व्यवस्था के मंत्री पूरी तरह रक्षित विभागों

पर निर्भर थे। इस व्यवस्था में परिष्द् के सदस्यों एवं मंत्रियों में आवश्यक सहयोग का अभाव था। अतः द्वैध शासन की सफलता अवश्यभावी थी।

3. **गवर्नर को विशेषाधिकार (Special Powers to Governor) :** इस अधिनियम ने गवर्नरों को विशेष शक्तियाँ प्रदान की थी। इन शक्तियों के आधार पर गवर्नर मंत्रियों के कार्यों में अत्यधिक हस्तक्षेप करते थे। वे मंत्रियों के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप करते थे। मंत्रियों के सुझावों को अस्वीकार कर सकते थे। मध्य प्रान्त के मंत्री केलकर ने शिकायत की थी कि–**"यद्यपि नीति संबंधी मामलों में मुझे कार्य करने की स्वतन्त्रता थी परन्तु विस्तार की बातों में लगातार हस्तक्षेप किया जाता था।"** मद्रास प्रान्त के मंत्री सी.आर. रेड्डी के मतानुसार तो मंत्रियों की स्थिति **'गौरवमय सचिवों'** जैसी थी। केरल पुत्र ने ठीक ही कहा–**"गवर्नर की स्वेच्छाचारिता के रहते हुए सीमित क्षेत्र में भी उत्तरदायित्व का हस्तांतरण न हो सका।"**

4. **संयुक्त विचार-विमर्श का अभाव (Lack of Composite Dialogue) :** इस अधिनियम में इस बात का प्रावधान किया गया था कि प्रान्तीय सरकार के दोनों भागों (रक्षित एवं हस्तांतरित) में संयुक्त विचार-विमर्श हो ताकि मंत्रियों द्वारा गवर्नर की कार्यकारिणी की जन इच्छाओं का पता लग सके तथा कार्यकारिणी के सदस्यों के अनुभवों से मंत्री कुछ सीख सके। परन्तु व्यवहार में मद्रास के गवर्नर के अतिरिक्त अन्य किसी गवर्नर ने इस निर्देश का पालन नहीं किया। शासन संबंधी मामलों में केवल बजट को छोड़कर मंत्रियों व कार्यकारिणी के सदस्यों ने मिल बैठकर कभी कोई विचार-विमर्श नहीं किया। इसके परिणामस्वरूप उनका परस्पर विश्वास कायम नहीं हो सका तथा वे सार्वजनिक रूप से एक-दूसरे की निन्दा करने लगे। मंत्रियों से रक्षित विषयों के बारे में कोई विचार नहीं लिया जाता था। इस बात से प्रशासनिक अव्यवस्था पैदा हुई। **सुरेन्द्रनाथ सेन** ने लिखा है कि–**"द्वैध शासन ने प्रशासन में कई उलझनें पैदा कर दीं तथा प्रशासन की एकता को नष्ट कर दिया।"**

5. **संयुक्त उत्तरदायित्व का अभाव (Lack of Joint Responsibility) :** प्रजातान्त्रिक संस्थाएँ संयुक्त उत्तरदायित्व के आधार पर चलती है। 1919 के अधिनियम ने प्रान्तों में प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली अवश्य प्रचलित थी परन्तु कार्यपालिका के परिषद् के सदस्यों व मंत्रिमण्डल के सदस्यों में संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न नहीं हुई। कार्यकारिणी परिषद् के सदस्य तो अंग्रेज होते थे। उन्हें राज्य विधानसभा से कोई लेना-देना नहीं था। कार्यकारिणी के सदस्य भारत सचिव के प्रति उत्तरदायी थे जबकि मंत्रियों का उत्तरदायित्व विधानपरिषद् के प्रति था। अतः वे सदस्यों को प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते थे। इस आपसी असहयोग से प्रशासन में अनेक कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती थीं। के. बी. पुनिया ने लिखा है कि–**"परस्पर मंत्रियों में इस प्रकार के विवाद नामजद गुट की दया पर छोड़ देते थे।"**

6. **मंत्रियों की गवर्नर पर निर्भरता (Dependence of Ministers on Governor) :** अनेक बातों से भारतीय मंत्री पूर्णतया गवर्नर पर निर्भर थे। गवर्नर अपनी मर्जी के व्यक्तियों को मंत्री बनाता था तथा वही उन्हें पद से हटा सकता था। मंत्री पूर्णतया गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होते थे। मंत्री अपने विभाग के कार्यों के लिए धन भी गवर्नर से ही प्राप्त करते थे। गवर्नर ही मंत्रियों को सरकारी तथा मनोनीत सदस्यों की सहायता दिलवाता था। इस प्रकार मंत्री पूरी तरह से गवर्नर की मर्जी पर निर्भर रहते थे। विधानपरिषद् भी मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित करके उन्हें त्याग-पत्र के लिए मजबूर कर सकता था। इस प्रकार मंत्रियों को अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए गवर्नर की चापलूसी करनी पड़ती थी।

7. **वित्तीय कठिनाइयाँ (Financial Problems) :** यह सत्य है कि सरकार के सफल संचालन में धन सबसे आवश्यक होता है तथा प्रजातान्त्रिक प्रणाली में यह और भी आवश्यक हो जाता है। परन्तु भारतीय मंत्रियों को धन की बहुत कठिनाइयाँ थीं। वे राष्ट्र निर्माण के लिए विभागों का

संचालन तो करते थे परन्तु उनके पास फण्ड नहीं होते थे। क्योंकि वित्त विभाग रक्षित विषयों में था तथा यह कार्यकारिणी के सदस्य के अधिकार में होता था। कार्यकारिणी के अंग्रेज सदस्य यह कभी नहीं चाहते थे कि भारतीय मंत्री विकास कार्य करे तथा जनता में लोकप्रियता प्राप्त करें, अतः अपनी योजनाओं के क्रियान्वयन के लिए सारे मंत्री वित्तमंत्री के मुंह की तरफ ताकते थे तथा अधिकांश मामलों में उसका उत्तर नकारात्मक होता था। इस प्रकार धन की कमी के कारण मंत्री अपना कार्य ठीक से नहीं कर पाये। ऐसी स्थिति में दोहरे शासन का असफल होना स्वाभाविक था।

बंगाल में मंत्री बने **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** ने ठीक ही कहा था–**"द्वैध शासन की असफलता का उत्तरदायित्व मैंसटन कमेटी व वित्त विभाग दोनों को वहन करना चाहिए।"**

8. **विधानपरिषद की दोषपूर्ण रचना (The faulty Composition Structure of State Council) :** द्वैध शासन की असफलता के लिए प्रान्तीय परिषदों की दोषपूर्ण रचना भी काफी सीमा तक उत्तरदायी थी। परिषद् के निर्वाचित सदस्य गैर-सरकारी सदस्य थे जो अक्सर गवर्नर के आदेशानुसार कार्य करते थे। मतदान का अधिकार भी दोषपूर्ण था। मतदान का अधिकार सम्पत्ति, आयकर एवं राजस्व संबंधी योग्यता के आधार पर दिया गया था। इस प्रकार विधानपरिषदों के अधिकांश सदस्य अपने-अपने हितों के लिए काम करते थे। यह विचारधारा उत्तरदायी शासन के मूल विचार के विरुद्ध थी। एन. श्रीनिवासन ने लिखा है कि–**"ऐसी कोई दलीय पद्धति नहीं थी जो ब्रिटिश ढंग से उत्तरदायी शासन-व्यवस्था का संचालन कर सकती।"**

9. **मंत्री तथा गैर-सैनिक अधिकारी (Ministers and Non-Military officials) :** मंत्रियों के अधीन विभागों में सचिव के पद पर गैर-सैनिक सेवा अधिकारी (सिविल सर्विस आफिसर) नियुक्त किए जाते थे। ये अधिकारी ही शासन के विभागों की नीति निश्चित करते थे। इन पर मंत्रियों का कोई नियन्त्रण नहीं था अपितु वे भारत मंत्री के अधीन कार्य करते थे। मंत्रियों व इन उच्च अधिकारियों में कोई तालमेल नहीं था। वे मंत्रियों को प्रशासनिक कार्यों में सहयोग करने की बजाय उनके कार्यों में बाधा उत्पन्न करते थे तथा उनका मजाक उड़ाते थे। जब किसी मंत्री का किसी सचिव से झगड़ा होता था जो गवर्नर मंत्री का पक्ष न लेकर सचिव का ही पक्ष लेते थे। के.बी. पुनिया ने लिखा है कि–**"एक मंत्री के लिए इससे अधिक क्षोभकारी और अपमानजनक बात क्या हो सकती है कि वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को अपने निर्णयों के विरुद्ध राज्यपाल के पास अपील करते देखे और उनके निर्णयों को उलटवा दें।"** इस प्रकार भारतीय मंत्रियों का अपने अधीनस्थ अधिकारियों पर नियन्त्रण न होने के कारण वे अपनी इच्छानुसार अपने विभाग व कार्य करने में असमर्थ थे।

10. **बाहरी परिस्थितियों का उत्तरदायित्व (Responsibility of other outer Circumstances) :** प्रान्तों में द्वैध शासन की असफलता का मूल कारण तो इनके आन्तरिक दोष थे, लेकिन कुछ ऐसी बाहरी परिस्थितियाँ भी थीं जिन्होंने इनकी असफलता में योगदान दिया। केरल पुत्र ने लिखा है–**"आरम्भ से ही सुधारों को उचित राजनीतिक वातावरण प्राप्त नहीं हुआ। भारत सरकार द्वारा रौलट एक्ट लागू करने तथा अमृतसर जैसी अविवेक पूर्ण कार्यवाहियों से भारतीय मस्तिष्क में दुर्भावना व कटुता उत्पन्न हो गई थी और इस वातावरण में नवीन सुधार योजना ठीक प्रकार से क्रियान्वित नहीं हो सकती थी।"**

जिस समय अधिनियम लागू किया गया उस समय का राजनीतिक वातावरण बहुत खराब था। प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद अनेक राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना से एशिया में भी राष्ट्रवादी आन्दोलन जोर पकड़ने लगे थे। ऐसी परिस्थितियों में भारतीयों को ये सुधार अपर्याप्त तथा निराशाजनक प्रतीत हुए। गांधीजी के नेतृत्व में देश में असहयोग आन्दोलन चल रहा था। सरकारी दमन नीति ने भी लोगों के मन में आशंका उत्पन्न कर दी थी। ऐसी स्थिति में सुधारों का असफल होना निश्चित था। उधर **स्वराज्यवादियों ने द्वैध शासन**

को सफल बनाने के लिए ही विधानमण्डलों में प्रवेश किया था। रौलट एक्ट, जलियांवाला बाग काण्ड जैसी घटनाओं से भारतीयों के मन में अंग्रेजों के प्रति कटुता उत्पन्न हो गई थी।

मांटेग्यू के भारत सचिव पद से हटते ही अंग्रेजी सरकार के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ गया था। सरकार भारतीयों को कम-से-कम स्वशासन देना चाहती थी। अतः सरकार ने परिषदों के कार्यों में बाधा डालना आरम्भ कर दिया था। परिणामस्वरूप सी.आई. चिन्तामणि, सर तेज बहादुर सप्रु व पण्डित जगत नारायण ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया था।

इस बारे में डॉ. जकारिया ने लिखा है कि–**"सरकार के इस निर्णय ने सुधारों पर किस प्रकार से अमल किया जाए, जिससे लोगों को कम-से-कम स्वशासन के अधिकार मिलें तथा दूसरी तरफ स्वराज्य दल की इस नीति ने की सरकार के संचालन में अधिक-से-अधिक रुकावट पैदा की जाएं, 1919 के सुधारों के भाग्य का पहले से ही निर्णय कर दिया।"** कूपलैण्ड ने भी इस बात को स्वीकार किया कि–**"द्वैध शासन अपने रचयिताओं के मूल उद्देश्यों को पूरा नहीं कर सका, इसलिए वह असफल रहा। इसने भारतीयों को उत्तरदायी शासन का सही प्रशिक्षण नहीं दिया।"**

द्वैध शासन की सफलताएँ
(Merits of the Dyarchy System)

यद्यपि द्वैध शासन व्यवस्था अपने मूल उद्देश्य को पूरा करने में विफल रही तथा 1935 ई. के भारत सरकार अधिनियम के आधार पर 1937 में इसे हटा दिया गया परन्तु फिर भी इसे महत्त्वहीन नहीं कहा जा सकता। भारत के संवैधानिक विकास की योजना का पर्याप्त महत्त्व है–

(i) द्वैध शासन योजना से भारतीय मंत्रियों को स्वशासन का प्रशिक्षण मिला। उन्हें पता चल गया कि स्वशासन के मार्ग के कौन-सी कठिनाइयाँ आ सकती हैं तथा उनका समाधान किस प्रकार किया जा सकता है।

(ii) भारतीय मंत्रियों तथा जनता को स्वशासन के प्रति अंग्रेजी सरकार के रवैये के बारे में जानकारी मिल गई। नौकरशाही को भी यह अनुभव हो गया कि बदली हुई परिस्थितियों में जनता की मांगों व हितों की तरफ भी ध्यान देना पड़ेगा।

(iii) इस व्यवस्था ने धीरे-धीरे आंशिक उत्तरदायित्व के साथ-साथ सार्वजनिक सेवाओं में भी भारतीय जनता की भागीदारी को बढ़ाया तथा सरकारी कर्मचारी जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व की भावना को समझने लगे।

(iv) इस व्यवस्था में पहली बार बड़ी संख्या में भारतीयों को मताधिकार मिला तथा पहली बार बड़े पैमाने पर चुनाव हुए जिससे परिषदों में संसदीय वातावरण बना। पहली बार नौकरशाही को जनता के मंत्रियों के आदेशों का पालन करवाया।

(v) शिक्षा एवं स्थानीय स्वशासन के संबंध में उल्लेखनीय काम हुआ। स्थानीय स्वशासन को सुधारने के लिए अनेक कानून बने। सामाजिक सुधारों की तरफ ध्यान दिया गया। **मद्रास में हिन्दू धार्मिक दान अधिनियम एवं बंगाल में बाल अधिनियम** पारित किए गए। उत्तर प्रदेश व मद्रास में द्वैध शासन ने दो वर्ष तक सफलतापूर्वक काम किया।

इस प्रकार यह अधिनियम स्वेच्छाचारिता एवं उत्तरदायित्व के मध्य एक पुल था। श्री के. बी. पुनिया ने लिखा है कि–**"द्वैध शासन-प्रणाली एक अनोखा प्रयोग थी। इसका मुख्य प्रयोजन एवं उद्देश्य भारतीयों को उत्तरदायी शासन की कला में प्रशिक्षण देना था। निःसंदेह इस प्रणाली के रचियता इसके दोषों एवं कमियों से परिचित थे, परन्तु वे सोचते थे कि तत्कालीन परिस्थितियों में इससे अच्छा कोई विकल्प नहीं है।"**

इस विधेयक के बाद उत्तरदायी शासन चलाने के बारे में अंग्रेजी सरकार का भारतीयों की योग्यता के बारे में संदेह दूर हो गया तथा इसलिए सरकार ने 1935 ई. का अधिनियम पास किया जिसमें प्रान्तों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान कर दी गई।

प्रान्तीय विधानपरिषदों का पुनर्गठन
(Reconstitution of the Provincial Legislative Councils)

इस अधिनियम के द्वारा प्रान्तीय विधानपरिषदों का पुनर्गठन किया गया। प्रान्तीय परिषदों को अब विधानपरिषदों की संज्ञा दी गई। उनका अधिकार क्षेत्र भी बढ़ा दिया गया जो सभी प्रान्तों में भिन्न-भिन्न था। सभी प्रान्तों को एक समान स्तर प्रदान किया गया। अब तक ब्रिटिश भारत ने तीन प्रकार के प्रान्त थे-गवर्नर के प्रान्त, चीफ कमिश्नर के प्रान्त एवं लेफ्टिनेंट के प्रान्त। प्रत्येक प्रान्त में एकसदनात्मक विधानमण्डल की व्यवस्था की गई। प्रान्तीय विधानमण्डलों की सदस्य संख्या भी बढ़ाई गई। इनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या कुल संख्या की 70 प्रतिशत तथा मनोनीत सदस्यों की संख्या 20 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती थी। प्रान्तीय विधानमण्डलों में कुछ गैर-सरकारी सदस्यों के मनोनयन की व्यवस्था की गई। बड़े प्रान्तों की परिषदों में अधिक-से-अधिक 140 तथा छोटे प्रान्तों में कम से कम 60 सदस्य रखने की व्यवस्था की गई। इस प्रकार विधानसभाओं का स्वरूप अधिक से अधिक लोकतन्त्रात्मक बनाने का प्रयास किया गया। विभिन्न प्रान्तों के विधानमण्डलों के सदस्यों का विवरण इस प्रकार है–

तालिका : प्रान्तीय विधानपरिषदों की सदस्य संख्या

क्र.स.	प्रान्त का नाम	निर्वाचित सदस्य	सरकारी पदेन तथा मनोनीत	विशेष वर्गों तथा हितों के मनोनीत गैर-सरकारी सदस्य	कुल
1.	मद्रास	98	23	11	132
2.	बम्बई	86	20	8	114
3.	बंगाल	114	22	4	140
4.	संयुक्त प्रांत	100	20	3	123
5.	पंजाब	71	18	5	94
6.	बिहार एवं उड़ीसा	76	18	9	103
7.	मध्य प्रान्त	5	11	7	23
8.	आसाम	39	7	7	53
9.	बर्मा (म्यांमार)	80	22	1	103
10.	उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत	39	7	7	53

प्रान्तों को अनेक चुनाव क्षेत्रों में बांटा गया तथा चुनाव में प्रत्यक्ष चुनाव-प्रणाली अपनाई गई जिसमें साम्प्रदायिक आधार पर आरक्षण की व्यवस्था भी थी। प्राथमिक मतदाता सदस्यों का चुनाव करते थे। मत देने का अधिकार संपत्ति संबंधी योग्यताओं के आधार पर दिया गया जिससे बहुत कम लोगों को मतदान का अधिकार मिला। शहरी क्षेत्रों में केवल उन्हीं लोगों को मतदान का अधिकार मिला जो 2000 रुपये की वार्षिक आय पर आयकर देते थे या कम-से-कम 36 रुपये प्रतिवर्ष मकान किराया देते थे या 3 रू. प्रतिवर्ष से अधिक नगरपालिका का कर चुकाते थे, ग्रामीण इलाकों में 10 रुपये से 50 रुपये भूमिकर देने वालों को मतदान का अधिकार मिला। जमींदारों के क्षेत्र में संयुक्त प्रान्त में 5000 रुपये तथा पंजाब में 500 रुपये भूमिकर देने वालों

को मतदान का अधिकार दिया गया। प्रान्तीय विधानपरिषदों के कार्यक्षेत्र में भी विस्तार किया गया। सदस्यों को बोलने का अधिकार तथा स्वतन्त्रता थी। वे प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे तथा प्रश्न व पूरक प्रश्न पूछ सकते थे।

किसी भी प्रान्तीय विषय का कानून बनाने का अधिकार विधानपरिषदों को दिया गया परन्तु प्रत्येक पारित विधेयक पर गवर्नर की सहमति आवश्यक थी। सदस्यों को बजट को अस्वीकार करने का अधिकार था परन्तु यदि गवर्नर चाहे तो विधानपरिषद् की अनुमति के बिना भी बजट पारित कर सकता था। निम्नलिखित वित्तीय शीर्षकों पर विधानपरिषद् को अधिकार प्राप्त नहीं थे–

(क) स्थानीय शासनों द्वारा केन्द्रीय शासन को देय अंशदान।
(ख) ऋणों पर ब्याज तथा निक्षेप विधि का व्यय।
(ग) उच्च न्यायालयों के न्यायधीश तथा महाधिवक्ताओं का वेतन ।
(घ) सम्राट या भारत सचिव की अनुशंसा से नियुक्त किए गए अधिकारियों के वेतन या भत्ते।

इस प्रकार प्रान्तीय विधानमण्डलों को सार्वभौम विधायी शक्ति प्राप्त नहीं थी और कार्यपालिका उनकी आज्ञा पालन करने के लिए बाध्य नहीं थी। गवर्नर तथा उसकी कार्यकारिणी के सदस्य विधानमण्डल के प्रभाव में नहीं थे तथा विधानमण्डल में इनके विरुद्ध अविश्वास नहीं लाया जा सकता था।

अवधि (Tenure) : प्रान्तीय विधानसभाओं का कार्यकाल 3 वर्ष निर्धारित किया गया, परन्तु गवर्नर को उसे समय से पहले भंग करने तथा उसका कार्यकाल 1 वर्ष और बढ़ाने का अधिकार प्राप्त था।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विस्तार
(Extension of Communal Representation)

भारत में पहली बार 1909 ई. के अधिनियम द्वारा मुसलमानों को विधानपरिषदों में अलग स्थान देकर साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का प्रारंभ किया गया था। मुसलमानों को जब अलग से अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मिल गया तो अन्य वर्गों व जातियों ने भी पृथक् प्रतिनिधित्व की मांग करनी आरम्भ कर दी थी। यद्यपि 1919 ई. के अधिनियम में एक तरफ तो साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को स्वायत्तशासी संस्थाओं के विकास में बाधा बताया गया परन्तु दूसरी तरफ इस योजना में न केवल मुसलमानों के लिए पृथक् प्रतिनिधित्व जारी रखा गया अपितु अन्य जातियों व वर्गों को भी पृथक् प्रतिनिधित्व जारी रखा गया अपितु अन्य जातियों व वर्गों को भी पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया। जैसे पंजाब में सिक्खों, बम्बई में मराठों तथा मद्रास में गैर-ब्राह्मणों को पृथक् प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। भारतीय ईसाइयों तथा एंग्लो-इण्डियनों को भी अलग से प्रतिनिधित्व मिला। विश्वविद्यालय, वाणिज्य एवं व्यापार, भू-स्वामी तथा खदान हितों के लिए भी अलग से प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया। दलितों व मजदूरों के प्रतिनिधित्वों को स्थान देने के लिए मनोनयन का तरीका अपनाया गया। इन अधिनियम में महिलाओं को कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया। इस प्रकार 1919 के मटिंग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का विस्तार किया गया।

नागरिक सेवाओं का विस्तार
(Expansion of Civil Services)

1919 ई. के अधिनियम में नागरिक सेवाओं को नियमित करने के लिए विशेष प्रावधान किए गए। भारत सचिव व उसकी परिषद् को भारत में लोक सेवा आयोग गठित करने के लिए अधिकृत किया गया। इस आयोग के सदस्यों की अधिकतम संख्या 5 रखी गई। भारतीय नागरिक सेवा (Indian Civil Services) के सदस्यों की भर्ती, सेवाकाल, आचरण, अनुशासन, वेतन, नियम, पदों को अलग करना आदि सभी अधिकार भारत सचिव व उसकी कार्यकारिणी को दे दिए गए। इस प्रकार इस अधिनियम से नागरिक सेवाओं के अधिकारों की रक्षा के लिए विशेष प्रावधान किए गए।

नरेश मण्डल की स्थापना (Formation of Chamber of Princes) : मांटेग्यू व चेम्सफोर्ड के सामने भारतीय राजाओं ने भी अपना पक्ष रखा था। अतः इस अधिनियम में देशी राज्यों के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए नरेश मण्डल (Chamber Princes) के गठन की सिफारिश की गई। नरेश मण्डल के गठन की

शाही घोषणा होने के बाद इसका गठन 8 फरवरी, 1921 को दिल्ली में हुआ। नरेश मण्डल का उद्घाटन दिल्ली के लाल किले के दिवान-ए-आम में इंग्लैण्ड के सम्राट की तरफ से ड्यूक ऑफ कनॉट (Duke of Connaught) ने किया। नरेश मण्डल में कुल 120 सदस्य शामिल थे। जिनमें से 108 तो देशी राज्यों के वो शासक थे जो स्वतः ही सदस्यता के लिए अधिकृत थे तथा 12 अन्य प्रतिनिधि 127 देशी राज्यों द्वारा चुने गए थे। वायसराय नरेश मण्डल का अध्यक्ष था। इसका अधिवेशन प्रतिवर्ष 'नरेश भवन' में किए जाने का प्रावधान किया गया था। इस मण्डल का गठन यद्यपि एक परामर्श देने वाली संस्था के रूप में किया गया था परन्तु इसके गठन से अंग्रेजी सरकार की नीति में निश्चित रूप से परिवर्तन आया। अंग्रेजी सरकार ने अपनी पुरानी नीति (दशी राज्यों को अलग-अलग रखने) को छोड़कर उनके द्वारा अंग्रेजी शासन को सहयोग देने का स्वागत किया तथा उनकी तरफ मित्रता का हाथ बढ़ाया। इस प्रकार इन सुधारों में अखिल भारतीय नीति निर्धारण में देशी राज्यों से भी सहयोग लेने की नीति का आरम्भ हुआ।

❑ **भारतीय राजनीतिक विकास पर मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों (1919) के प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए।**
(Evaluate the impact of Montague Chemsford Reforms (1919) on Indian Political developments.)

अथवा

❑ **क्या आप सहमत है कि 1919 के सुधार अधिनियम भारतीय राजनीतिक समस्याओं का कोई समाधान प्रस्तुत नहीं कर सके।**
(Do you agree that Reforms Act of 1919 could not solve Indian Political Problems?)

अथवा

❑ **1919 के मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों की चर्चा करें, इसके मुख्य दोष क्या थे?**
(Discuss the Montague Chemsford reforms of 1919. What were its main defects?)

उत्तर :

1919 के अधिनियम का मूल्यांकन
(Evaluation of the Act of 1919)

1919 ई. के अधिनियम का भारतीय संवैधानिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसने भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए। इसलिए कुछ इतिहासकारों ने इसे भारतीय संविधान का 'ब्लू प्रिन्ट' माना है। एन. श्री निवासन ने लिखा है कि–"यह नौकरशाही शास्त्र की पद्धति का प्रथम उल्लंघन और प्रतिनिधात्मक शासन का वास्तविक प्रारंभ था।" इस अधिनियम के गुण एवं दोषों का विवरण इस प्रकार है–

(a) **अधिनियम के गुण अथवा महत्त्व (Merits or Importance of the Act) :** इस अधिनियम में निम्नलिखित गुण थे–

(i) इस अधिनियम के द्वारा केन्द्र में दो सदनों वाले सदन की स्थापना की गई जिससे आगे चलकर संवैधानिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ तथा भारत में संघात्मक गणतन्त्र हुआ।

(ii) इस अधिनियम के द्वारा भारत के संवैधानिक इतिहास में पहली बार प्रान्तों में उत्तरदायी प्रशासन स्थापित करने का अवसर मिला जिससे भारतीयों को स्वशासन का ज्ञान प्राप्त हुआ। हस्तांतरित विषयों के अध्यक्ष पद पर भारतीयों को नियुक्त किया गया जिससे सेवाओं का भारतीयकरण हुआ।

(iii) इस अधिनियम द्वारा मताधिकार का विस्तार किया गया अर्थात् अब पहले से अधिक लोगों को वोट देने का अधिकार प्रदान किया गया यद्यपि यह संख्या काफी कम थी। मताधिकार मिलने से लोगों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता आयी फलतः भारत में राजनैतिक चेतना का विकास हुआ।